View metadata, citation and similar papers at core.ac.uk

brought to you by CORE

provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC

(CGPA 2.93)

Raval, Rajesh J., 2009, "*अरविन्ददर्शन के आलोक में 'सुमित्रानंदन पंत' और 'सुन्दरम्' के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/697

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

''अरविन्ददर्शन के आलोक में 'सुमित्रानंदन पंत' और 'सुन्दरम्' के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन''

(सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी.की उपाधि के
लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

प्रस्तुतकर्ता

राजेश जे. रावल

व्याख्याता, हिन्दी विभाग,

एम.जे.कुंडलिया आर्ट्स & कॉमर्स महिला कॉलेज

राष्ट्रीय शाला

राजकोट

निर्देशक

डॉ. एस. पी. शर्मा

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष

हिन्दी भवन,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,

राजकोट (गुजरात)

वर्ष-2009

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **राजेश जे. रावल** ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की पीएच.डी. पदवी के लिए मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में **''अरविन्ददर्शन के आलोक में 'सुमित्रानंदन पंत' और 'सुन्दरम्' के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन''** शीर्षक शोध-प्रबंध तैयार किया है । इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन अनुशीलन एवं शोध-परक विश्लेषण, विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया हैं ।

साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोइ अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इ सका कहीं कोई उपयोग हुआ है ।

राजकोट

दिनांक : 18/04/2009

डॉ. एस. पी. शर्मा
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी भवन,
सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,
राजकोट (गुजरात)

अनुक्रमणिका

	पृ. सं.
भूमिका	1 - 19
प्रथम अध्याय :	20 - 192
''महान दार्शनिक और योगी श्री अरविन्द''	
द्वितीय अध्याय :	193 - 240
'पंतजी' का व्यक्तितत्व और कृतित्व	
'सुन्दरम्' का व्यक्तितत्व और कृत्तित्व	
तृतीय अध्याय :	241 - 271
'सुमित्रानंदन पंत' के काव्य में 'श्री अरविन्द दर्शन'	
चतुर्थ अध्याय :	272 - 300
'सुन्दरम्' के काव्य में 'श्री अरविन्द–दर्शन'	
पंचम अध्याय :	301 - 361
'श्री अरविन्द दर्शन' के आधार पर 'पंत' और 'सुन्दरम्' के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	
षष्ठ अध्याय :	362 - 378
'श्री अरविन्द दर्शन' के संदर्भ में 'पंत' और 'सुन्दरम' के काव्य की प्रासंगिकता	
सप्तम अध्याय :	379 - 387
'पंतजी' और 'सुन्दरम्' के काव्य में अरविंददर्शन : तुलनात्मक निष्कर्ष	

परिशिष्ट 388 - 399

☼ ग्रंथानुक्रमणिका

(अ) आधार ग्रंथ

(I) हिन्दी ग्रंथ

(II) गुजराती ग्रंथ

(ब) सहायक ग्रंथ

(I) हिन्दी ग्रंथ

(II) गुजराती ग्रंथ

(III) संस्कृत ग्रंथ

(क) अप्रकाशित शोध–प्रबंध

(ड) शब्द कोश

(इ) पत्र–पत्रिकाएँ

भूमिका

(1) विषय का नामकरण

(2) शोध–विषय की प्रेरक भाव–भूमि

(3) विषयका महत्त्व

(4) विषय के संदर्भ में उपलब्ध सामग्री

(5) शोध–विषय का सीमांकन

(6) प्रबंध–परिचय

(7) प्रस्तुत प्रबंध द्वारा शोधकर्ता का प्रस्तावित योगदान

(8) कृतज्ञताज्ञापन

भूमिका

विषय का नामकरण :

विश्व प्रसिद्ध महान दार्शनिक 'श्री अरविन्द' के दार्शनिक सिद्धांतों के आलोक में हिन्दी साहित्य के कविश्री सुमित्रानंदन पंत और गुजराती साहित्य के कविश्री सुन्दरम् के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करना प्रस्तुत शोध-प्रबंध का प्रतिपाद्य है । 'श्री अरविन्द' के दार्शनिक सिद्धांत आजके विश्व के लिए अत्यंत आवश्यक हैं । आज का 'मानव' किस प्रकार 'विश्वमानव' बनकर समग्र विश्व को मंगलमय बना सकता है, इसका संपूर्ण चिंतन 'श्री अरविन्द' दर्शन का मूल मंत्र है ।

'श्री अरविन्द' का दर्शन 'पूर्णयोग' का दर्शन है । इसमें सामान्य 'जीवात्मा' को 'परमात्मा' तक पहुँचाने की वैश्विक अभीप्सा व्यक्त की गई है । 'श्री अरविन्द' ने भारतीय दर्शन की विश्व प्रसिद्ध महान दार्शनिक धारा का अत्यंत गहन अध्ययन किया है । साथ ही पाश्चात्य दर्शनधारा का भी सर्वांगपूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् अपनी साधना के द्वारा विश्व सभ्यता को एक नूतन दार्शनिक आलोक प्रदान किया है, जिसका आधार लेकर 21वीं शती में मनुष्य अपना एवं समग्र विश्व का कल्याण कर सकता है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध हिन्दी और गुजराती भाषा के दो मूर्धन्य कवियों के काव्य की तुलना से संबद्ध है । 'पंत' और 'सुन्दरम्' दोनों ही कवियों

ने स्वयं के जीवन में 'श्री अरविन्द दर्शन' के व्यापक प्रभाव को स्वीकार किया है । इसी प्रभाव को ऊन्होंने अपने समग्र जीवन में विशेष परिवर्तन के रूपमें महसूस करते हुए उसे अपनी कविता में विशेष स्थान दिया है । इसी प्रभाव को प्रतिबिंबित करनेवाली विशेष कविताओं की तुलना करना शोधार्थी का अभीष्ट है ।

शोध-विषय की प्रेरक-भावभूमि :

किसी भी शोधकार्य की एक प्रेरक भावभूमि होती है । इसी का आधार ग्रहण करके शोध-कर्ता कार्यारंभ करता है । बचपन से ही 'कविता' के प्रति मेरा विशेष लगाव रहा है । साहित्य की सभी विधाओं में 'कविता' को मैं आत्माभिव्यक्ति की सर्वाधिक सशक्त विधा मानता हूँ । इसी कविता के अध्ययन का अवसर मुझे मिलता ही रहा और मैंने अनुभव किया कि 'कविता' के माध्यम से भी सामान्य 'मानव' अपनी समग्रचेतना का विकास करते हुए मानवजीवन के सही अर्थ को पा सकता है ।

इसी क्रम में हिन्दी के प्रसिद्ध कविश्री सुमित्रानंदन पंत की कविता और गुजराती के प्रसिद्ध कविश्री 'सुन्दरम्' की कविता का अध्ययन करने का मौका मिला । दोनों ही कवियों की कविता 'प्रकृति से परमात्मा' तक की महायात्रा की कविताएँ हैं और दोनों ही कवियों को महान दार्शनिक 'श्री अरविन्द' की विशिष्ट दार्शनिक अवधारणाओं का संबल

मिला है । जब इस बात की विशेष चर्चा मैंने अपने परम पूजन्य गुरुदेव डॉ. एस.पी.शर्मा (पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष – हिन्दी विभाग, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) से की तो ऊन्होंने 'श्री अरविन्द दर्शन' के आलोक में पंतजी और सुन्दरम् की कविता के तुलनात्मक अध्ययन पर शोध–कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की ।

विषय का महत्त्व :

'श्री अरविन्द' का व्यक्तित्व और दर्शन दोनों ही भारत की अत्यंत मूल्यवान धरोहर हैं । श्री अरविन्द ने अपने चिंतन के द्वारा मानव चेतना के विकास के लिए 'अतिमनस' चेतना को पृथ्वी पर अवतरित किया है । इसी 'अतिमनस' चेतना का आधार ग्रहण कर विश्वमानव अपना तथा समग्रविश्व का कल्याण कर सकता है । श्री अरविन्द के चिंतन के माध्यम से आधुनिक मानव सभ्यता अपनी सभी समस्याओं का सुखद समाधान प्राप्त कर सकती है ।

हिन्दी के महाकविश्री पंतजी और गुजराती के मूर्धन्य कविश्री सुन्दरम् की कविता का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना इस शोधप्रबंध का मूल प्रतिपाद्य विषय है । साथ ही विश्वविद्यालय के स्तर पर 'श्री अरविन्द' के महान व अत्यंत महत्त्वपूर्ण दर्शन पर कार्य करके ज्यादा से ज्यादा लोगों तक इस 'दर्शन' को पहुँचाने का कार्य संपादित करना, इस शोध–प्रबंध का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है ।

मेरे विचार में यह शोध-कार्य एक विशेष शोधकार्य है, क्योंकि इसमें कविता के माध्यम से 'दर्शन' की विविध अवधारणाओं को प्रस्तुत किया गया है । यह शोधकार्य भविष्य में उन सभी शोध-कर्ताओं को निरंतर प्रेरणा देता रहेगा, जो 'श्री अरविन्द' के 'दर्शन' का अध्ययन कर 'पंतजी' या 'सुन्दरम्' की कविता पर शोध-कार्य करने के इच्छुक होंगे । इसीलिए इसकी उपादेयता और प्रासंगिकता भविष्य में निरंतर बनी रहेगी ।

विषय के संदर्भ में उपलब्ध सामग्री :

'श्री अरविन्द दर्शन' के आलोक में 'पंत' और 'सुन्दरम्' के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करते समय मुझे जो सामग्री प्राप्त हुई है, उसे इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

शोध-प्रबंध :

(1) 'पंत और सुन्दरम् के काव्य में अरविन्द दर्शन'

डॉ. रजनीकांत जोशी

(2) अरविन्द दर्शन का आधुनिक हिन्दी काव्य पर प्रभाव

डॉ. मीरा श्रीवास्तव

उपर्युक्त शोध–प्रबंधों में प्रथम शोध–प्रबंध गुजरात विश्व विद्यालय के अंतर्गत 'श्री रजनीकांत जोशी' के द्वारा प्रस्तुत किया गया है । जिसमें दोनों ही आलोच्य कवियों की कविता की तुलना प्रस्तुत की गई है ।

दूसरे शोध प्रबंध में मीरा श्रीवास्तव ने आधुनिक हिन्दी काव्य पर अरविन्ददर्शन के प्रभाव को प्रस्तुत किया है । लेकिन इस शोध प्रबंध में केवल हिन्दी कविता का ही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

सामान्य ग्रंथ :

(1) 'श्री अरविन्द' – नवजात

(2) योगी श्री अरविन्द – शिवप्रसाद पांडेय

(3) भावी कविता – श्री अरविन्द

(4) सुमित्रानंदन पंत – विश्वंभर मानव

(5) सुमित्रानंदन पंत – डॉ. नगेन्द्र

(6) सुन्दरम् एटले सुन्दरम् – संपादक : रामजीभाई कड़िया ।

उपर्युक्त ग्रंथों में श्री अरविन्द दर्शन के सम्बन्ध में तथा पंत और 'सुन्दरम्' की कविता और जीवन–यात्रा के संबंध में सामान्य जानकारी प्राप्त होती है । अतएव समकालीन संकटग्रस्त मानव–जीवन के परिप्रेक्ष्य

में 'अरविन्द दर्शन' का कविता के माध्यम से शोधपरक अनुशीलन करना तथा उसकी उपादेयता को रेखांकित करना आवश्यक प्रतीत होता है । इसी आशय से प्रेरित होकर शोधार्थी नें प्रस्तुत शोध-प्रबंध का प्रणयन किया है ।

शोध विषय का सीमांकन :

'दर्शन' वस्तुतः 'दर्शन शास्त्र' और तत्त्वज्ञान से सम्बद्ध है, इसीलिए इसका अध्ययन एवं विश्लेषण मुख़्यतः दर्शनशास्त्र के मापदण्डों के आधार पर किया जाता है । 'श्री अरविन्द दर्शन' को करीब से जानने के लिए मैंने भारतीय दर्शन की परंपरा का अध्ययन जरूर किया है लेकिन मात्र आवश्यकतापूर्ति के लिए ही । क्योंकि केवल, 'दर्शन' ही इस 'शोध-प्रबंध' का मुख़्य विषय नहीं है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में श्री अरविन्द के व्यक्तित्व, कृतित्व और दर्शन को विशेष रूपसे प्रस्तुत किया गया है, साथ ही उनकी दार्शनिक अवधारणाओं को संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-विषय का मुख़्य आधार है, 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' के 'श्री अरविन्द दर्शन' से प्रभावित काव्य का तुलनात्मक अध्ययन । इसीलिए इसमें केवल 'श्री अरविन्द दर्शन' से संबद्ध कविताओं को ही स्थान दिया है ।

प्रस्तुत शोध–प्रबंध के अंतर्गत दोनों आलोच्य कवि पंत और सुन्दरम् के श्री अरविन्द दर्शन से विशेष प्रभावित दो–दो काव्य–संग्रहों की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । 'पंतजी' के स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि के अलावा भी अन्य काव्य–संग्रह है, जो श्री अरविन्द दर्शन से विशेष प्रभावित हैं, लेकिन 'सुन्दरम्' के विशेष काव्य–संग्रह उपलब्ध नहीं हैं । इसलिए उनके दो काव्य–संग्रह, 'ध्रुवचित्त', और 'ध्रुवपदे' की कविता की तुलना प्रस्तुत की गई है । यहाँ पर यह बात विशेष रूपसे उल्लेख़नीय है कि 'सुन्दरम्' अपने साधक जीवन के दौरान निरंतर काव्य–साधना करते रहे, लेकिन 'यात्रा' काव्यसंग्रह के बाद अनेक वर्षोंतक उन्होंने अपना एक भी काव्य–संग्रह नहीं छपवाया । आखिरमें उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी बेटी 'सुधा सुन्दरम्' ने कुछ काव्य–संग्रहों को प्रकाशित किया है । इसी प्रकाशन की श्रृंख़ला से आलोच्य काव्य–संग्रह का चयन मैंने अपने इस शोध–प्रबंध में किया है ।

शोध–प्रबंध के आकार को संयत रख़ने के लिए इसमें जहाँ आवश्यक हुआ है, वहाँ पर ही 'गुजराती' की मूल कविता के साथ उसका हिन्दी में गद्यानुवाद प्रस्तुत किया गया है ।

प्रबंध परिचय :

प्रस्तुत शोध–प्रबंध की सामग्री भूमिका को छोड़कर सात अध्यायों में निरूपित की गयी है । प्रथम अध्याय आलोच्य विषय की आधार भूमि के रूप में है और शेष छः अध्याय शोध–विषय से संबंधित हैं ।

प्रथम अध्याय में शोधकर्ता ने 'श्री अरविन्द' के महान व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषण किया है । इसके साथ ही इस अध्याय में 'श्री अरविन्ददर्शन' की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया है । इसके बाद 'श्री अरविन्द' के विभिन्न सिद्धांतों और भारतीय दर्शन का विश्लेषण किया गया है । इसके बाद 'श्री अरविन्द' की महान देन 'पूर्णयोग' को प्रस्तुत किया गया है । तत् पश्चात 'श्री अरविन्द' के 'योग' की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है । इसी अध्याय में 'श्री अरविन्द' के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का संक्षिप्त विश्लेषण करते हुए, उनके द्वारा लिखि़त विश्वख़्याति प्राप्त महाकाव्य 'सावित्री' का विस्तार के साथ विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । इसके पश्चात् भारतीय दर्शन के महान विचारक राजा राममोहनराय, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, गाँधीजी, विनोबा भावे के दार्शनिक विचारों और 'श्री अरविन्द' की दार्शनिक अवधारणाओं का तुलनात्मक अनुशीलन किया गया है ।

द्वितीय अध्यायमें आलोच्य कवि सुमित्रानंदन पंत और गुजराती कविश्री सुन्दरम् के व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रस्तुत किया गया है । साथी ही साथ 'पंत' की जीवन-यात्रा, काव्य-साधना और 'सुन्दरम्' की जीवन-यात्रा तथा काव्य-साधना को प्रस्तुत किया गया है ।

तृतीय अध्याय में 'सुमित्रानंदन पंत' की कविता में 'श्री अरविन्द दर्शन' पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

इस अध्यायमें विशेषरूप से पंतजी के काव्यसंग्रह 'स्वर्णकिरण' की करीब '45' कविताओं का विश्लेषण किया गया है । इसके बाद उनके काव्यसंग्रह 'स्वर्णधूलि' की करीब '80' कविताओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में गुजराती भाषा के मूर्धन्य कवि 'सुन्दरम्' की कविता में प्रयुक्त 'श्री अरविन्ददर्शन' पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

इस अध्याय में विशेष रूप से 'सुन्दरम्' के काव्य-संग्रह 'ध्रुवचित्त' की करीब : '50' कविताओं का विश्लेषण किया गया है । साथ ही साथ 'ध्रुवपदे' काव्यसंग्रह की '45' कविताओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम अध्याय में 'श्री अरविन्द' दर्शन की महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं के आलोक में आलोच्य कवि पंत और सुन्दरम् के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके उसका विवेचन विश्लेषण किया गया है । इस अध्याय में 'श्री अरविन्द दर्शन'की निम्नलिख़ित सात महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं के आलोक में पंतजी और सुन्दरम् के काव्य की तुलना प्रस्तुत की गई है । ये अवधारणाएँ इस प्रकार हैं -

(1) ज्ञान और सत्य-संबंधी अवधारणा

(2) जीव और जगत्-संबंधी अवधारणा

(3) आत्मा और चैत्य पुरुष संबंधी अवधारणा

(4) मानव के महत्त्व की अवधारणा

(5) भारतीय संस्कृति की महानता की अवधारणा

(6) जीवन में 'योग' के महत्त्व की अवधारणा

(7) 'अतिमनस्' चेतना की अवधारणा

षष्ठ अध्यायमें श्री अरविन्द दर्शन के महान उद्देश्यको प्रस्तुत करते हुए आज के युग में श्री अरविन्द दर्शन के संदर्भ के साथ-साथ आलोच्य कवि पंत और 'सुन्दरम्' की कविता की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है ।

इस अध्यायमें श्री अरविन्द दर्शन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि को ध्यानमें रख़ते हुए पंत और सुन्दरम् की कविता की महत्ता को प्रस्थापित किया गया है । 'श्री अरविन्द' की महत्त्वपूर्ण देन निम्न लिख़ित है -

(1) विश्व को भारत का आध्यात्मिक मार्गदर्शन

(2) विश्व कल्याण के लिए 'मानव' के महत्त्व को सर्वोपरि मानना

(3) विश्वग्राम की स्थापना तथा

(4) भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय

इस अध्यायमें उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं के आधार पर पंत और सुन्दरम् की कविता का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उसकी प्रासंगिकता का विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

सप्तम अध्याय में 'श्री अरविन्द दर्शन' के आलोक में सुमित्रानंदन पंत और 'सुन्दरम्' के काव्य का अध्ययन कर तुलनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

इस अध्याय के अंतमें प्रस्तुत शोध-प्रबंध का 'उपसंहार' और 'निष्कर्ष' प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत प्रबंध द्वारा शोधकर्ता का प्रस्तावित योगदान :

'विषय का महत्त्व' तथा 'शोध विषय का सीमांकन' - के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विषय में कुछ तथ्यों का विवेचन पहले ही किया जा चुका है । यहाँ पर शोध-कर्ता के प्रस्तावित योगदान का सांकेतिक उल्लेख़ ही अपेक्षित है -

(1) प्रस्तुत शोध-प्रबंध में 'श्री अरविन्द दर्शन' जैसे महान और गंभीर विषय को मैंने अपने मौलिक चिंतन के द्वारा सरलता और सहजता के साथ प्रस्तुत करने का यत्न किया है ।

(2) प्रस्तुत शोध-प्रबंध हिन्दी-गुजराती का तुलनात्मक प्रबंध होने के कारण और मेरी मातृभाषा गुजराती होने के कारण

पर्याप्त सावधानीपूर्वक और यथासंभव पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर तटस्थभाव से विषय का निरूपण करने का प्रयास किया गया है ।

(3) प्रस्तुत शोध–प्रबंध के अन्तर्गत प्रस्तुत विषय का विश्लेषण – विवेचन एवं तुलनात्मक निष्कर्ष मेरे अपने हैं ।

(4) प्रस्तुत शोध–प्रबंध में मेरा उपक्रम आद्यंत तत्त्व–परीक्षण करने और उसका पुनराख्यान करने का रहा है ।

(5) 'श्री अरविन्द दर्शन' के आलोक में हिन्दी के 'कविश्री सुमित्रानंदन पंत' और गुजराती के कविश्री 'सुन्दरम्' के काव्य के तुलनात्मक अध्ययन को लेकर प्रस्तुत किया गया यह शोध–प्रबंध अपने आपमें एक विशेष उपलब्धि के रूपमें सिद्ध होगा ऐसा विश्वास है ।

कृतज्ञताज्ञापन :

प्रस्तुत शोध–प्रबंध में मेरा दृष्टिकोण 'श्री अरविन्ददर्शन' के आलोक में 'पंत' और 'सुन्दरम्' की कविता की तुलना प्रस्तुत करके आजके इस माहौल में 'पंत' और 'सुन्दरम्' की कविता की प्रासंगिकता को प्रस्तुत करना रहा है । अपने इस दृष्टिकोण को करीब सात वर्षों के प्रयत्न के पश्चात् इस शोध–प्रबंध के रूप में मूर्तिमान् पाकर मैं 'श्री अरविन्द' की कृपा को कृतज्ञता के साथ महसूस कर रहा हूँ ।

प्रस्तुत प्रबंध का प्रणयन मेरे विद्या–गुरु–श्रद्धेय विद्वत्वर डॉ. एस. पी. शर्मा (पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट) के सुयोग्य निर्देशन में किया गया है, जिन्होंने इस दुष्कर कार्य में मेरी अनेक समस्याओं व कठिनाइयों के समाधानार्थ महत्त्वपूर्ण सहायता व प्रोत्साहन दिया है । उनकी विशेष कृपा के कारण ही मैं हिन्दी व गुजराती के दो महान कवियों की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य को संपन्न कर सका । मैं उनके इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता । उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धा अर्पित कर कृतज्ञता का अनुभव करता हूँ ।

इस शोध–कार्य में प्रेरक एवं सहायक बननेवाले डॉ. जी. जे. त्रिवेदी, डॉ. बी. के. कलासवा (अध्यक्ष, हिन्दी भवन, सौ.युनि.), डॉ. जे. एम. पनारा, डॉ. एस. के. महेता, प्रा. के. जे. सुवागिया, डॉ. मनोज जोशी का मैं आभारी हूँ जिनके अमूल्य सहयोग से मेरा शोध–प्रबंध पूर्ण हो सका ।

परम आदरणीया डॉ. बानुबहन धकान (प्राचार्या – एम. जे. कुंडलिया कॉलेज) तथा मेरे विभाग के वरिष्ठ सहयोगी डॉ. दक्षाबहन जोशी (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग), डॉ. कल्पनाबहन रायठ्ठा, डॉ. गिरीशभाई सोलंकी एवं श्री अंजनीबहन पंडया (ग्रंथपाल एम. जे. कुंडलिया कॉलेज) के प्रति मैं विशेष आभार व्यक्त करता हूँ ।

मेरे स्वर्गस्थ पिताश्री जुगतरामभाई रावल और मेरी माताश्री वनिताबहन के शुभ आशीर्वाद हमेशा मेरी ताकत रहे हैं । उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धा अर्पित कर कृतज्ञता का अनुभव करता हूँ ।

मेरी जीवनसंगिनी बीना दवे, (निदेशक, एम.वी.एम. कॉलेज ओफ़ कामर्स मेनेजमेन्ट एण्ड आइ.टी.) और मेरी प्यारी बिटिया 'क्षमा' ने मुझे सदैव पूर्ण सहयोग दिया, प्रोत्साहन दिया, वह मेरे लिए चिरस्मरणीय है ।

इस शोध–प्रबंध का कम्प्यूटीकरण करने वाले श्री रमेशभाई चोराला (सोनार कम्प्यूटर) का भी हार्दिक आभार मानता हूँ ।

मैं हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी तथा संस्कृत के उन सभी विद्वानों एवं आलोचकों के प्रति अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनकी सहायता मुझे शोध–कार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्राप्त हुई और जिनकी कृतियों के उद्धरण मैंने अपने प्रबंध में यथा प्रसंग प्रस्तुत किए हैं ।

अंततः परमपिता परमेश्वर और 'श्री अरविन्द' और श्री माताजी' के चरणों में श्रद्धा से प्रणाम करता हूँ, जिनकी प्रेरकशक्ति के द्वारा ही यह शोध–प्रबंध साकार हो सका ।

विनीत,

राजकोट

दिनांक : 18/4/2009 राजेश जे. रावल

प्रथम अध्याय

"महान दार्शनिक और योगी श्री अरविन्द"

- ☼ श्री अरविन्द का व्यक्तित्व और कृतित्व
- ☼ श्री अरविन्द दर्शन की पृष्ठभूमि
- ☼ श्री अरविन्द के विभिन्न सिद्धांत और भारतीय दर्शन
- ☼ श्री अरविन्द का विशिष्ट योग – 'पूर्णयोग'
- ☼ श्री अरविन्द का काव्य–दर्शन
- ☼ श्री अरविन्द की महानकृति 'सावित्री'

प्रथम अध्याय

महान दार्शनिक और योगी श्री अरविन्द

'भारत' राष्ट्र दुनिया का वह राष्ट्र है, जिसने समय-समय पर अनेक विद्वानों, विभूतियों, मनीषियों, दार्शनिकों को जन्म दिया है तथा दुनिया के विकास, एवं शास्वत शांति के लिए, सुखाकारी के लिए अपना योगदान दिया है । इसी राष्ट्र की भूमि से 'श्री राम' की मर्यादा जीवन, धर्म, सत्य आदि, की महान अवधारणा प्रकट हुई । यहाँ से ही 'श्रीकृष्ण' की 'गीता' की त्रिवेणीधारा, कर्म, ज्ञान, भक्ति का पियूषस्रोत बहा है, इसी भारत वर्ष से दुनिया को श्री बुद्ध की करूणा और 'श्री महावीर' की अहिंसा का संदेश मिला है ।

हमारा राष्ट्र अनेक मनीषियों के दर्शन की आधार भूमि भी रहा है । व्यास, वाल्मिकी, नारद, पतंजली, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, रामकृष्ण परमहंस आदि अनेक मनीषियों ने सारे विश्व को एक नयी चेतना और ए क नया जीवन दृष्टिकोण भी दिया है । इसी श्रृंखला में बीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष ने दुनिया को महात्मा गांधी, और 'महर्षि अरविन्द' जैसे दो महान मनीषियों की सौग़ात दी, दोनों ने विश्वसमाज को नया दृष्टिकोण प्रदान किया है ।

'श्री अरविन्द' आधुनिक युग में उपनिषदों के द्रष्टा माने जाते हैं । 'श्री अरविन्द' ने अपने योग एवं अनुभव के आधार पर विविध वैश्विक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया है । 'श्री अरविन्द' का दर्शन, एवं योग खुद उनकी अनुभूति एवं अनुभव के निचोड़ के रूप में आज सारी दुनिया का

मार्गदर्शन कर रहा हैं । अपनी स्वतंत्र साधना के बलपर वे उपनिषदों के 'सत्य' तक पहुँचे हैं । अपने 'विश्वरूप दर्शन' में वे उपनिषदों से बहुत आगे निकल गए हैं । दर्शन की पूर्वीय एवं पाश्चात्य गंगा-जमुना के पवित्र संगम; तन, मन, प्राण सभी को दैवी सत्ता के अवरोहण का माध्यम बना देनेवाले ए क योगी, इस पृथ्वी पर 'ईसा' के 'स्वर्गराज्य' की कल्पना को मूर्तिमान बनाने का आयोजन करनेवाले युग प्रवर्तक नेता और थोथी संस्कृति तथा कृत्रिम सभ्यता के दबाव से लड़खडाती हुई मानव जाति को 'अतिमनस्' के विज्ञानमय-लोक की ओर ले जानेवाले एक महान योगी व पथ-प्रदर्शक के रूप में 'श्री अरविन्द' भारतीय एवं वैश्विक जनमानस को स्पंदित कर रहे हैं ।

❖ श्री अरविन्द का प्रादुर्भाव :

'श्री अरविन्द' का प्रादुर्भाव आधुनिक भारत की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक अपेक्षाओं के लिए 15 अगस्त 1872 ई. को प्रातःकाल सूर्योदय के समय हुआ । वह सूर्योदय विश्वसभ्यता के लिए 'अतिमनस्' चेतना के अवरोहण का उदय था । उनके पिताश्री ''डॉ. कृष्णधन घोष'' कलकत्ता विश्वविद्यालय के डाक्टरी उपाधि प्राप्त सरकारी अस्पताल के बड़े नामी डाक्टर थे और माताश्री भारतीय संस्कृति के सुप्रसिद्ध प्रवक्ता 'ऋषि राजनारायण बोस' की सबसे बड़ी पुत्री 'स्वर्णलत्ता देवी' थी । 'श्री अरविन्द' का जन्मस्थान उनके पिताश्री के अनन्य मित्र 'बेरीस्टर श्री मनमोहन घोष' का घर है । 'श्री अरविन्द' अपने माता-पिता की तीसरी संतान थें । दोनों बड़ी संतानें पुत्र ही थीं । जिनके नाम क्रमशः विनयभूषण और मनमोहन थे ।

15 अगस्त का भारत और विश्व के लिए भी एक विशेष सांस्कृतिक महत्त्व है, क्योंकि 15 अगस्त को ही श्रीरामकृष्ण परमहंस ने समाधि ली थी । इसी दिन को भारतराष्ट्र को आज़ादी भी मिली । 'श्री अरविन्द' ने भी इस दिन का आध्यात्मिक महत्त्व बताते हुए कहा है ''15 अगस्त का दिन 'कुमारी मरियम' के 'उद्ग्रहण' का दिन है । इस दिन को भौतिक प्रकृति का दिव्य प्रकृति की ओर उन्नयन होता है । 'कुमारी मरियम' से निर्देश प्रकृतितत्त्व का होता है । 'ईसा' मनुष्य के रूप में जन्मी दैवी आत्मा है । वह ईश्वर का पुत्र भी है, 'मनु' का बेटा भी है ।''(1)

'श्री अरविन्द' के नानाजी 'राजनारायण बोस' भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के, आचार विचार को मानने वाले थे । वे आधुनिक बंगाल के प्रमुख नेताओं में से थे । पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता को मानते तथा जानते हुए भी भारतीय संस्कृति की ओर उनका झुकाव विशेष था । वे शुरू में ब्रह्मसमाज से जुड़े हुए थे । परंतु ब्रह्मसमाजमें उन्होंने राष्ट्रीयता का सर्वथा अभाव महेसूस किया, अतः वे इनसे अलग हो गये । और 'आदि ब्रह्मसमाज' की स्थापना की । इसके द्वारा देश की समस्त पूर्वार्जित संस्कृतिका रक्षण करना था और पाश्चात्य सभ्यता के मोहक परंतु विषैले प्रभाव का सामना करना था । 'श्री अरविन्द' के पिता 'श्री डॉ. कृष्णधन घोष'- हिन्दू धर्मशास्त्र तथा 'बाईबल' को समानरूप से आदर दिलाना चाहते थे, परंतु इसके 'नाना राजनारायण बोस' पाश्चात्य धर्मग्रंथों से भारतीय धर्मशास्त्र को श्रेष्ठ मानते थे, और उन्हीं की स्थापना करना चाहते थे ।

इस प्रकार 'श्री अरविन्द' को एक ओर जहाँ मातृपक्ष से प्राचीन

भारतीय संस्कृति की उत्तम और महान शिक्षा मिली, वहीं दूसरी ओर पितृपक्ष से पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता का उन्माद विरासत में मिला है ।

❖ श्री अरविन्द की शिक्षा और दीक्षा :

सन् 1877 में 'श्री अरविन्द' को उनके पिताजी ने अपने दोनों बड़े पुत्रों के साथ 'दार्जलिंग' के ''लोरेहो कॉन्वण्ट' स्कूल में प्रविष्ट करा दिया । उस समय 'श्री अरविन्द' की अवस्था मात्र 5 वर्ष की थी । यह स्कूल भारत में रहनेवाले अंग्रेजी अधिकारियों की संतानों को अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए ख़ोला गया था । 'श्री अरविन्द' अपने भाईयों के साथ इस स्कूल में रहे, और छुट्टियों में माता, पिता और नानाजी से मिलते रहे । उन्हें उच्चशिक्षा पाने के लिए भविष्य में ब्रिटन जाना था जिसकी तैयारी 'आयरिस शिक्षिकाओं' द्वारा वे इसी स्कूल में करते रहे ।

'श्री अरविन्द' को सात वर्ष की आयु में उनके पिताजी ने '1879' ई. में शिक्षा के लिए' ईंग्लेन्ड' ले गये और वहाँ 'मांचेस्टर' में 'रेवरेण्ड विलियम ड्रियूएट' के पास रहने की व्यवस्था की गई । वे 'डॉ. घोष' के मित्र थे । उनको यह सूचना दी गई कि बालकों को भारतीय प्रभाव से दूर रखा जाए ँ, तथा किसी भी भारतीय से उनका परिचय,न होने दिया जाएँ । और कोशिश भी यही की गई । 'श्री ड्रियुएट' ने 'श्री अरविन्द' के दोनों भाइयों को माँचेष्टर के स्कूल में प्रवेश दिलवा दिया, और 'श्री अरविन्द' को वे घर पर ही पढ़ाते रहे । छोटी सी आयु में 'श्री अरविन्द' युरोपीय प्राचीन भाषाओं

को अत्यंत लगन से पढ़ते थे । और श्री ड्रियूएट लेटिन भाषा के अच्छे ज्ञाता थे । अतः ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं को श्री अरविन्द ने बचपन में ही सिख लिया । सन् 1885 में 'श्री अरविन्द' को लंदन के 'सेण्टपॉल स्कूल' में भर्ती करवा दिया । वहाँ के प्रिन्सिपाल' डॉ. वॉकर' ने 'श्री अरविन्द' को 'ग्रीक' भाषा का विशेष ज्ञान प्रदान किया । वहाँ श्री अरविन्द पाँच साल तक रहे । उन पाँच सालों में उन्होंने प्राचीन युरोपीय भाषाओं में काफी योग्यता प्राप्त की । इसके अतिरिक्त 'अंग्रेजी साहित्य', 'फ्रांसीसी साहित्य', 'यूरोप के प्राचीन से लेकर आधुनिक काल का इतिहास' तथा 'इटालियन, ' 'जर्मन' 'स्पेनी' आदि भाषाओं का ज्ञान भी बढ़ाया । 'श्री अरविन्द' की तीक्ष्ण बुद्धि के कारण वे प्राचिन और समकालिन युरोपीय संस्कृति के उत्तम तत्त्वों से परिचित हो गये, और उनके ज्ञान का क्षेत्र भी विस्तृत हो गया ।

'श्री अरविन्द' ने अपने अध्ययनकाल के दौरान आर्थिक कठिनाइयों का काफी सामना किया । क्योंकि वे जिस स्कूल में पढ़ते थे, उसमें बॉर्डिंग नहीं थी । इसलिए उनको अपने भाइयों के साथ बाहर रहना पड़ता था, जहाँ पैसे की अधिक आवश्यकता रहती थी । और उनके पिताजी ने पैसे भेजने में पहेले तो अनियमितता बर्ती पर बाद में पैसे भेजना ही बंद कर दिया । जिससे उनकी आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय हो गई कि दिन का खाना भी ठीक से नहीं मिलता था ।

'श्री अरविन्द' ने ही एक जगह पर लिखा है कि 'एक साल तक हमारा ख़ाना सुबह को एक या दो सेन्डविच, डबल रोटी, मक्खन और

चाय के प्याले तक सीमित रहा । शामको एक 'पेनी' के सेबलोय' तक ।''[2] इस प्रकार आर्थिक अभाव ने ही श्री अरविन्द को चारित्रिक दृढ़ता प्रदान करने में बहुत बड़ा योगदान दिया ।

'केम्ब्रीज' के सिनियर ट्युटर 'श्री डबल्यु प्रोएरो' श्री अरविन्दों के बड़े प्रशंसक थे । 'श्री अरविन्द' के बारे में एक पत्र में इन्होंने लिख़ा है कि ''श्री अरविन्द' 'अपनी क्लासिकल विद्वता' के अतिरिक्त भी उनका अंग्रेजी साहित्य ज्ञान औसत बी.ए. के छात्रों से अधिक था, वह अधिकांश अंग्रेजी युवकों से सुन्दर अंग्रेजी लिख़ते थे ।''[3] 'श्री डबल्युप्रोएरो' बादमें 'सरप्रोएरो' बन गये । और महान इतिहासविद् के रूप में प्रसिद्ध हुए । उन्होंने 'श्री अरविन्द' द्वारा 'कलासिकल ट्रायपोस' में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के लिए तथा अनेक पुरस्कार जीतने के लिए, अंग्रेजी साहित्य की योग्यता प्राप्त करने के कारण अपने पत्रमें उनकी काफी सराहना की है ।

इस प्रकार 'श्री अरविन्द' का बाल्य व युवाकाल शिक्षा-दिक्षा के साथ दुन्यवी संघर्ष में भी रत रहा । जिनका एक संक्षिप्त ब्यौरा देने का मैंने यहाँ प्रयत्न किया है । उनके जीवन की अन्य और कई बातें हैं, जो इस स्थान पर देना अशक्य है । श्री अरविन्द के विस्तृत जीवन प्रवाह को निम्नांकित जीवन चरित्रों के द्वारा और अधिक जाना जा सकता है ।

(1) श्री अरविन्द - ले. नवजात

(2) लाईफ ऑफ अरविन्दो - ले. ए. बी. पुरानी

(3) 'महायोगी' – ले. श्री आर. आर. दिवाकर

श्री अरविन्द का विदेश में देशप्रेम :

केंब्रिज में 'इण्डियन मज़लिस' नामकी भारतीय प्रवृत्ति से जुड़ी संस्था थी, जिसकी स्थापना 1891 में हुई थी, श्री अरविन्द ने इस संस्था के कार्यक्रमों में सक्रियता से भाग लिया, और भारत तथा भारतमाता के बारे में अपनी सोच बनाई । बादमें इसी संस्था के वे मंत्री भी बने । साथ ही उन्होंने भारत में स्थापित ब्रिटीश साम्राज्य के विरूद्ध अनेक क्रांतिकारी भाषण भी दियें । उसी संस्था के कुछ अत्यंत गर्मखून और देशप्रेमी युवकों ने ''दी लॉटस एण्ड डैगर'' नामकी एक गुप्त संस्था बनाई । जिनमें 'श्री अरविन्द' भी सम्मिलित हो गये । सभी युवकों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए काम करने का बीड़ा उठाया । इस दल का मुख्य कार्य था, नर्मदिल भारतीय नेताओं की नीति का विरोध करना और भारतीय लोगों के मानस में राष्ट्रप्रेम की ज्वाला जगाना । यह दल अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय समय पर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन करता था ।

'केंब्रिज' में रहते हुए 'श्री अरविन्द' देशप्रेम से ओतप्रोत हो चुके थे । साम्राज्यवादी अंग्रेजों की चुंगाल से जन्मभूमि को आज़ाद करने की अभिलाषा उनके 'मन' में जाग चुकी थी परंतु उस समय यह प्रेरणा आयरिश देशभक्तों के प्रचंड आंदोलन से प्रभावित थी । ''इण्डियन मज़लिस'' में उन्होंने जो भाषण दिये थे, वे इसी प्रभाव के साक्षी है । हालाकि इस संस्था

में दिये भाषण का कोई अभिलेख आज प्राप्य नहीं है ।

इसी प्रवृत्ति के कारण ब्रिटिश अफसरों पर इतना गहरा और विपरीत प्रभाव पड़ा कि वे लोग 'श्री अरविन्द' को आई.सी.एस. की रेन्क में सम्मिलित करने का विरोध करने लगे । 'श्री अरविन्द' को भी आई.सी.एस. होकर अंग्रेज सत्ता की हुकूमत में सम्मिलित होने की जरा भी ईच्छा नहीं थी । क्योंकि उनके 'मन' में इस साम्राज्यवाद के विरोध में एक भयंकर आंदोलन छिड़ गया था । सन् 1890 में 'सेन्टपॉल' की अंतिम परीक्षा में 80 पाउण्ड की स्कॉलरशीप प्राप्त की । इससे किंग्स कॉलेज में प्रवेश लिया । आई.सी.एस. की प्रवेश परीक्षा में ग्यारहवाँ स्थान प्राप्त किया । और अंत तक वे अच्छे अंकों के साथ पास होते रहे । कुछ परीक्षाओं में उन्हें कॉलेज पुरस्कार भी मिले । परंतु घुड़सवारी में पास न होने के कारण वे आइ.सी.एस. की उपाधि प्राप्त नहीं कर सके । तथा सम्बन्धित नौकरी भी प्राप्त नहीं कर सके । कुछ अन्य आधारों पर यह भी कहा जाता है कि 'श्री अरविन्द' का झुकाव ब्रिटीश नौकरी की ओर न होने के कारण वे जान बुझकर घुडसवारी की प्रतियोगिता में सम्मिलित न हुए । जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने शासकीय प्रतिबद्धता का हर क्षेत्र में विरोध किया । क्योंकि उनका मन और उनकी चेतना पूरी तरह से भारतीय थे । जो यह सब कुछ स्वीकार नहीं कर सकते थे ।

इस प्रकार 'श्री अरविन्द' ने ब्रिटन में रहते हुए अपने को विरासत में मिले मातृ संस्कार की वजह से 'भारतराष्ट्र' की स्वतंत्रता के लिए सोचना

आरंभ कर दिया था । यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि 'श्री अरविन्द' के पिताश्री 'डॉ. कृष्णधन' को शायद पहले से ही देशभक्ति तथा देशचेतना से डर था, इसलिए उन्होंने वहाँ विदेश में ख़ासतोर पर यह प्रबंध किया था, कि कोई भी भारतीय व्यक्ति या भारतीय विचार 'श्री अरविन्द' के पास पहुँच न सके । लेकिन फिर भी 'श्री अरविन्द' की चेतना सारे बाँधों को तोड़कर अपने गंतव्य की ओर बह चली । सारी बेड़ियाँ तोड़कर उनका चिंतन राष्ट्रप्रेम से भर गया । संक्षेप में 'श्री अरविन्द' ने विदेश की भूमि पर, विदेशी वातावरण और शिक्षा पाकर भी 'देशप्रेम' और अपनी मूलचेतना से तत्पर होकर जुड़े रहे ।

'श्री अरविन्द' का स्वदेश आगमन :

'श्री अरविन्द'ने अपनी शिक्षा समाप्त करके इग्लेंड से भारत आने के लिए फरवरी 1893 में प्रस्थान किया । उनके पिताजी का पहले ही निधन हो चुका था । क्योकि पुत्रों के वापस आने की राह में वे आँखें बिछाये बैठे थे, न जाने कहाँसे उनको ऐसी सूचना मिली कि ' श्री अरविन्द' जिस जहाज से लौट रहे थे वह जहाज पुर्तगाल तक आते-आते डूब गया है । स्वभावतः डॉ. घोष ने यह समझ बाँध ली कि मेरा बेटा भी उसी में डूबकर मर गया, इसी विचार से उनको एक ज़ोरदार दिल का दौरा पड़ा और उनके हृदय की गति सदा के लिए बंद हो गई । यह बात भी सच थी कि एक जहाज पुर्तगाल के समुद्र में डूब गया था, लेकिन 'श्री अरविन्द' उस जहाज के पीछे आ रहे दूसरे जहाज में सफर कर रहे थे । उनके जहाज को भी रास्ते में एक बड़े

तूफान का सामना करना पड़ा, लेकिन अंततोगत्वा सुरक्षित रूपसे वह 'कार्थेज' जहाज फरवरी के प्रारंभ में 1893 में बम्बई के 'एपॉलो बंदरगाह' में लगा ।

'एपॉलो बन्दरगाह' में देश की धरती पर श्री अरविन्द के पाँव पड़े तो भारतमाँ ने एक विलक्षण रूप में उनका स्वागत किया । उन्होंने लिखा है कि उस समय एक अपार शांति का भाव उन पर छा गया था, जो चारों ओर से आवृत किये हुए महीनों महीनों तक बना रहा था । वह अनुभूति इस संसार से जुड़ी हुई थी, उस समय ऐसा लगा मानो एक मात्र वह भागवत सत्ता ही समूचे जगत् में व्याप्त है, और वही अंतरयामी शक्ति एक-एक शरीर में रमी हुई है ।

जब 'श्री कृष्णधन घोष' का निधन हुआ, तब 'श्री अरविन्द' की उम्र ईक्कीस वर्ष की थी, उसी समय 'बड़ौदा' के 'महाराजा सरसयाजीराव गायकवाड़' ने 'श्री अरविन्द' को अपने राज्य की प्रशासनिक सेवा में नियुक्ति दे दी । 'श्री अरविन्द' बड़ौदा राज्य की सेवामें 8 फरवरी 1893 से 18 जून 1907 तक रहे । बीच में 1906 में कुछ समय तक अवकाश पर रहे । बड़ौदा राज्य की सेवा का यह समय 'श्री अरविन्द' के 'भावीजीवन' के लिए अत्यंत महत्त्व का साबित हुआ । पहले के उनके राजनीतिक जीवन पर भी इसका प्रभाव रहा और बाद के 'पोंडिचेरी' के आध्यात्मिक जीवन की नींव भी यहीं डाली गई । इस समयावधि में 'श्री अरविन्द'ने भूमिव्यवस्था विभाग, स्टेम्प कार्यालय, 'केन्द्रीय राजस्व कार्यालय' तथा मंत्रालय आदि

विभागों में अपना उत्तरदायित्व निभाया ।

दो वर्ष के बाद विभिन्न विभागों में काम करते – करते 'श्री अरविन्द' 'बड़ौदा कॉलेज' में आंशिक तौर पर फ्रेन्च पढ़ाने के लिए जाने लगे । पढ़ाने का यह अनुभव 'श्री अरविन्द' को अपने और करीब खींचता है । और जो पहले थोड़े–बहुत समय के लिए जाया करते थे, वे अब सप्ताह में 6-6 घण्टे तक पढ़ाने के लिए जाने लगे । साथ ही प्रशासनिक कार्य करते रहे । सन् 1899 में 'फ्रेन्च' के एक प्रॉफेसर दीर्धकालीन छुट्टी के लिए जाते हैं और संयोगवश 'श्री अरविन्द' को वहाँ नियुक्ति मिल जाती है । बाद में तो वे फ्रेन्च के साथ–साथ अंग्रेजी भी पढ़ाने लगते हैं । और फिर सन् 1900 में अंग्रेजी के पूर्णकालीन प्रॉफेसर के रूप में नियुक्ति मिल जाती है । 5 साल तक अंग्रेजी पढ़ाने के बाद सन् 1905 में वे वहाँ प्रिन्सिपाल के पद पर नियुक्त हो जाते हैं ।

'श्री अरविन्द' को प्रशासनिक उत्तरदायित्व की अपेक्षा यह शैक्षणिक उत्तरदायित्व अत्यंत पसंद आया । और अध्यापक के रूप में उन्होंने सफलतापूर्वक कार्य किया । विद्यार्थी से लेकर प्राचार्य तक वे हमेशा लोकप्रिय रहे । 'श्री अरविन्द' कभी भी नोट्स बनाकर क्लासरूम में पढ़ाने नहीं जाते थे । उनके विचार अपने मौलिक हुआ करते थे । वे फ्रेन्च, अंग्रेजी के अलावा 'बँगला साहित्य' का भी पठन–पाठन करते थे । ''बंकिमचन्द्र चेटर्जी' – 'मधुसूदन दत्त', आदि रचनाकारों से वे काफी प्रभावित थे । और उन पर टिप्पणियाँ भी लिखते थे । 'श्री अरविन्द'

विद्यार्थियों को कॉलेज समय के अतिरिक्त भी पढ़ाया करते थे । संक्षेप में 'श्री अरविन्द' का एक अध्यापक के रूप मे बड़ौदा राज्य पर बहुत बड़ा ऋण रहा है । उनका अध्यापकीय जीवन किसी भी कक्षा के अध्यपाक के लिए प्रेरणादायी जीवन है ।

इस प्रकार बड़ौदा निवास के दौरान 'श्री अरविन्द' की पठन-पाठन की अभिरूचि को और बल मिला । एक शिक्षक के रूप में उनका व्यक्तितत्त्व अव्वल दर्जे का रहा है । यहाँ के उनके शिक्षा समर्पित जीवन से हमें 'श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर' के जीवन के साथ तुलना करने का अवसर मिलता है । 'चिंतन' के धरातल पर तथा आध्यात्मिक सोच के धरातल पर भी यहाँ 'श्री अरविन्द' को काफी बल मिला ।

विवाह :

'श्री अरविन्द' ने 29 वर्ष की आयु में 'रांची' के 'श्री भूपालचन्द्र बसु' की 14 वर्षीय पुत्री मृणालिनी के साथ विवाह किया था । वह समय सन् 1901 का था । 'श्री अरविन्द' का वैवाहिक जीवन दीर्धकाल तक सुखी नहीं रहेगा, इसके संकेत उनके विवाह के समय ही मिल चुके थे । हुआ यह कि कन्या के पिता का यह आग्रह था कि 'श्री अरविन्द' विवाह से पहले विदेश यात्रा का प्रायश्चित करें । परंतु 'श्री अरविन्द' ने इस बात से साफ इन्कार कर दिया । और अनमने भावसे शास्त्रीय विधि से विवाह कर दिया गया । विवाह के बाद कुछ समय ''नैनीताल'' में बिताकर वे 'बड़ौदा' चले गये । तब तक कॉलेज भी खुल चुका था ।

'श्री अरविन्द' का वैवाहिक जीवन सफल नहीं रह सका, इनके कई कारणों में से एक कारण 'श्री अरविन्द' और 'मृणालिनी' के वैचारिक मतभेद भी हैं । परिवार, शिक्षा, दिक्षा, माहौल तथा 'उम्र' आदि की दृष्टि से दोनों के बीच बहुत ज्यादा अंतर था । जो वैचारिक अंतर का भी कारण बना । 'श्री अरविन्द' राष्ट्रीय विचारधारा से आप्लावित थे, तब 'मृणालिनी' पारिवारिक जीवन को मुश्किल से समझ रही थी । वह 'श्री अरविन्द' को श्रध्धेय तो मानती थी, परंतु परिवार की आर्थिक आवश्यकता को पूर्ण करने में असमर्थ मानती थी । 'श्री अरविन्द'ने भी इस दुविधा को अनुभव किया था, परंतु जिन साधना पथ को वह अपने लिए चुन चुके थे, उसमें समझौता करने का अर्थ वे सर्व विनाश मानते थे । अतः उन्होंने परिस्थिति को सुधारने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया । इसी मतभेद के दौरान ही दोनों का जीवन साथ होते हुए भी नितान्त एकांकी और अकेला रहने लगा । यहाँ पति-पत्नी के बीच सभी तरह से संस्कारों की एक बड़ी खाई बन रही थी, जिसे 'श्री अरविन्द' भलीभाँति पहचान गये थे । अपने वैवाहिक जीवन के दौरान लिखे़ इस पत्र से 'श्री अरविन्द' का साफ दृष्टिकोण हमारे सामने आ जाता है, यह उनका दृढ भाव था, तथा उन्होंने खुद चुना हुआ पागलपन का रास्ता था, वे लिखते हैं ...." संभवतः इसी बीच में तुम्हें इस बात का पता चल गया है कि जिसके भाग्य के साथ तुम्हारा भाग्य जुड़ा है, वह बड़ा ही विचित्र मनुष्य है । इस देश में आज-कल के लोगों का जैसा मनोभाव है, उनके जीवन का जैसा उद्देश्य है, कर्म का जेसा क्षेत्र है, ठीक वैसा ही मेरा नहीं है सबकुछ ही भिन्न और

असाधारण है । ....उसे संभवत: तुम जानती हो, उन भावों को वे (लोग) पागलपन कहते हैं ।

पागल तो पागलपन के रास्ते दौड़ेगा ही, तुम उसे पकड़कर नहीं रख सकती । तुम्हारी अपेक्षा उसका स्वभाव ही अधिक बलवान है । तो फिर क्या तुम एक कोने में बैठकर रोओगी या उसके साथ ही दौड़ोगी ? ... मेरे तीन पागलपन हैं पहला पागलपन यह है कि मेरा दृढ विश्वास है कि भगवान ने... जो धन दिया है, यह सब भगवान का है, जो कुछ परिवार के भरणपोषण में लगता है, और जो नितांत आवश्यक है, उसी को अपने लिए खर्च करने का अधिकार है । उसके बाद जो कुछ बाकी रह जाता है, उसे भगवान को लौटा देना उचित है ।''[4]

इस प्रकार 'श्री अरविन्द' का वैवाहिक जीवन वहीं पर समाप्त-सा हो गया था । कुल मिलाकर व्यावहारिक दृष्टि से 'श्री अरविन्द' का वैवाहिक जीवन असफल रहा ।

'श्री अरविन्द' का राजनीतिक दृष्टिकोण :

'इंग्लेन्ड' में पढ़ाई के दौरान ही 'श्री अरविन्द' की 'माँ भारती' के प्रति अपनी प्रीति उजागर हो चुकी थी । वहीं पर उन्हींके वातावरण में रहकर अपने देश के प्रति अपना लगाव, और प्रेम उभर आया था । 'भारतवर्ष' की

आज़ादी और उसके लिए चल रहे विविध आंदोलनों से वे काफी प्रभावित हुए थे, तथा गहेराई से सोच भी रहे थे । तत्कालीन दौर में ''लाल, बाल और पाल'' की त्रिपुटी एकदम सक्रिय थी । वे यदि राजनीति के प्राणरूप थे, तो 'श्री अरविन्द' उनकी प्रेरणा थे । उनकी अंतरात्मा थे । 'श्री अरविन्द' की देशभक्ति एक साधना भक्ति थी तो उनकी राजनीति 'दुर्गामाता' का पर्याय थी । 'श्री अरविन्द' का राजनीतिक दृष्टिकोण राष्ट्रचेतना और आध्यात्मिक चेतना का एक समन्वित रूप था , एक ऐसी विशिष्ट भावना उनके इस दृष्टिकोण से स्पष्ट होती थी कि जिनको हम एक दूसरे से अलग थलक नहीं कर सकते हैं । 'श्री अरविन्द' के 'राजनीतिक' दृष्टिकोण की कुछ विशेषताएँ निम्न प्रकार बताई जा सकती हैं ।

(1) आध्यात्मिक राष्ट्रवाद और राष्ट्रभूमि का मातृभूमि के रूप में दैवीस्वरूप स्थापित करना । और भारतीय स्वतंत्रता को अत्यधिक महत्त्व देना ।

(2) स्वतंत्रता प्राप्ति का आदर्श, प्रतिपादन करने के लिए विदेशी शासन से मुक्त होने की आवश्यकता पर बल देना । और राष्ट्रीय आंदोलन को उत्तेजना, प्रेरणा तथा उत्साहवर्धक बनाने में क्रांतिकारी योगदान देना ।

(3) स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए एवं सत्याग्रह के सिद्धांत के लिए आवश्यकता होने पर, आक्रमकता के प्रतिपादन में योगदान देना ।

(4) भारतीय राजनीति, दार्शनिक विचारधारा पर नियोजित हो, तथा भारतीय राष्ट्रीय एकता का आदर्श विश्व एकता हो ।

इस प्रकार 'श्री अरविन्द' का भारतीय राजनीतिक दृष्टिकोण विशाल एवं गहरी सूझ-बूझवाला था । उनका यही ध्येय था कि हमारा राष्ट्र आज़ाद होकर एक गौरवशाली राष्ट्र बनकर दुनिया के सामने ऊभरकर आए, तथा दुनिया का मार्गदर्शन करें । उनको भारतीय दर्शन प्रणाली तथा दैवनियोजित बृहत्तर योग में संपूर्ण विश्वास था, तथा उनका यह स्पष्ट मंतव्य था कि इसी रास्ते पर चलकर ही भारत विश्व के ऊच्चासन पर आरूढ़ हो सकता है । उनकी पहली यह कोशिश थी कि प्रत्येक भारतीय में प्रबल राष्ट्रवाद जाग्रत हो, जिससे सारा राष्ट्र मज़बूत और उन्नत बन सके । अपने राजनीति और मानवसमाज के प्रति के विचारों को धी 'डॉविट्रन ओफ़ पोसिव रेसिस्टैन्स' नामक पुस्तक में प्रकट करते हुए 'श्री अरविन्द' कहते हैं कि – ''राजनीति का सम्बन्ध मानवों के समूह से है, व्यक्तियों से नहीं, समूह से यह कहना कि वह संतों जैसा व्यवहार करे, भागवत् प्रेम की ऊँचाई तक जाए तथा हमें पीड़ा देनेवाले को प्रेम करे, यह मानव प्रकृति की उपेक्षा करना है । ... युद्ध को पाप, आक्रमकता को नैतिकता का अध:पतन समझकर पीछे हटनेवालों के लिए 'गीता' सर्वोत्तम उत्तर है । ... विदेशियों के प्रति घृणा नहीं, अपितु विदेशी शोषण के दोषों का विरोध ही बहिष्कार का मूल है .... न्याय और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए संत की पवित्रता जितनी आवश्यक है, उतनी ही योद्धा की तलवार आवश्यक है । जैसे 'शिवाजी' के बिना 'रामदास' अधूरे हैं ।''[5]

'श्री अरविन्द' अपने सिद्धांतों की पूर्ति के लिए जिनमें स्वतंत्र भारत, मानवीय एकता आदि आते हैं, उनके लिए आक्रमकता के प्रयोग से भी काम लेते थे । अपने विचार, उन्होंने अपने लेखों के द्वारा 'वंदेमातरम्', 'इन्द्रप्रकाश', 'युगान्तर' आदि पत्र–पत्रिकाओं में प्रकट किये थे । जिनमें तत्कालिन राजनीतिक संस्थाओं, व्यक्तियों, आदि के स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ गलत कदम का विरोध भी था । उनके लेखों में भारतीय चिंतन की सूक्ष्मशक्ति, ज्वलन्त देशभक्ति, दुर्लभसाहस, अधिकारों के प्रति जागरूकता आदि के साथ–साथ निःस्वार्थ चरित्र एवं अभिव्यक्ति की क्षमता तथा भाषा प्राविण्य स्पष्टतः दिखाई देते थे ।

बंगाल में 1905 में 21 सितम्बर को 'बँग–भंग' का कानून पास हुआ । इसके कारण बँगाल में व्रत, प्रार्थना, उपासना का आयोजन किया गया, और 16 अकतूबर के दिन हजारों स्त्री–पुरूषों ने स्वदेशी वस्तुओं का व्रत लेकर व्रत दिन मनाया । विदेशी चीज़ो–वस्त्रों की होली जलाई गई । यह सारा आंदोलन जो भारत के इतिहास में स्वदेशी आंदोलन के रूप में जाना जाता है । 'श्री अरविन्द' की 'इंग्लेण्ड' स्थिर 'लोट्स एण्ड ड्रेगर' नामकी संस्था की बंबई इकाई के प्रभाव से शुरू हुआ था । इस संस्था ने क्रान्ति की शपथ ली थी । जिसके प्रभाव से बँगाल के गाँव–गाँव में तलवार, भाला, लाठी आदि का प्रशिक्षण शुरू हो गया था । और बच्चे से लेकर बड़े तक क्रान्ति की ज्वाला में कूद पड़े थे ।

इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से 'श्री अरविन्द' का चिंतन एक बहुमूल्य

चिंतन था । उनके चिंतन का संपूर्ण स्वरूप भारतीय स्वरूप था । उनकी दृष्टि से 'स्व' की पहेचान के लिए आदमी को खुद लड़ाई लड़नी है तथा सारे राष्ट्र को जाग्रत भी करना है । अनेक विभिन्नताओं के बावजूद भी एकता स्थापित करना उनका मुख्य लक्ष्य था ।

भारतीय राजनीति में सक्रिय भूमिका :

'श्री अरविन्द' केवल दार्शनिक रूचि या प्रवृत्ति के व्यक्तित्त्व ही नहीं थे वरन् 'भारतवर्ष' की तत्कालीन राजनीति एवं अन्य गतिविधियों से भी गहरे रूप से जुड़े हुए थे । भारत राष्ट्र की आज़ादी के लिए उनकी तत्परता अन्य नेताओं की बज़ाय ज्यादा थी । वे क्षण-क्षण के जीवन को जीने तथा उसको पाने के पक्षधर थे ''....तत्कालीन दौर में 'लाला लाजपतराय', 'बालगंगाधर तिलक; और विपिनचन्द्र पाल राजनीतिक क्षेत्रों में अत्यधिक सक्रिय थे । वे यदि राजनीतिके प्राण थे, तो   श्री अरविन्द, उनकी प्रेरणा और अंतरात्मा थे । उनकी देशभक्ति एक साधना थी, तो राजनीति दुर्गामाता का पर्याय थी ।''[6] 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' ने भी 'श्री अरविन्द' को 'स्वदेशी आत्मा की वाणी मूर्ति' कहा है । उन्होंने 'श्री अरविन्द' के व्यक्तित्त्व में समग्र भारत वर्ष को सुचारू ढंग से संचालित करने की क्षमता का भी दर्शन किया था । 'श्री अरविन्द' की 'मातृभूमि' के बारे में सोच राष्ट्रवाद और दार्शनिक चिन्तन से भरी हुई थी । 'डॉ. कर्णसिंह' ने 'श्री अरविन्द' की राजनीति को तथा उसके घटनाक्रम को निम्नलिखित भेदों में विभाजित किया है ।

(1) आध्यात्मिक राष्ट्रवाद और मातृभूमि के देवी रूप की उनकी धारणाएँ, जिसने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को गूढ़ महत्त्व दिया ।

(2) विदेशी शासन से मुक्त पूर्ण स्वातंत्र्य प्राप्ति का आदर्श प्रतिपादन और राष्ट्रीय आंदोलन को उत्तेजक, प्रेरणाप्रद और क्रान्तिकारी बनाने में उनका योगदान ।

(3) बहिष्कार और सत्याग्रह के सिद्धांत और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आवश्यक होने पर शक्तिप्रयोग-सिद्धांत के प्रतिपादन में उनका योग ।

(4) संसार के मामलों में भारत के दैवनियोजित बृहत्तर, योग विषयक उनका स्वप्न और मानव एकता का उनका आदर्श जिसे अन्त में निश्चय ही राष्ट्रीय उन्नति मात्र से ही कहीं ऊपर उठना चाहिए ।''[7]

'श्री अरविन्द' को क्रान्तिकारी 'सुभाषचन्द्र बोस' के गुरू होने का महान सम्मान भी प्राप्त है । उस समय 'श्री अरविन्द' स्वातंत्र्य के लिए हिंसात्मक उपायों को ठीक मानते थे, और अपनी ये मान्यता पोंडीचेरी जाने के बाद भी 'गाँधीजी' के अहिंसक मार्ग से अलग रही । किन्तु साथ ही वे अव्यावहारिक हिंसा के पक्षपाती नहीं थे । सशस्त्र विद्रोह से अंग्रेजों को बेमकसद सताना, उनकी विचारधारा के खिलाफ़ था । और वे यह भी नहीं मानते थे कि इस प्रकार स्वतंत्रता मिल सकती है । वे अंग्रेजों के बर्बर बल

प्रयोग के विरूद्ध ही सशस्त्र उपाय को उचित समझते थे ।

'श्री अरविन्द' की राजनीतिक विचारधारा जनतांत्रिक राष्ट्रवाद की विचारधारा थी । उन्हीं के शब्दों में " ब्रिटीश सरकार बुरी है, इस कारण उसके विरूद्ध नहीं है, अपितु इस कारण है, कि वह अभारतीय सरकार है, विदेशी सरकार है ।"(8)

ये शब्द 'श्री अरविन्द' ने 1907 में लिखे एक राष्ट्रवादी लेख में कहे थे । 'श्री अरविन्द' मानते थे कि सरकार बुरी या अच्छी होने से इसका विरोध नहीं हो रहा है, बल्कि इस सरकार में भारतीयता नहीं है । इसका कारण यह है कि 'श्री अरविन्द' को विश्वास था कि वह समय आ गया है, जब भारत एक महान स्वतंत्र और संगठित राष्ट्र बन सकता है । यह विध्वंस एक रचनात्मक प्रेरणा से हो रहा है । यह कोई विद्रोह या निराशा का स्वर नहीं है, अपितु राष्ट्रीय श्रद्धा एवं विश्वास का सिद्धांत है ।

सन् 1907 में देश में दो विचारधाराएँ प्रख़र रूप से चल रही थीं । एक नरम दल और दूसरी गरम दल । 'श्री अरविन्द' गरम दल के साथ जुड़े हुए थे । स्वदेशी आंदोलनों को लेकर इन दोनों दलों में मतैक्य नहीं था । परिणाम स्वरूप 'सुरत' अधिवेशन में दोनो दल अलग हो गये, जिनमें से 'नेशनालिस्ट दल' के 'श्री अरविन्द' अध्यक्ष बने । इस समय 'श्री अरविन्द' राजनीति में खुलकर भाग लेने लगे थे । 'बंगला' के एक दैनिकपत्र 'नवशक्ति' के संपादन का भार भी वे संभाल रहे थे । उसी समय 'श्री अरविन्द' के छोटेभाई 'बारीन्द्रकुमार' क्रान्तिकारियों के सशस्त्र आंदोलन से

जुड़े हुए थे । जब पुलिस ने उनको बम्ब बनाने के एक छोटे से कारखाने के साथ गिरफ़्तार किया तो ''श्री अरविन्द'' के भाई होने के नाते उन पर सरकार की कृपादृष्टि रही । इसके पहले 'श्री अरविन्द' को भी गिरफ़्तार किया गया, एक साल तक वे 'अलिपुर' जेल में रहे । इस 'समय' उनके विरूद्ध काफी गवाह और साक्ष्यसामग्री प्रस्तुत की गई, जिसके कारण उनके बचने की उम्मीद बहुत कम थी, कविश्री 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर ' ने तो 'श्री अरविन्द' को श्रद्धांजलि देते हुए कविता भी लिख डाली थी । परंतु 'श्री अरविन्द' के केस की पैरवी कर रहे कर रहे एक प्रतिभावंत युवा वकील चितरंजनदास, जो बाद में देशबंधु के नाम से प्रसिद्ध हुए, उन्होंने आठ दिन तक 'श्री अरविन्द' की सफाई में पक्ष को स्पष्ट करते हुए भाषण दिया । और अंत में उन्होंने कहा कि – ''मेरी अपील यह है कि इस षड़यंत्र के मौन हो जाने के बहुत पश्चात इस आँधी तूफान के समाप्त हो जाने के बहुत बाद उनके देहावसान के बहुत बाद उन्हें संसार देशभक्ति का कवि, राष्ट्रीयता का मसीहा और समस्त मानवता का प्रेमी मानेगा । बहुत बाद तक उनके शब्द ध्वनित एवं प्रतिध्वनित होते रहेंगे । केवल इस देश में ही नहीं परंतु समुद्र पार देशदेशांतरों में । इसलिए मेरा निवेदन है कि 'आज जो व्यक्ति आपके सामने कठघरे में ख़डा है, यह केवल आपके ही न्यायालय में नहीं, परंतु इतिहास के महान्यायालय में न्याय की माँग कर रहा है ।''[9]

'श्री अरविन्द' जब गिरफ़्तार हुए तब उन्होंने आध्यात्मिक, चिंतन के विकासक्रम को अर्जित तो किया था, जेल की इस अनुभूति से उनमें बहुत

परिवर्तन आ गया था । परंतु जेल के बाहर आकर राष्ट्रीय आंदोलन की जो स्थिति थी, उन्हे देख़कर उनका यह परिवर्तन अत्यंत गतिशील हो गया । देश में एक सन्नाटा छाया हुआ था, लोग गभराये हुए थे, राष्ट्र के उग्रपंथियों के सामने ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र चल रहा था । राष्ट्रवादी अपने आप को दिशाहीन समझने लगे थे । ऐसे में 'श्री अरविन्द' कहते है, कि नेशनल पार्टी की स्थिति कठिन है, परंतु असंभव नहीं, पार्टी अब भी है और वह पहले से कम शक्तिशाली और व्यापक नहीं, किन्तु उसको एक नीति और नेता की जरूरत है ।''(10)

इस प्रकार 'श्री अरविन्द' कारावास के दौरान के विविध घटनाक्रम एवं अनुभूति के धरातल की गहनता से इसी निर्णय की ओर सहजता से पहुँच गये थे, कि अब इस रास्ते से मुझे आध्यात्मिकता का रास्ता ही लेना चाहिए, क्योंकि वहाँ मुझे बहुत कुछ करना है । यह सारा घटनाक्रम इतना साहजिक एवं पूर्वनियोजित लग रहा था कि, 'श्री अरविन्द' ने किसी की भी परवाह किए बगैर भारत की सक्रिय राजनीति से अपने आपको अलग कर लिया और साथ ही चेतना के धरातल पर बड़े वेग से अग्रसर होने लगे । यहाँ यह भी एक सवाल उठता है कि उनके कारावास के दौरान ही किसी दैवीशक्ति ने उन्हे उपरोक्त प्रेरणा देकर अध्यात्म के रास्ते पर चलने की प्रेरणा दी थी या नहीं ? मगर इस ठोस तथा ऐतिहासक निर्णय से तो यही जान पड़ता है कि, 'श्री अरविन्द' को निश्चित रूप से ऐसी कोई प्रेरणा मिली जिसके फल स्वरूप वे अध्यात्म के राही बन गये ।

इसका मतलब यह भी नहीं लगाना चाहिए कि 'श्री अरविन्द'ने उस समय राष्ट्र, एवं राष्ट्र के स्वतंत्रता आंदोलन से अपने आपको पूर्णरूप से दूर कर लिया था, उसी समय का उनका यह कथन महत्त्वपूर्व एवं ऐतिहासिक बन पड़ा है – ''हम पूर्ण स्वराज के संदेश का प्रचार करते हैं, कई लोग स्वातंत्र्य शब्द का प्रयोग करने से डरते हैं । लेकिन मैंने हंमेशा इसी का प्रयोग किया है । क्योंकि अपने देशकी स्वतंत्रता की आकांक्षा मेरे जीवन का मूल मंत्र है ।''[11]

'श्री अरविन्द' की दार्शनिक अभिरूचि

भारतीय अध्यात्मदर्शन की परंपरा बहुत ही पुरानी तथा सुदीर्घ परंपरा मानी जाती हैं । यह देश दुनिया का अकेला देश मात्र है, जिस की गौरवभूमि पर एक लम्बी दर्शन एवं दार्शनिकों की परंपरा चली । इसी घटनाक्रम में 'महर्षि अरविन्द' का जुड़ना एक महानतम ऐतिहासिक घटना मानी जाती है । 'महर्षि अरविन्द' ने अपने मौलिक चिंतन से भारतीय दर्शन को एक गरिमा प्रदान की है अब हम उनके इसी जीवनप्रवाह को देखेंगे ।

'श्री अरविन्द' की दृष्टि में भारत की प्राचीन दार्शनिकधारा विश्व दार्शनिक परंपरा से महान है । फलतः उपनिषदों की विचारधारा के आँचल में ही उनका नूतनदर्शन विकसित हुआ । 'श्री अरविन्द'ने युरोप के महान दार्शनिकों के विचारतत्त्वों का मंथन किया ओर वे इस तथ्य पर पहुंचे थे कि भारतीय वेदांत दर्शन ही अब तक की विकसित विचारधाराओं में सबसे अधिक पूर्ण और वैज्ञानिक है । अन्य सब दर्शन अपूर्ण एवम् एकाकी हैं ।

भारत आगमन के समय से ही 'श्री अरविन्द' में आध्यात्मिकता की भावना अधिक से अधिक गहरी होती जा रही थी । दर्शन में ही नहीं सनातन धर्म में उनकी आस्था दृढ़तर होती जा रही थी । उन्होंने केवल बौद्धिक विकास को ही महत्त्व न देकर जीवन की अतल गहराई में उतरकर 'योग' द्वारा 'आत्मशक्ति' को प्राप्त करने को भी महत्त्व दिया । श्री अरविन्दने गुरू की खोज की पर गुरू मिले नहीं । गंगामठ के 'स्वामी ब्रह्मानंदजी' का दर्शन करने वे गए तो वे खुद 'श्री अरविन्द' से प्रभावित हुए और किसीके सामने न देख़ने का अपना व्रत तोड़कर 'श्री अरविन्द' को एक टक देखते रहे । एक नागासन्यासी की योगशक्ति से तथा उनके चमत्कारों से भी वे प्रभावित हुए, इसके उपरांत सबसे अधिक प्रभावित बड़ौदा में मिले 'श्री विष्णुप्रभाकर लेले' से हुए । 'श्री लेले' से 'मन' को निर्विषय, निर्विकल्प तथा निश्चिंत करने का रहस्य ज्ञात हुआ । 'श्री अरविन्द' ने इस रहस्य को जानने के बाद कइ महीनों तक उसका प्रायोगिक अनुभव किया, बाह्य जीवन के सारे क्रिया व्यापार वे यथावत् करते रहे पर आंतरिक मन से वे विकल्प शून्य, चिंताशून्य और विषयशून्य होते जा रहे थे ।

'श्री अरविन्द' राजनीतिक समस्याओं में जब सक्रिय थे, तब भी आध्यात्मिक चिंतन में वे रत ही थे, सन् 1900 के आसपास उनके जीवन में आध्यात्मिक चिंतन और राजनीतिक सक्रियता, दोनों धाराएँ समानांतर चलती थी । परंतु बंगभंग के प्रसंग से उनकी राजनीतिक सक्रियता की धारा का स्रोत थोड़ा मंद पड़ा, और चिंतन की धारा अधिक तेजी से बहने लगी ।

वस्तुतः राजनीतिक धारा का स्रोत भी गहन आध्यात्मिकता से प्रवाहित होता था । ऐसे में उनकी मुलाकात 'श्री लेले' से हुई ।

भारतीय साहित्य और सभ्यता अपनी वैचारिक दृष्टि और अलग सत्व के कारण वैश्विक सोच के धरातल से अलग है । यह नवीन दृष्टिकोण बहुत पूर्व में हो गये ऋषियों के सूत्रों से प्राप्त हुआ है । इस प्रकार इस सोच के कारण ही दार्शनिक चिन्तन के नये सोपान सर किये हैं, तथा कितने ही रहस्यों को उद्‌घाटित किए हैं । इन्हीं रहस्यों ने जब विचार का पहलू पकड़ के दूसरे लोगों तक प्रवाहित होना चाहा तब मान्यता तथा सिध्धांतों का रूप लिया । जिस किसी ने भी इस विषय पर चिन्तन किया, वे व्यक्ति अपने नाम से प्रसिद्ध होते गये । जिनमें मुख्यतः प्राचीन ऋषिगण हैं ।

भारतीयदर्शन की परंपरा और अरविन्द दर्शन

भारतीयदर्शन धारा ने अपनी विशिष्टता से तथा लम्बी सोच के उपरांत जीवन, जगत, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, धर्म, चेतना, शक्तितत्त्व, प्रकृति सौंदर्य, मोक्ष आदि विभिन्न जीवन तत्त्वों को लेकर बड़ी खोज़ की है ।

कालखण्ड की धारणा अनुसार यहाँ पूर्व वैदिक चिन्तनधारा, उपनिषद चिंतनधारा, ब्राह्मण आरण्यक चिन्तनधारा, सांख्य चिंतनधारा तथा बाद में बौद्ध चिंतनधारा तथा जैन चिंतनधारा प्रवाहित रही है ।

कालांतर में इस्लाम व क्रिश्चियन धर्म की मान्यताएँ भी स्वीकार – अस्वीकार होती रही हैं ।

विगत शताब्दी में पूर्व मान्यता एवं पूर्व दार्शनिक प्रणालियों पर अनेक दार्शनिकों ने पुर्नविचार एवं पुर्नमूल्यांकन किया है । यहाँ पूर्व की धारणाओं को और पूर्णता देना ही इनका आशय रहा है, नहीं कि खंडन का । इन विचारकों में स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, योगानंद परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महात्मागाँधी तथा महर्षि अरविन्द ने महत्त्वपूर्ण एवं सार्वत्रिक योगदान दिया है ।

मानवजीवन की अर्थवत्ता तथा मानवजीवन कैसे उत्तरोत्तर विकास करके महान बने यही इन दार्शनिकों का एवं उनकी दार्शनिकधारा का ध्येय बिन्दु रहा है ।

मनुष्य जब 'चिन्तनक्षण' में इस जगत तथा सारे क्रिया-कलाप के बारे में, मनुष्य के आसपास छायी प्रकृति के बारे में विचार करता है, तब खुद दर्शन के गूढ़ एवं जगत के रहस्यों के प्रति आकृष्ट होकर वह सारी गुत्थियों को सुलझाने लगता है । तथा इस विराट वैश्विक सत्ता को जानने के लिए प्रवृत्त होता है ।

दर्शन की सार्थकता तब मानी जाएगी – जब उसमें मनुष्य को केवल कर्म ही नहीं उसका रास्ता भी दिख़ता हो । केवल मार्गदर्शन ही नहीं वरन् उसको श्रेष्ठ बनाकर उस पथ पर चलने की विधि भी बताए और उस गंतव्य तक पहुँचाए, जहाँ वैश्विक भावनाओं का जन्म होता है । जब सर्वमंगलकारी भावनाओं का उदय हो तब ही उस दार्शनिक विचारधारा की सार्थकता माननी चाहिए ।

दर्शन और संस्कृति

"दृश्यते: अनेन इति दर्शनम् ।" की सर्वसामान्य मान्यता के अनुसार जिस मार्ग या प्रणाली के रास्ते चलकर उन विचारधाराओं का निर्वाह करते कुछ प्राप्ति हो या उसकी सूचना मिले, और शांति मिले वह दर्शन सच्चा दर्शन है ।

हम जब किसी देश के दर्शन, धर्म और सभ्यता की चर्चा करते हैं, तब प्रत्यक्ष रूप से उस देश की संस्कृति की भी बात करते होते हैं ।

वह संस्कृति कितनी पुरानी है ? वह किन आधारों पर टीकी है ? उसका फलसफा कया है ? इन सारे सवालों का उत्तर उस देश की, उसकी सभ्यता की ऊँचाई गरिमा एवं चिंतनधारा से पता लगा सकते हैं । वहाँ के बुद्धिधन, कला, काव्य तथा अन्य रंगकर्म कितने प्रबल हैं ? उनको जानने से मालूम होता है कि वहाँ के मूल्य और उस संस्कृति की तासिर क्या है ?

दर्शन, धर्म और संस्कृति

पूर्व एवं पश्चिम दोनों ही देशों में दर्शन, धर्म, और संस्कृति का रिश्ता अन्योन्याश्रित रहा है । भारतीय दर्शन व संस्कृति आध्यात्मिक तत्त्ववादी रही है, जबकि पश्चिमी संस्कृति एवं दर्शन भौतिकवादी रहा है । यही अंतर मुख्य तथा महत्त्वपूर्ण है ।

दोनों में फर्क भी यही है कि वहाँ समाज दार्शनिक का आदर भी करते हैं, तथा उनकी विचारधारा के अर्क समान कृतियों को पुस्तकालय में सबसे ऊपर रख़ते हैं और समझते हैं कि इसे नीचे उतारना जरूरी नहीं, जबकी यहाँ ख़ास भारत में उन दार्शनिकों के विचार को पढ़कर उस पर यक़ीन करके जीवन को आध्यात्मिक उँचाइयों की तरफ उन्मुख करते हैं ।

धर्म वह आधार है जिसको धारण करके मनुष्य श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर बनता जाता है । इस प्रकार धर्म दर्शन को समझने तथा उसे और करीब से जानने का महत्त्वपूर्ण साधन है ।

'दर्शन' का मुख़्य उत्स तथा सवाल यही रहा है कि मानवीय जीवन में भौतिक तथा आत्मिक सामंजस्य कैसे बढ़े ? जैसे जैसे दोनों का अन्तः सम्बन्ध बढ़ेगा, वैसे-वैसे दर्शन उनके बीच से अलग होता जाए गा । इसके साथ ही विश्व की अन्य सभी समस्याओं का समाधान होता जाए गा तथा विश्व की एकता, उसके विकास को शासित करनेवाले नियमों की शोध भी होती रहेगी ।

वस्तुतः इस संसार में भौतिक एवं आत्मिक स्तर के अलावा कुछ है ही नहीं । इसलिए किसी दार्शनिक धारा की स्थापना करना, यानी इस संसार का पूर्ण रूपेण चित्र खींचना ।

आज यदि भारत सक्षम राष्ट्र बना हुआ है, तो उसकी 'संस्कृति' एवं 'दर्शन' के समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण ही । इस देश में अनेक

प्रकार की भाषाएँ रीति–रिवाजों तथा परंपराओं की विपरीतता के बावजूद भी एक राष्ट्र अभिन्न राष्ट्र की महान भावना स्थापित की है ।

"भारतीय जन–जीवन में दर्शन–धर्म, चिन्तनगत परम्परा की अपनी विशिष्टता की ऐसी छाप है, जो इसे अन्य संस्कृतियों से स्वभावतः अलग करती है । यह विशिष्टता है सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक विकास में स्वतंत्र इकाई के रूप में इस बात का अस्तित्त्व ।"[12]

इस प्रकार यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय संस्कृति, धर्म, और दर्शन तीनों अपने प्राणतत्त्व के साथ इस राष्ट्र की महानता को ओर बलवत्तर बनाते हैं ।

दर्शन और काव्य

आज आधुनिककाल में काव्य और दर्शन का क्या महत्त्व है और ये दोनों एक दूसरे के कितने पूरक हैं ? इस विषय पर एक लम्बी बहस चल रही है । फिर भी दर्शन और काव्यका सम्बन्ध युगों –युगों का है, इस बातको हम यहाँ स्पष्ट करेंगे ।

कोई भी उच्च काव्यात्मक उक्ति अथवा पंक्ति दर्शन की अभिव्यक्ति का प्रारंभिक रूप होती है । संपूर्ण दर्शन की अभिव्यक्ति पूर्ण काव्य में हो जाती है । वस्तुतः कवि और दार्शनिक की अनुभूति तथा चिंतना के ध्येय

बिंदु की प्राथमिकता एक ही है । काव्य रागात्मक भावनाओं पर आधारित होता है, जब कि दर्शन विवेक पर । एक में भावना प्रधान है तो दूसरे में संपूर्ण विवेक जरूरी बनता है । दोनों में अभिव्यक्ति आत्मानुभव की ही है । काव्य में आत्मानुभव का स्वरूप रागमय, सौंदर्यमय तथा कलामय होता है, जबकि दर्शन में प्रकाशमय और कल्याणमय ।

श्री अरविन्द दर्शन की पृष्ठभूमि

विश्व को भारतीय संस्कृति का संदेश आजतक कितने ही ऋषि, मनीषियों ने दिया है, परंतु महर्षि अरविन्द के संदेश में जीवन का आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक पक्ष जितना स्पष्ट हुआ है, उतना अन्य दार्शनिकों के संदेश से शायद ही हुआ है । भारतीय सभ्यता में जन्में और विदेशी सभ्यता में पले श्री अरविन्द के दर्शन का मूलस्रोत भारतीय दर्शन ही था, फिर भी पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव भी गहरा था । श्री अरविन्द दर्शन एक ओर आगम और निगम से प्रभावित है, तो दूसरी ओर जैन तथा बौद्धदर्शन का भी थोड़ा प्रभाव है तथा तीसरी ओर पाश्चात्य दर्शन, जिसमें अध्यात्मवाद तथा भौतिकवाद, मुख्य है । इस तरह भारतीय संस्कृति से जुड़े आस्तिकवाद और नास्तिकवाद तथा पाश्चात्य संस्कृति से जुड़े अध्यात्मवाद और भौतिकवाद इन सबका समन्वय मिलता है ।

श्री अरविन्द दर्शन भारतीय और पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण करते हुए भी भारतीय परंपरा के निकट रहा है । भारतीय दर्शन अनुभूति से शुरू

होकर आत्मानुभूति से होकर दिव्यानुभूति तक की यात्रा है । श्री अरविन्द भी इसी यात्रा को अपने दर्शन में प्रकट करते हैं कि मनुष्य का जीवन दिव्य कैसे हो या इस पृथ्वी को दिव्यभूमि कैसे बनाया जाए । इस बात को माताजी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं --" श्री अरविन्द हमें यह बताने के लिए आये थे, कि सत्य को पाने के लिए पृथ्वी का त्याग करने की आवश्यकता नहीं, अपनी आत्मा को प्राप्त करने के लिए जीवन त्याग आवश्यक नहीं, भगवान के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए न तो संसार त्याग की आवश्यकता है, और न कुछ सीमित विश्वासों को ग्रहण करने की । भगवान सर्वत्र है, सभी वस्तुओं में है, और यदि वे छिपे हुए हैं तो इसका कारण बस यह है कि हम उन्हें ढूँढने का कष्ट नहीं उठातें ।"[13] अर्थात् 'दिव्यआत्मा' से ही जीवन दिव्य बन सकता है, और दिव्यजीवन से पृथ्वी दिव्य बन सकती है । अतः श्री अरविन्द के अनुसार जीवन और पृथ्वी दोनों की आवश्यकता उतनी ही है, जितनी 'आत्मा' और 'परमात्मा' की ।

इस प्रकार श्री अरविन्द दर्शन वेद, उपनिषद, गीता आदि से प्रभावित है, साथ ही मानवजीवन, प्राण, पृथ्वी, आदि को दिव्य किस प्रकार बनाया जा सकता है ? आदि का उल्लेख भी श्री अरविन्दने अपने दर्शन के कुछ सिद्धांतों में स्पष्टतः या गूढतः उल्लेख किया है ।

श्री अरविन्द के विभिन्न सिद्धांत और भारतीय दर्शन

ऊपर कहा जा चुका है इस प्रकार श्री अरविन्द दर्शन पर भारतीय दर्शन का गहेरा प्रभाव रहा है । वेद, उपनिषद, गीता आदि का प्रभाव श्री

अरविन्द के विभिन्न सिध्धांतों पर स्पष्ट दिख़ता है । इनको ओर स्पष्ट करने के लिए श्री अरविन्द के कुछ सिध्धांतों को यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है । जिन पर वेद, उपनिषद, गीता आदि की छाया द्रष्टव्य है ।

(1) ब्रह्म

वेद में ब्रह्म को ''एकमेवा द्वितीय'' और ''तदेकम्'' आदि शब्दों से अभिहित किया गया है । इसके अनुसार वह (ब्रह्म) एक है, अद्वितीय है, सृष्टिके आरंभ में भी वह एक था, और अंत में भी वह ए क ही रहेगा । इसी प्रकार श्री अरविन्द ने भी 'ब्रह्म' को परम सत्‌तत्त्व कहा है, जो एक है, विराट है, सनातन है, अनंत है, और परमतत्त्व है । श्री अरविन्दका कहना है कि ब्रह्म आनंद के लिए अनेक रूप धारण करता है और वह 'परात्परब्रह्म', 'समष्टिब्रह्म' तथा 'व्यष्टिब्रह्म' कहलाता है । परात्पर ब्रह्म का रूप एक ही रहता है, समष्टि ब्रह्म दो रूप धारण करता है – एक पुरूष और दूसरा प्रकृति और वह इन दोनों में अद्वेत रहता है । तथा व्यष्टिब्रह्म, क्षर पुरूष के रूप में विविध, प्रकार की असंख्य जीव योनि में प्रकट होता है । उनकी यह मान्यता 'ऋग्वेद', 'तैतरीय–उपनिषद्', 'मुण्डकोपनिषद्', आदि से प्रभावित जान पड़ती है । जैसे 'सच्चिानंद स्वरूप ब्रह्म ही एक मात्र वह तत्त्व है, जिससे यह संपूर्ण विश्व उत्पन्न होता है स्थित रहता है, और फिर उसीमें समाविष्ट हो जाता है ।''[14]

'श्री अरविन्द' के अनुसार 'ब्रह्म' एक ऐसी शक्ति धारण किये हुए है, जिनसे उनके विभिन्न रूप तथा जगत की सृष्टि होती है । इस सृष्टि का ए

कमात्र उद्देश्य है आनंद के लिए विविधता को प्रकट करना । यह 'ऋग्वेद'का प्रभाव है । – ''इन्द्रौमायाभि पुरूष इयते'' में ऋग्वेद में 'इन्द्र' का अर्थ ब्रह्म किया है, यही ब्रह्म आनंद के लिए अनेक रूप धारण करता है । 'तैतरिय उपनिषद' भी यही बात करता है – ''आनंद से ही समस्त भूत उत्पन्न होते हैं, और आनंद में ही प्रवेश कर जाते हैं ।'' (तैतरीय उपनिषद–3/6)

''श्री अरविन्द''ने पराप्रकृति को ब्रह्म की आद्याशक्ति अर्थात् भगवती माता कहा है । भगवती माता सृष्टि का मूल है, और सर्वव्यापी है । वेद में भी ब्रह्म के साथ–साथ अदितिमाता का वर्णन मिलता है । अदिति अर्थात् ''जो कुछ उत्पन्न है, और जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है ।'' (ऋग्वेद 2/89–अदितिसूत्र) 'कठोपनिषद' में भी अदिति को भगवती माता माना गया है । श्री अरविन्द के अनुसार – भगवती माता ईश्वर, जीव, जगत्, सबकी अधिष्ठात्री है । भारतीय दर्शन के शाक्ततंत्र में तथा शाक्तदर्शन से भी यह बात प्रमाणित है । साथ ही श्री अरविन्द तांत्रिक परंपरा से भी प्रभावित जान पड़ते हैं । क्योंकि तांत्रिक परंपरा शक्ति पर अधिक बल देती है । और श्री अरविन्द ने भी अपने योग में शक्ति अर्थात 'भगवती माता' के प्रति आत्मसमर्पण आवश्यक माना है । इसके सिवा मानव और प्रकृति का दिव्य रूपांतर नहीं हो सकता, जो कि योग का एक मात्र उद्देश्य है ।

उपनिषद, वेद, गीता आदि मूलग्रंथो में मानवजीवन का लक्ष्य 'ब्रह्म' को ज्ञात करना तथा उसे प्राप्त करना बताया है । श्री अरविन्द ने भी इससे प्रभावित हो कर कहा है कि 'ब्रह्म' के निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वरूप हैं ।

और दोनों अज्ञात हैं । किन्तु इन्हें योग के द्वारा जाना जा सकता है । वेद, उपनिषद, यहाँ आ कर रूक जाते हैं, क्योंकि इनमें 'योग' से मात्र व्यक्तिगत मोक्ष ही संभव होना दिखाया है । जब कि अरविन्द दर्शन इससे भी एक सोपान आगे जाता है, वह कहता है कि, एक समन्वयात्मक साधना पद्धति के द्वारा मात्र व्यक्ति का ब्रह्म से साक्षात्कार ही नहीं होता वरन् संपूर्ण मानवजाति के ब्रह्म में रूपांतर होने की संभावना दिख़ाई देती है ।

इस प्रकार श्री अरविन्द की 'ब्रह्म' विषयक अवधारणा हमारी पुरानी सारी दर्शन मान्यताओं के साथ जुडी होने के बावजूद भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व रख़ती है । पूरे विश्व के दर्शन धरातल पर श्री अरविन्द ही ऐसे महत् पुरूष हुए हैं, जिन्होंने सारी सृष्टि का ब्रह्म में रूपांतरण करनेका आह्वान किया है ।

(2) जीवात्मन् या जीवात्मा

'जीव' जीवात्मन् या जीवात्मा आदि शब्दों के अर्थ श्री अरविन्द के अनुसार सर्वथा एक ही है । ''जीवात्मा जन्म और मरण से अतीत सदा एकरस वैयक्तिक आत्मा है । यह व्यक्ति की सनातन सत्य सत्ता है ।''[15] 'श्री अरविन्द' की जीवात्मन् सम्बन्धी इस अवधारणा का मूलस्रोत उपनिषद तथा 'गीता' है । इसी के अनुसार वे जीवात्मा को अजन्मा, सनातन तथा 'ए क' मानते हैं । तथा 'जीवात्मन्' और 'ब्रह्म' को गुण की दृष्टि से अभिन्न माना है । 'गीता' में भी यही भाव व्यक्त किये गये हैं । 'ब्रह्म' और 'जीव' को 'गीता' में भी अभिन्न, अनादि और अनंत कहा गया है । 'गीता' के

अनुसार 'आत्मा' (जीवात्मा) न मरती है, न मारी जाती है, न वह किसी काल में जन्मती है, न मरती है । क्योंकि यह अजन्मा, नित्य शाश्वत और पूरातन है । शरीर के नष्ट होने से भी नष्ट नहीं होती है ।''[16] 'श्री अरविन्द' ने 'जीव' को परम तत्त्व की चेतना का ही रूप माना है । उन्होंने जीव तथा ब्रह्म का सम्बन्ध पूर्णतः अभेद का माना है । साथ ही अपने अनुभव के आधार पर 'श्री अरविन्द' ने जीवात्मा को ब्रह्म का अंश भी माना है । साथ ही अपने अनुभव के आधार पर वे कहते हैं कि ''आत्मा तत्त्वतः भगवान से एकीभूत है । अथवा कम से कम वह भगवान का अंश है, और उनमें सभी दिव्यशक्तियाँ विद्यमान हैं ।''[17] इस प्रकार उन्हों ने जीवात्मा को ब्रह्म से भिन्न भी माना है । स्वयं पुरूष पूर्ण है, परंतु प्रकृति से वशीभूत होकर अज्ञानता प्राप्त करता है, तथा अनेकता ग्रहण करता है । जिससे वह अपूर्ण बनता है । इस प्रकार 'श्री अरविन्द' के अनुसार जीवात्मा ब्रह्म से भिन्न भी है, और अभिन्न भी ।

'श्री अरविन्द' का जीवात्मा सम्बन्धी एक अन्य विचार यह है कि विश्व प्रकृति जीवात्मा को अनेक आकार प्रदान करती है । जीवात्मा का जो अंश जन्म ग्रहण करता है, वह है अंतरात्मा और इसका प्रतिनिधि रूप है 'चैत्यपुरूष' । 'चैत्यपुरूष' को प्रकृति की अपूर्णता का आवरण चढ़ाकर 'मन' और प्राण से होकर जड़ तक पहुँचता है । और फिर वह विक्षिप्त होते हुए अति मानसिक स्तर पर पहुँचता है । संक्षेप में यही कि ईश्वर सर्व शक्तिमान है, और जीवात्मा अल्पशक्ति है । यह विचार 'गीता' और

उपनिषद पर आधारित है ।

'गीता' और 'उपनिषद' की तरह श्री अरविन्द जीवात्मा को परमात्मा से भिन्न भी मानते हैं, और अभिन्न भी । इस समानता के उपरांत 'श्री अरविन्द' की अपनी कुछ मौलिक देन है, वे जीवात्मा के अंश अंतरात्मा का जड़ तक अवतरण करवाते है तथा जीवात्मा अर्थात् अतिमानसिक स्थिति तक आरोहण भी करवाते हैं । यह व्याख्या उनकी मौलिक देन है । यहाँ 'श्री अरविन्दने' जीवात्मा को 'शरीर', 'मन' तथा प्राण का अधिष्ठाता बताया है ।

इस तरह 'श्री अरविन्द', 'जीवात्मा' सम्बन्धी जो विचार प्रस्तुत करते है, उसका मूल हमें उपनिषद तथा 'गीता' में दिखाई देता है । शरीर और 'मन' सम्बन्धी कुछ विचार पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित हैं, परंतु 'भावि अति मानव' की जीवात्मा के प्रति सचेतन रूप की संभावना श्री अरविन्द की मौलिक देन है ।

(3) जगत्

भारतीय दर्शन प्रणाली के अधार पर अनेक मनीषियों ने 'जगत्' सम्बन्धी अपने विचार प्रकट किये हैं । इसमें शंकराचार्य का मत ज्यादा सही प्रतीत होता है । प्रायः सभी दार्शनिकों ने जगत् को मिथ्या तथा मायावी कहकर इससे बचने की सलाह दी है । कुछेक ने इस जगत् के बीच रहकर कमलवत् होकर ब्रह्म को पाने का प्रयास करने के लिए कहा है । इस प्रकार

जगत् एक माध्यम बन सकता है उस परम् तत्त्व को पाने का । 'कबीर' जैसे समाज सुधारक दार्शनिक ने भी इस जगत् से इसकी माया से बचकर रहनेकी सलाह दी है । उसके अनुसार यह जगत् जीवात्मा का सारा ख़ेल बिगाड़ देता है तथा जीव को अपने गंतव्य तक नहीं पहुंचने देता है । इसके अलावा एक यह भी मान्यता रही है कि जगत् उस परम सत्ता को पाने के लिए मददगार भी सिद्ध हो सकता है ।

'श्री अरविन्द' ने 'जगत्' को सच्चिदानंद ब्रह्म की अभिव्यक्ति माना है । 'ब्रह्म' के चारों तत्त्वों सत् – चित् तथा आनंद तथा अतिमनस् से जगत् की सृष्टि माना है । यह चारों तत्त्व जगत् में सर्वत्र व्याप्त है, परंतु ये आवरण में है । इनको आवरण मुक्त करना पड़ता है । 'श्री अरविन्द' दर्शन ने मानव जीवन का यही उद्देश्य माना है । उनके अनुसार ब्रह्म जगत् में इसलिए है, कि जीवन के तत्त्वों में वह अपने आपको प्रकट करें तथा जीवन में ब्रह्म इसलिए है कि जीवन ब्रह्म को अपने भीतर से ख़ोज निकाले । 'गीता' में भी यही बात कही गयी है चित्त शक्ति अर्थात् प्रकृति 'सत्' अर्थात् 'ब्रह्म' की अनुमति से जगत् की रचना करती है । इनमें कई स्थानों पर ब्रह्म को सच्चिदानंद कहा गया है । इस तरह सत् चित् आनंद तीनों तत्त्वों से जगत के निर्माण की श्री अरविन्द की धारणा 'गीता' के अनुसार है, परंतु श्री अरविन्द का चौथा तत्त्व 'अतिमन' 'गीता' के दर्शन में नहीं है । वैसे 'अतिमन' 'श्री अरविन्द' की बिलकुल मौलिक देन नहीं है, क्योंकि 'ऋग्वेद' में 'ऋतचित्त' शब्द आता है, जो श्री अरविन्द की अतिमानव की धारणा को व्यक्त करता है ।''[18]

जगत् सम्बन्धी श्री अरविन्द के विचारों में गीता उपनिषद तथा वेद का प्रभाव पाया जाता है । 'श्री अरविन्द' कहते हैं कि जगत् का सत्, चित् और आनंद की स्थिति में दिव्य रूपांतर होना अतिमानसिकता है । अपनी मान्यता को 'गीता' के मत का स्वीकार करते हुए इस प्रकार आगे बढ़ाते हैं कि जगत् के निर्माण में एक व्यवस्थित क्रम विकास निहीत हैं । उपनिषद में जगत् निर्माण का क्रम वर्णित किया गया है । जैसे कि परब्रह्म से अन्न उत्पन्न होता है, अन्न से प्राण, प्राण से मन, उससे पंचमहाभूत, उससे समस्त लोक और कर्म तथा कर्मों से सुख–दुःख आदि रूपों में फल उत्पन्न होता है ।

(4) मोक्ष

'श्री अरविन्द' ने मोक्ष के सम्बन्ध में यह कहा है कि मोक्ष की हमें व्यक्तिगत रूप से कोई आवश्यकता नहीं है । क्योंकि आत्मा तो नित्य मुक्त ही है, बंधन केवल भ्रम है । 'मोक्ष' के सम्बन्ध में उनके यह विचार नितान्त मौलिक है । उन्होंने व्यक्तिगत मुक्ति को ज्यादा महत्त्व भी नहीं दिया है । क्योंकि वे व्यक्तिगत मुक्ति के नहीं परंतु सार्वत्रिक मुक्ति को माननेवाले थे । वे ऐसा भी मानते थे की मोक्ष शरीर और 'मन' को दुःखों और बुराइयों से मुक्त करता है । पर यह केवल तभी संभव है – जब मानस का अतिमनस् में रूपांतर हो जाए । परंतु इसके लिए अति मानसको मानस के स्तर तक नीचे उतरना पड़गा । और जड़, प्राण और 'मन' को पूर्णरूप से रूपांतरित करना पड़ेगा यहाँ 'श्री अरविन्द' ने प्राचीन वेदांती आचार्यों की धारणाओं को स्वीकार करते हुए अपना समष्टिवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । उनके

अनुसार 'मुक्तपुरूष' ब्रह्म तादात्म्य को भी प्राप्त कर सकता है । साधर्म्यादि अवस्था को भी प्राप्त कर सकता है । वह एक साथ व्यक्तिरूप, विश्वरूप तथा विश्वातितरूप होता है ।

इस प्रकार 'श्री अरविन्द' ने सगुण और निर्गुणवादी आचार्यों की मोक्ष सम्बन्धी अवधारणा को एक साथ स्पष्ट किया है । इसके साथ ही महर्षि किसी एक व्यक्ति के मोक्ष के पक्षधर कदापि नहीं थे वरन् समूची मानवजाति के उत्कर्ष एवं मोक्ष के पक्षधर थे ।

(5) पुनर्जन्म

पुनर्जन्म सम्बन्धी श्री अरविन्द के कुछ विचार 'वेद', 'उपनिषद', तथा 'गीता' आदि से प्रभावित हैं, फिर भी इनके कुछ विचार प्राचीन विचारधारा से भिन्न भी हैं । गीता के अनुसार ''मनुष्य अपने पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को पहनता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर नये शरीर को धारण करती है ''[19] यही बात ''श्री अरविन्द'' इस प्रकार स्पष्ट करते हैं, कि आत्मा शरीररूपी पोषाक को धारण करनेवाली है । प्राचीन मान्यता के अनुसार जन्म-मरण के चक्र में जीव को तब तक रहना पड़ता है, जब तक वह परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर लेता । यह प्राप्ति ए क जन्म में भी हो सकती है, और अनेक जन्मों के चक्कर भी काटने पड़ते है । इसके लिए एक 'जीव' को एक ही योनि और एक ही रूप में अनेकबार जन्म लेना पड़ता हैं । परंतु 'श्री अरविन्द' पुनर्जन्म के लिए विकासक्रम को अनिवार्य मानते है । उनके अनुसार जीव अनुभव अपनी वृद्धि या क्रम

विकास के लिए जन्म लेता है । क्योंकि एक ही प्रकार के पुनरावर्तन से क्रम विकास नहीं हो सकता । उन्होंने यह भी कहा है कि जन्म, मृत्यु, केवल संयोग मात्र नहीं है, पर क्रमिक विकास की एक कड़ी है । अतः जीव हर एक जन्म में एक नया व्यक्तितत्त्व निर्माण करता है ।

भाग्यवाद और कर्मवाद सम्बन्धी श्री अरविन्द की धारणा प्राचीन विचारों से कुछ भिन्न होते हुए भी कर्मवाद के सिद्धांत को आंशिक रूप से मान लेती है । उपनिषद के अनुसार कर्म सिद्धांत यह कहता है कि आत्मा अपने कर्म के अनुसार अनेक रूपों को धारण करती हैं, वह रूप अपनी प्रकृति के तथा गुणों की शक्ति के द्वारा निश्चित होता है । इनसे 'श्री अरविन्द' आंशिक रूप में सहमत होते हुए, कुछ भिन्न विचार प्रस्तुत करते हैं कि कर्म सिद्धांत ही सब कुछ है, तो जीवन यंत्र रूप बन जाएगा और भगवान न्यायाधीश । ऐसे तो विकास, सृष्टि और उनके आनंद वृद्धि की गुंजाइश ही नहीं रहेगी, जबकि जगत् और जीवन का उद्देश्य है विकास, अनुभव प्राप्ति तथा आनंद वृद्धि । अतः पुनर्जन्म कर्मों के अनुसार नहीं हो सकता किन्तु आत्मा के अनुभव की माँग के अनुसार होना चाहिए । पूर्वजन्म के कर्म अगले जन्म को कुछ हद तक निर्धारित जरूर करता है, परंतु पूर्वजन्म अच्छा होने से पुनर्जन्म अच्छा होगा या बुरा होने से पुनर्जन्म बुरा होगा, यह धारणा दोषपूर्ण लगती है । सामान्य जीवन में पूर्वकर्मों और पूर्वजन्मों के संस्कारों का प्रभाव रहता है, पर जब वह योग मार्ग में प्रविष्ट हो जाता है और आत्मानुभव से प्रेरणा प्राप्त करने लगता है, तब पूर्वजन्म के कर्म या

संस्कार उनके पुनर्जन्म को निर्धारित करने में सफल नहीं हो सकते ।

इस तरह श्री अरविन्द ने स्पष्टत: कहा है कि कर्म आत्मा को निर्णित नहीं कर सकता, परंतु आत्मा कर्मको अपने साधन के रूप में प्रयुक्त करती है । कर्म का सिद्धांत आध्यात्मिक स्वातंत्र्य को लांघ नहीं सकता । परंतु योग के द्वारा विकास के क्रम में आत्मा जब अवरोहण करती है, तो कर्म के आंतरिक सिद्धांत क्षीण हो जाते हैं और आत्मा आध्यात्मिक स्वातंत्र्य को अधिकाधिक प्राप्त करती है । पुनर्जन्म के सम्बन्ध में श्री अरविन्द के यही विचार भारतीय दर्शन की परंपरागत विचारधारा से भिन्न है, और नावीन्य पूर्ण संशोधन है ।

(6) अतिमनस्

'परमात्मा' देश कालातीत हैं, वे सगुण भी है, और निर्गुण भी हैं । कालातीत भी हैं, और कालबद्ध भी है । सृष्टि से पर भी हैं, और सृष्टि में व्याप्त भी है । ऐसे ही परमतत्त्व ने सृष्टि का सर्जन किया और फिर भी वे इस सृष्टि के देशकाल से पर रहे । 'आत्मा' उसीका रूप है, जो मानव शरीर 'प्राण' तथा 'मन' में व्याप्त है । और इनके आवरण में बद्ध है । यदि 'आत्मा' अनंततत्त्व है, तो अपनी शक्ति हर काल में और हर रूप में अनंत ही रहेगी, फिर उसमें सीमित भाव और शक्ति का अस्तित्त्व कहाँ से आया ? इस समस्या के समाधान के लिए 'श्री अरविन्द' ने 'अतिमनस्' तत्त्व की कल्पना की, जो देशकाल से रहित परमात्मा और देशकाल युक्त सृष्टि का मध्यवर्ती तत्त्व है । 'अतिमनस्' 'श्री अरविन्द' की मौलिक देन है ।

'अतिमनस्' को उन्होंने सृजनात्मक तत्त्व कहा है । 'ऋग्वेद' और 'उपनिषद' में अतिमनस् का भाव तो विद्यमान है, पर मौलिक तत्त्व के रूप में विकसित नहीं किया गया है ।

'श्री अरविन्द' के अनुसार 'अतिमानसिक चेतना' आज के मानव की विभिन्न समस्याओं से भरपूर मानसिक चेतना से ऊँची वह दिव्यचेतना है, जो सत्यपूर्ण एवं आनंदमय है । जगत् की विभिन्न समस्याओं का समाधान भी तभी हो सकता है, जब अतिमानसिक चेतना को इस जगत् में उतार लाया जाए ।

अतिमनस् के आरोहण को 'श्री अरविन्द' ने चार सोपानों से स्पष्ट किया है ।

(1) उत्कृष्ट मन (Higher Mind)

(2) प्रदीप्त मन (Illumined Mind)

(3) अंतःस्फूर्त मन (Intuitive Mind)

(4) ऊर्ध्व-मन (Over Mind)

(1) उत्कृष्ट मन

हमारी सामान्य मानसिक अवस्था और बौद्धिक व्यवहारों से पर ऐसा 'मन' 'उत्कृष्ट मन' है । यह सोपान 'मन' को वैचारिक धरातल पर समझने का सोपान है । आत्मज्ञान का प्रकाश विचार को

आलोकित करे और हमारे ज्ञान को निरंतर सचेत रखे़, ऐसा यह सोपान बोध और संकल्प शक्ति का क्षेत्र है । संक्षिप्ततः उत्कृष्ट मन अर्थात् वैचारिक मन ।

(2) प्रदीप्त मन

यह सोपान विचार का नहीं 'दीप्ति' का सोपान है । 'दीप्ति' को दर्शन भी कह सकते हैं । यहाँ 'मन' के विचारों का शमन हो जाता है । और प्रकाश का दर्शन होता है । यहाँ विचारक दृष्टा बन जाता है और विचारक की चेतना से द्रष्टा की चेतना अधिक शक्तिशाली होती है । विचार की मर्यादाओं का अतिक्रमण करके मनुष्य यहाँ समग्रता को देख़नेवाला दर्शक बन जाता है ।

(3) अंतः स्फूर्त मन

'मन' के आरोहण के इस तीसरे सोपान में अंत:स्फुरणा का विकास होता है । अतः स्फुरणा अर्थात् चेतना शक्तिकी अनुभूति को प्राप्त करने की प्रक्रिया । 'मन' और 'अतिमनस्' के बीच का सेतु अंतः स्फुरणा द्वारा बनता है । अंत:स्फुरणाकी क्रमिक शक्तियाँ इस प्रकार हैं ।(1) सत्य का बोध होता है (2) प्रेरणा प्राप्त होती है अथवा सत्य की ध्वनि सुनाई देती है । (3) सत्य की प्राप्ति होती है और (4) सहज विवेक की शक्ति प्राप्त होती है ।

(4) उर्ध्व मन

यह सोपान अंतः स्फूर्त–मन की मर्यादाओं को तोड़ देता है, और व्यापक बनकर अनंत का संस्पर्श पाता है । चेतना की सीमाएँ गिरने लगती हैं, और आरोहण – अवरोहण की क्रियाएँ शक्य बनती हैं । यहाँ जैसे 'मन' अस्तित्त्व के अथाह सागर में पिघल जाता है । हमारा व्यक्तिगत स्व ''वैश्विक–स्व'' में विलीन होने के लिए तत्पर होता हुआ दिखाई देता है । 'मन' को अतिमनस् की भूमिका तक ले जाने के लिए यह आख़री प्रयत्न का सोपान है । अंतिम रूपांतरण के लिए पात्रता यहाँ प्राप्त होती है ।

इस प्रकार यद्यपि 'अतिमनस्' 'श्री अरविन्द' की अपनी ख़ोज है, फिरभी वेद, उपनिषद का प्रभाव इस पर स्पष्ट रूप से पड़ा है । 'ऋग्वेद' में 'ऋत्' का अर्थ है – 'सत्य, अविनाशी–सत्ता' । ए ेसा माना जाता है 'ऋत्' से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई है । 'श्री अरविन्द' इसे ही मौलिकता से स्पष्ट करते हैं कि 'अतिमनस्' अर्थात् 'भगवती पराप्रकृति' की पूर्ण और सत्यचेतना, जिसमें ख़ंड, विभाग या अज्ञानतत्त्व का कोई स्थान नहीं है।

(7) पूर्णयोग

'श्री अरविन्द' ने अपनी जीवन की अनुभूतियों और निजी प्रयोगों से एक विशिष्ट साधना पद्धति का निर्देश किया, जिसे पूर्ण योग कहा गया है । 'योग' ने भारतीय जीवनदर्शन में आत्मोन्नति के साधन के रूप में महत्त्वपूर्ण

स्थान पाया है । 'वेदकाल' से लेकर 'बौद्धकाल' तथा उसके बाद भी योग को 'चित्वृत्ति' के साधन के रूप में माना गया है । आत्म साक्षात्कार के लिए 'योगसाधना' ही एक मात्र पथ है ।

'श्री अरविन्द' का 'योग' उक्त परंपराओं से सम्बन्ध बनाये रख़ते हुए एक नया मार्ग भी दिख़ाता है । 'श्री अरविन्द' के ही शब्दों में, ''हमारा योग कोई नया 'योग' नहीं है । यह तो प्राचीन भारतीय योगों, विशेषकर 'भगवत् गीता' के 'कर्मयोग' से सम्बन्धित है । हमारा योग प्राचीन योगों को कुचलता नहीं, वरन् एक आध्यात्मिक अभियान है ।''[20]

'श्री अरविन्द' ने 'गीता' के कर्मयोग पर अधिक बल दिया है । फिरभी उनका योग 'गीता' के साथ पूर्णरूप से नहीं मिलता । 'श्री अरविन्द' अपने 'योग' को पूर्ण समर्पण की भावना, संकल्प, और 'अभीप्सा' से आरंभ करने के साथ प्रकृति का त्याग करने की बात भी करते है । यदि ऐसा नहीं किया गया तो यह भय रहता है, कि हम तामसिक और झूठा समर्पण कर बैठे । यहीं 'पूर्णयोग' की नवीनता है । स्वयं 'श्री अरविन्द' ने कहा है कि ''हमारा योग ठीक 'गीता के 'योग' के साथ नहीं मिलता - जुलता, यद्यपि यह उन सभी बातों को अपने अंदर समाविष्ट करता है, जो 'गीता' के 'योग' की प्रमुख़ बाते हैं ।''[21]

(8) रूपान्तरण सिद्धांत

रूपान्तरण सिद्धांत 'श्री अरविन्द' का एक मौलिक सिद्धांत है, यद्यपि इस मौलिकता के भीतर भी भारतीय दर्शन की तांत्रिक विद्या का बीज पड़ा हुआ है । वे स्वयं कहते है कि – "**....** 'रूपान्तरण' की प्रक्रिया के पीछे तांत्रिक ज्ञान विद्यमान है ।"[22] 'श्री अरविन्द' ने तंत्र की जिन विधियों को बताया, रूपांतरण सिद्धांतमें उनका प्रयोग भी किया ।

आध्यात्मिक ज्ञान तथा अनुभव को रूपान्तर प्रक्रिया का मूलाधार माना गया है । इसके उपरांत तंत्र में वर्णित विविध चक्रों द्वारा चेतना का आरोहण एवं परंशक्ति का आश्रय इनके लिए अनिवार्य अंग बन गये हैं । 'तंत्रविद्या' में कुण्डलिनी को जागृत करके उसके द्वारा मानव शरीर में स्थित विभिन्न चक्रों में आरोहण करने की प्रक्रिया का वर्णन है । 'श्री अरविन्द' के योग के अनुसार आरोहण के पश्चात् दिव्यचेतना का मानसिक, प्राणिक तथा भौतिक स्तरों तक पुन:अवतरण की प्रक्रिया होना आवश्यक है । तंत्र सम्मत 'भगवती शक्ति' का आश्रय भी आवश्यक है, क्योंकि साधक का प्रयत्न और भगवती की कृपा इस दुहरी प्रक्रिया से ही पूर्ण रूपान्तर संभव है ।

'श्री अरविन्द' 'वैश्नवतंत्र' की साधना पद्धति से भी प्रभावित जान पड़ते हैं । क्योंकि उनके अनुसार साधक को भगवती की कृपा प्राप्त करने के लिए पूर्णत: भगवान के हाथों में अपने आपको सौंप देना चाहिए । क्योंकि हमारा कर्म तथा योग आदि का स्वामी वही है । इसलिए उसे उसी की कार्य प्रणाली से अपने भीतर कार्य करने देना चाहिए । 'श्री

अरविन्द' के इस विचार में भगवती के प्रति आत्म समर्पण के वही भाव हैं, जो वैष्णव साधना पद्धति के आत्म समर्पण में हैं ।

इस प्रकार वेद, तंत्र और वैष्णव पद्धति से प्रभावित 'श्री अरविन्द' ने रूपान्तरण सिद्धांत जैसी साधना पद्धति का निर्देश किया । इसका लक्ष्य समस्त मानव चेतना का दिव्य रूपांतर है ।

(9) अवतार सिद्धांत

यह सिद्धांत भी 'गीता' और वैष्णव संप्रदाय के अवतार सम्बन्धी मान्यताओं से प्रभावित दिख़ाई देता है । वैष्णव धर्म और संप्रदाय में भगवान के अवतार रूप की पूजा-अर्चना का विधान है । 'वैष्णव कवियों' ने भगवान के विविध अवतारों को स्वीकार कर उनकी लीलाओं का गान किया है । उन्हीं के अनुसार 'श्री अरविन्द' को यह सत्य प्रतीत होता है, कि भगवान मानव शरीर में प्रकट हो सकते हैं, और हुए हैं । 'गीता' के अनुसार भगवान अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमाया से प्रकट होते है । इनके प्रभाव में 'श्री अरविन्द' अवतार की परिभाषा इस प्रकार करते हैं । - ''जब वह अजन्मा अपने आपको जानते हुए मानव मन, प्राण, शरीर को धारण कर मानव जन्म का जामा पहनकर कर्म करता है । तब वह देशकाल में भगवान के प्रकट होने की पराकाष्टा   है । यही भगवान का पूर्ण और चिन्मय अवतरण है, इसीको अवतार कहते हैं ।''[23]

अवतार सम्बन्धी 'गीता' के एक श्लोक के द्वारा जो स्पष्ट विचार

प्रस्तुत किया गया है । 'श्री अरविन्द' उससे अधिक सहमत है । 'गीता' के अनुसार –' जब, जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है । तब, तब ही मैं अपने रूप को प्रकट करता हूँ तथा साधु पुरूषों का उद्धार करने के लिए और दूषित कर्म करनेवालों का नाश करने के लिए, तथा धर्म की स्थापना के लिए युग–युग में प्रकट होता हूँ ।''[24]

'श्री अरविन्द' ने 'कर्म' और 'जन्म' की दिव्यता को अपने ढंग से परिभाषित किया है । दिव्यजन्म के दो पहेलू बताये हैं जिसमें पहेला है – अवतरण – जो मानवजाती में भगवान का होता है, यही सनातन अवतार है । और दूसरा है – आरोहण – जो भगवान के भाव में मनुष्य का होता है । यह जीवन का नवजन्म है । पहली परिभाषा के अनुसार 'कृष्ण' और 'राम' सनातन अवतारों की श्रेणी में आते हैं । लेकिन दूसरी परिभाषा के अनुसार अवतार का प्रयोजन रहा है, उच्चतर चेतना का मार्ग ख़ोलना । जिसके अनुसार मानव चेतना भगवत् चेतना में आरोहण कर सके । इसी के फलस्वरूप समस्त मानवजाति का भगवान रूप बन जाना संभाव्य है । 'गीता' का अवतार मानसिक चेतना को 'अधिमनस' पर्यंत आरोहित करने में समर्थ हुआ 'बुद्धि' अति मानसिक चेतना तक आरोहण कर पाये पर वे फिर मानव चेतना में नहीं लौटा पाये । 'श्री अरविन्द' के अवतार का उद्देश्य है, अति मानसिक उपलब्धि सिद्ध करने का यत्न ।

'भगवान कृष्ण' ने 'गीता' में अनेक जन्मों की बात कही जिसका 'श्री अरविन्द' ने एक मात्र उद्देश्य देखा – वह है जीवनक्रम का विकास

। इस प्रकार 'श्री अरविन्द' का अवतार सिद्धांत 'श्रीमद भगवत् गीता' तथा 'वैष्णव संप्रदाय' की विचारधारा से प्रभावित भी है, तथा मौलिक भी है ।

(10) विकास सिद्धांत

विकास सिद्धांत 'श्री अरविन्द दर्शन' का प्रमुख सिद्धांत है, जिस पर उनका संपूर्ण दर्शन आधारित है । इस सिद्धांत के मूल स्रोत वैदिक ऋषियों की सृष्टि सम्बन्धी मान्यताएँ तथा गीता आदि हैं । इसके उपरांत पाश्चात्य दार्शनिकों का प्रभाव भी उन पर पड़ा है । 'डार्विन' का उत्क्रांति वाद, सृष्टि के आदिकाल से आधुनिक काल तक हो रहे विकास के केवल आरोहण की व्याख्या करता है । 'श्री अरविन्द'ने उसमें अवरोहण का उल्लेख भी जोड़ दिया है । उनके अनुसार विकासक्रम आरोहण और अवरोहण की श्रृखंला में बंधा हुआ होता है । सृष्टि रचना का प्रारंभ 'अतिमानव' के अवतरण से हुआ । 'अतिमन' ही मन प्राण से उतरता हुआ जड़ बना, यह हुआ अवरोहण । इसके पश्चात् पुनः जड़ से प्राण 'प्राण' से 'मन' और 'मन' से 'अतिमन' तक की यात्रा आरोहण है । 'श्री अरविन्द' के अनुसार आरोहण की यह यात्रा तब तक क्रियान्तिव रहती है, जब तक जड़ से अतिमानसिक विकास साधित नहीं हो जाता ।

परंतु इस आरोहण के पूर्व 'परम चेतना' का अवरोहण आवश्यक है । क्योंकि जड़ में से प्राणिक तथा मानसिक चेतना का विकास तभी संभव है जब ये चेतनाएँ पहले से ही जड़तत्त्व में समाहित हों । बीज़ से पौधा तभी फूट सकता है, जब बीज में चेतना तत्त्व उपस्थित हों । 'श्री अरविन्द' कहते

हैं – कि प्राण जड़ तत्त्व में और 'मन' प्राणतत्त्वमें अंतर्लीन होता है । क्योंकि 'जड़' आवृत्त प्राण का रूप है, और 'प्राण' आवृत्त चेतना का रूप है ।

इस प्रकार 'गीता' में अवरोहण के क्रम में विकास की प्रक्रिया परं सत्ता की अपरा प्रकृति से प्रकट बुद्धि से आरंभ होती है । 'श्री अरविन्द' ने अपने विकास सिद्धांतमें सात क्रम बतलाये हैं । – उनके अनुसार –" ये तत्त्व आरोहण और अवतरण के विपरीत क्रम में इस प्रकार हैं – (1) सत् (2) चित् (3) आनंद (4) अतिमन (5) मन (6) प्राण (7) भौतिक तत्त्व ।"[25] 'श्री अरविन्द' के अनुसार संपूर्ण सृष्टि पूर्णता की ओर विकसित हो रही है । विकास आगे की और बढ़ रहा है और पूर्णता पीछे की ओर हटती जा रही है । अतः पूर्णता की प्राप्ति के लिए अंतरात्मा बार–बार जन्मग्रहण करती है ।

'श्री अरविन्द' का विशिष्ट योग – 'पूर्णयोग'

'श्री अरविन्द' ने अपने योग को 'पूर्णयोग' नाम दिया है । 'पूर्णयोग' की साधना में साधक को अपनी सर्वांगशक्ति और सभी साधनों को सक्रीय करने पड़ते हैं । इस 'योग' का वह अभिप्रेत हैं कि 'भगवान' कार्य के लिए पूरे जीवन का आयोजन होना चाहिए । उसका गठन होना चाहिए । भगवान का साक्षात्कार के अर्थ ही 'व्यक्तिगत' तथा 'समष्टिगत' साधना हो, यही पूर्णयोग की आधारभूत शर्त है । इस योग साधना का एक हेतु यह भी है, – कि जगत को ईश्वर प्राप्ति की ओर अग्रसर करने में सहायता प्रदान करना । जिससे समग्र जगत को दिव्य ज्योति की प्राप्ति तथा दिव्यजीवन को

व्यतित करने में आवश्यक सहायता और शक्ति प्राप्त हों । मनुष्य को उनका अपना जीवन भौतिक सुख़ सुविधाओं तथा सांसारिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए ही नहीं मिला है । मात्र भौतिक सुख़ाकारी में डूबे रहना मनुष्य का लक्ष्य नहीं है । मनुष्य इस पृथ्वी पर इस लिए नहीं आया है कि वह अपनी शान, सता और संपत्ति के पीछे 'कस्तुरीमृग' की तरह भटकता रहे । उच्चादर्श विहीन स्वार्थमय जीवन जीना मानविय लक्षण है ही नहीं, ईश्वरने मनुष्य की सृष्टि उसकी भौतिक कामनाओं या निम्नस्तरीय इच्छाओं की तृप्ति के लिए नहीं बनाई । मनुष्य जन्म मिला है, 'प्रभु' को साधने के लिए, उस तत्त्व को ढूँढने के लिए तथा पाने के लिए मनुष्य देह प्राप्त करने का यही एक मात्र आशय है । श्री अरविन्द सदैव इस पर बल देते हैं ।

'प्रभु' तो एक ऐसी वास्तविकता है, एक ऐसा सत्य है, जो स्थूल दृष्टि से न देखने पर भी हमारे समक्ष है । हमारे निकट है सर्वव्याप्त हैं और सर्व से अलिप्त भी हैं । वह ऐसी करूणा है, जो हमारे लिए सदा उपस्थित है । वह 'मौन' रूप में एक तथा अनन्य है । परंतु मनुष्य के लिए अनेक रूप में अवतार लेते हैं । वह निर्गुण भी हैं, और सगुण भी हैं । उनके लिए कोई बाधित नियम शक्य नहीं है । उसका भेद पाना बहुत कठिन है ।

'श्री अरविन्द' कहते हैं कि-" जगत में जो कुछ है, वह परमात्मा से ही आ रहा है, जगत में जो कुछ है, वही परमात्मा स्वयं है । परमात्मा के सिवा अन्य कुछ नहीं है । जगत के सर्व पदार्थों का यह पदार्थ तत्त्व है ..

जगत के अनेक रूपों के द्वारा 'प्रभु' अपना आविर्भाव धीरे धीरे कर रहे हैं । 'प्रभु' एक हैं, और जगत के रूप अनेक हैं । इस एक और अनेक के बीच एक मध्यम मार्गी तत्त्व अथवा एक मध्यस्थी व्यक्ति आ रहा हो और यह है 'माँ भगवती' । 'माँ भगवती' प्रभु के आर्विभाव और तिरोभाव का सक्रिय संचालन, नियमन और संगठन करती है । आध्यात्मिक विकास की गति मनुष्य के आरोहण तथा प्रभु के अवतरण की क्रिया पर माँ भगवती की करूणा प्रधान है ।''[26]

इस जगत में प्राणतत्त्व को लिपटकर जड़तत्त्व बैठा है । 'विकासक्रम' के सिद्धांत के आधार पर धीरे धीरे वह जड़तत्त्व प्राणतत्त्व को अपने में से बाहर लाता है । 'प्राणतत्त्व' के प्रकटीकरण के बाद मनुष्यतत्त्व क्रमशः विकसित होता जाता है । 'मन' को मनुष्य अच्छी तरह जान पाया है, परंतु मन की सीमाओं में ही मनुष्य को रूकना नहीं है । 'मन' की मोहाटवी में भटकना नहीं है । 'मन' का अतिक्रमण करके मनुष्य को वहाँ पहुँचना है, जहाँ परंतत्त्व का 'पावनप्रदेश' आ जाता है । मानवी के स्थूल मन के ऊपर जो ऊर्ध्वतम तत्त्व हो उसे 'श्री अरविन्द' ने अतिमनस् तत्त्व कहा है । स्थूल मन और अतिमनस् के बीच 'मन' के कुछ अन्य सोपान आये हुए हैं, जैसे उच्चतर मन का प्रदेश, प्रकाशित मन का प्रदेश, सहज प्रभामय मन का प्रदेश और अधिमनस का प्रदेश, इन सभी प्रदेशों के बाद 'अतिमनस्' की भूमिका आती है । 'पूर्णयोग' की साधना 'अतिमनस्' की उपलब्धि की साधना है । मानव को अपनी संकल्पशक्तियों का आधार लेकर अपनी चेतना का विकास साधना है । मनुष्य की चेतना में अकल्प्य ऊर्जा है । उसको साधना

के द्वारा प्रकट करनी है और जिसकी सहाय से अतिमनस् चेतना प्राप्त करनी है ।

पूर्णयोग क्या है ?

'युज्' धातु से आये हुए 'योग' शब्दका सामान्य अर्थ है, सम्बन्ध (जोड़ना) । दर्शनशास्त्र में जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को या 'सायुज्य' अथवा 'सारोप्य' को 'योग' कहते हैं । इस सम्बन्ध की प्राप्ति के उपाय का निर्देश भी 'योग' शब्द द्वारा ही होता है । जैसे कि भक्तियोग अर्थात् भक्तिमार्ग, 'ज्ञानयोग' अर्थात् ज्ञानमार्ग । 'महर्षि पतंजलि' ने योगकी परिभाषा इस प्रकार दी है ।

'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः' – अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध योग है ।

'श्री अरविन्द' ने 'योग' शब्द का प्रयोग भगवान के साथ सम्बन्ध अथवा भगवान के साथ सायुज्य के अर्थ में किया है । इसमें जीवात्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक सम्बन्ध का, अद्वैत सम्बन्ध का भाव प्रकट होता है । 'श्री अरविन्द' ने भी इस सम्बन्ध के जोड़ने के उपाय को भी 'योग' कहा है । जैसे मुझे 'योग' करना है का अर्थ किसी साधन पद्धति के द्वारा, किसी उपाय के द्वारा वह अपने आत्मतत्त्व को परम तत्त्व के साथ जोड़ना चाहता है । 'श्री अरविन्द' के पूर्णयोग में परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध बाँधने तथा उस सम्बन्ध को जीवन में चरितार्थ करने का भाव निहित है । 'पूर्णयोग' में परमात्मा का मिलन किसी एक मनुष्य के लिए या एक समूह के लिए नहीं

वरन् समग्र मानव समाज के लिए होता है । 'पूर्णयोग' में प्रारंभ में कुछ साधकों का ही परमात्मा से पूर्ण तादात्म्य होता है । उसका समग्र जीवन परम सत्तामय बन जाता है । और अन्त में ऐसा 'परमतत्त्वमय' जीवन समग्र जगत को प्राप्त हो ऐसे प्रयत्न होते हैं । इस योग में अपनी अपूर्णताओं को मिटाकर पूर्णता प्राप्त करने की व्यवस्थित साधना साधक शुरू करता है और उसके साथ ही 'प्रभु' के मिलन के लिए समर्पण, अभीप्सा, प्रार्थना और ध्यान करता है । यह मिलन जड़तत्त्व, प्राणतत्त्व और 'मनतत्त्व' में जब हों तब ही 'पूर्णयोग' की साधना सफल होती है । 'पूर्णयोग' के द्वारा मनुष्य ने जो शक्ति प्राप्त की हो उसे 'दिव्यजीवन' पाने के लिए तथा पूर्णता का लक्ष्य सिद्ध करने के लिए काम में लगाई जाती है और प्रकृति का पूर्णत: रूपांतर करना पड़ता है । 'श्री अरविन्द' 'पूर्णयोग' की समझ देते हुए कहते हैं कि-'' मानव जातिके मुक्त तथा परिपूर्ण जीवन में परमात्मा और प्रकृति को फिर से एक कर दे वह 'पूर्णयोग' है । मनुष्यकी आंतरिक और बाह्य प्रवृतियों और अनुभूतियों के बीच जो ताल-मेल स्थापित कर दें, और दिव्यता से कृतार्थ करे वह 'पूर्णयोग' है । 'पूर्णयोग' का सच्चा और संपूर्ण हेतु तथा उपयोग तभी सिद्ध होता है, कि जब योग-समग्र जीवन को प्रभावित कर दे और जब साधना और सिद्धि की ओर देख़कर एकबार फिर से अधिक पूर्ण और अधिक द्योतक अर्थ में हम यह कह सकें कि समग्र जीवन योग है ।''[27]

पूर्णयोग के मूल सिद्धांत

मनुष्य शक्तियों का भंडार है, किन्तु ज्यादातर उसकी शक्तियाँ गुप्त और अज्ञात होती हैं । वह खुद अपनी शक्तियों से अनजान होता है । उसे यह भी ज्ञात नहीं होता कि अपनी गुप्त और अप्रकट शक्तियों को प्रकट कैसे की जाएँ, तथा उनका उपयोग कैसे किया जाए । इस अज्ञानावस्था के कारण मनुष्य यहाँ इस जगत में जन्म लेकर सतह के ऊपर का स्थूल जीवन जीता है तथा मात्र स्वार्थमूलक कार्य करता रहता है । जब अंत समय आता है तब कोई भी सार्थक कार्य किये बिना संसार से विदा लेता है । ऐसा ऊपरी सतह का जीवन पशुजीवन समान है । जिन लोगों को समाज में शिक्षा, संस्कार तथा अनेकानेक सुविधाएँ मिलती हैं, जिन में बुद्धि की चतुरता, विचार, विवेक तथा चिंतन-मनन है और आध्यात्मिक, साधना के लिए जिनके पास संपूर्ण तक है, वही मनुष्य जब 'पशुसमान' जीवन जीता है, तब ऐसा कहने का 'मन' होता है कि उनका मनुष्यजीवन निरर्थक गया ।

मनुष्य के रूप में सर्वप्रथम तो हमें अपनी आंतरिक शक्तियों को जानने पहचानने की जरूरत है और उसे कार्यरत करने की जरूरत है । 'श्री अरविन्द'ने एक साधक को एक पत्र में लिख़ा था कि - " परमात्मा को प्राप्त करने के लिए, मनुष्य को मिली हुई तमाम शक्तियों को कार्यरत करना ही है योग का मूल सिद्धांत ।"[28] 'श्री अरविन्द' का 'पूर्णयोग' योगमार्गों का समन्वय है । इसे समन्वयात्मक योग अथवा समन्वयमूलक योग कहते है । उसमें राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग इत्यादि योग मार्गों का समन्वय है । 'श्रीमद भगवत्गीता' ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय को पूर्णयोग कहती है । शरीर में बसी आत्मा की शक्ति के उपयोग पर तथा ज्ञान, कर्म, भक्ति

की त्रिविध चाबी को आत्मा के ताले में धुमाने पर पूर्णयोग का प्रयास रहा है । ऐसा करने से जीवन में रूपांतर शक्य बनता है । प्रकृति दिव्य रूप धारण करने के लिए शक्तिमान होती है । 'चेतना' भी नया रूप लेती है । पूर्णयोग का मूल सिद्धांत है – समर्पण । मनुष्य को अपने आपको दिव्य चेतन को, परमशक्तिको पूर्ण आनंद स्वरूप परमात्मा को समर्पित करना है । जिससे परमात्मा उस मनुष्य की देखभाल करें, किसी भी प्रकार के आवरण के बिना समर्पित साधक की सर्वशक्तियों के वे स्वामी बनें, संपूर्ण समर्पण करनेवाला साधक तन, मन, धन का ही नहीं, साधना के फल का समर्पण कर देता है ।

पूर्णयोग की विशिष्टताएँ

'श्री अरविन्द' के पूर्णयोग का लक्ष्य दूसरे योगों से भिन्न प्रकार का है । अज्ञानमय जगत की सामान्य चेतना में से उर्ध्वगति करके दिव्यचेतना तक पहुँचना । मात्र इतना ही पूर्णयोग का लक्ष्य नहीं है, वरन् उस उर्ध्वप्रदेश की दिव्यचेतना का, भागवत् चेतना का, मानव के मन, प्राण तथा शरीर के स्तर तक अवतरण करवाना यह भी पूर्णयोग लक्ष्य है ।ऐसा करने से तीनों का रूपांतर होगा और तीनों दिव्य प्रकाश को प्राप्त करेंगें । 'परमात्मा' को इस जगत में पूर्णरूप से प्रकट करना और पृथ्वी के जड़त्व में दिव्य जीवनका आविर्भाव करना यही है 'श्री अरविन्द' के योगकी विशिष्टता । जब दिव्यचेतना का इस जगत में संपूर्ण अवतरण होगा तब संपूर्ण मनुष्य जाति, प्राणी, सृष्टि आदि सत्, चित्, आनंद की प्राप्ति करेंगे । 'पूर्णयोग' की साधना कोई निश्चित नियम या पद्धति के आधार पर नहीं होती । पूर्णयोग

में न तो कोई प्राचीन परंपरा का अनुसरण है, और नहीं किसी गुरू के द्वारा विधिवत् 'शक्तिपात्' करने की पद्धति है । इसमें न तो संसार या संसार के कर्तव्यों को त्यागने की बात आती है, और ना ही कठिन तपस्चर्या, क्रियाकाण्ड या कठोर व्रत उपासना इत्यादि का बोध होता है । पूर्णयोग इन सबको उचित नहीं मानता । इसमें तो परमात्मा के प्रति अभिमुख होने की उसको संपूर्ण समर्पित होने की श्रद्धा से सज्ज रहने की अहर्निश उसकी कृपा की अभीप्सा सेवित करने की और उसको प्राप्त करनेके लिए साधना करने की बात मुख्य है । 'पूर्णयोग' में मनुष्य का संपूर्णजीवन योग बन जाता है । प्रतिक्षण परमात्मामय जीवन जीने की साधना इस योग के साधक को करनी है । इस प्रकार स्वावलंबी साधना परमात्मा की कृपा को क्रियाशील बताएगी, ऐसा अभयवचन 'श्री अरविन्द' ने दिया है ।

'श्री अरविन्द' का पूर्णयोग मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है । उनका पृथ्थकरण और परिणाम शत्-प्रतिशत् मनोवैज्ञानिक है । 'श्री अरविन्द' कहते है कि मानवीय चेतना के अंतर्गत मनुष्य का विकास होता है और यह विकास उन्हें आगे बढ़ाना है । अंत में उसे पूर्ण चेतना में पहुँचना है । इस प्रकार का चेतना का विकास ही जीवन का परम रहस्य है ।

विकासक्रम

'श्री अरविन्द' कहते हैं कि इस सृष्टिका एक उद्देश्य चेतना का विकास और चैतन्य का रहस्योद्घाटन है । मनुष्य उसकी ओर गति कर रहा है । 'श्री अरविन्द' के आध्यात्मिक विकासक्रम का एक सिद्धांत ध्यातव्य है

कि – जो वस्तु अंतरभूत होती है, वही आविर्भूत हो सकती है । सृष्टि के आदिकाल में सब कुछ निष्प्राण और जड़वत् था । कालांतर में उस जड़तत्त्व में रहे प्राण का उदय हुआ, तब वनस्पति सृष्टि का जन्म हुआ, वनस्पतिमें प्राणतत्त्व प्रकट हुआ, बाद में प्राणतत्त्व में से 'मनतत्त्व' का अविर्भाव हुआ, इस प्रकार पहली बार सभान चेतना प्रकटी । पशु और अन्य कुछ जानवरों का जन्म इस काल में हुआ, उसमें वृतियों, संवेदनाओं, आवेग–प्रवेग इत्यादि का प्रादुर्भाव हुआ । तब अविकसित मन इन्द्रियों के आधार पर गति करने लगा । फिर तो शुद्धमन ने आकार लिया । शुद्धमन अर्थात् विचार, चिंतन, कल्पना आदि का पूँजीभूतरूप और उसके बाद मनुष्यने जन्म लिया । जो प्रथम चेतनामय प्राणी है, आत्मदर्शन और आत्मचिंतन करनेवाला प्राणी है ।

'मनुष्य' को स्थूलजीवन जीना पसंद नहीं है । केवल मन, प्राण, शरीरादि की मांगों को पूर्ण करने में उसे सुख़ मिलता नहीं, उसे और भी कुछ चाहिए । 'यह' और 'कुछ' पाने की साधना ने ही कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग को आकार दिया है । 'योगसाधना' में चैत्य केन्द्र को अग्रस्थान में लाना जरूरी होता है ।

चैत्य पुरूष (Psychic Being)

चैत्यपुरूष कोई जीता जागता मनुष्य नहीं है । अस्थि, माँस, मज्जा धारण करनेवाला प्राणी नहीं है । यह कोई साकार वस्तु नहीं है । चैत्यपुरूष तो दिव्य चेतना का स्वरूप है । आत्मा की आंतरिक और सूक्ष्म शक्ति है । उसका दर्शन नहीं, मात्र अनुभूति होती है । जैसे बिजली के प्रवाह

को देखा नहीं जा सकता किन्तु उसकी उपस्थिति अनेकों उपकरणों से प्रकट होती है । वैसे ही मनुष्य देह में विनास कर रही चैत्यशक्ति के प्रागटय से मनुष्य की क्रियाशीलता में असाधारण गति उत्पन्न होती है । उसमें अद्‌भुत और अलौकिक तेज, आनंद और शांति का प्रवाह बहने लगता है ।

चैत्यपुरूष को चैत्यशक्ति या चैत्यतत्त्व भी कहते हैं, वही चिदात्मा है । वह हृदयप्रदेश के समीप, मेरूदण्ड के मध्यभाग में शरीर के पिछले भाग में वक्ष के बीच केन्द्र में हैं । चैत्यपुरूष मन, प्राण, शरीर की चेतना के केन्द्रों को स्पर्श करता है, वही मनुष्यचेतना का मध्यवर्ती केन्द्र है । चैत्यतत्त्व ऐसी शक्ति है, जो बाह्य प्रकृति का नियमन तथा पथदर्शन करता है । चैत्यपुरूष के अग्रस्थान में आगमन होने से भक्ति श्रद्धा और साधना शक्य बनती है । चैत्यतत्त्व की शक्ति ज्ञान नहीं परंतु आध्यात्मिकता की दिव्यभावना है । वह सत्य, शिव और सुन्दर से प्लावित है । चैत्यपुरूष जीवात्मा और परमात्मा का प्रतिनिधि है ।

हमारी साधना ऐसी सघन और तत्त्वलक्षी होनी चाहिए कि चैत्यशक्ति अग्रस्थान पर आए, और मन, प्राण, शरीर पर उसकी सत्ता स्थापित होती जाए । फिर तो विकास को असाधारण गति प्राप्त होती है, सामान्य मनुष्य के जीवन में चैत्यपुरूष की शक्ति प्रछन्न हो जाती है, उसे बाहर लाने का कार्य अभीप्सा, श्रद्धा, समर्पण तथा साधना आदि के माध्यम से होता है । चैत्य पुरूष के जागने के बाद संपूर्ण रूपांतर शक्य बनता है ।

अधिमनस (Over Mind)

चैत्यतत्त्व के जाग्रत होने के बाद अनंत गहराई से अलौकिक शक्तियाँ क्रियात्मक रूप लेती हैं, साधना में गति आती है । 'श्री अरविन्द' के अनुसार चैत्यतत्त्व के सहारे आप इतने आगे बढ़ सकते हो कि 'मन' के ऊर्ध्वप्रदेश को स्पर्श करना अत्यंत सरल बन जाता है । प्रकाशित और प्रज्ञावान मन के प्रदेश में से होते हुए अधिमनस की चेतना तक पहुँचा जा सकता है ।

अधिमनस की चेतना ज्योर्तिमनस की चेतना है । चेतना में सबसे ऊँची चेतना यह है । इसे 'श्री अरविन्द' ने अधिमनस नाम दिया है । इस समय की हमारी विकासशील सृष्टि को आधार देनेवाली चेतना अधिमनस चेतना है । वह विपुल शक्ति और प्रकाश तेज से भरपूर है । 'अधिमनस' के उपर 'अतिमनस्' का क्षेत्र है । अधिमनस अतिमनस् के पहले का कदम है, अधिमनस अपनी शक्ति और समर्थता अतिमनस् के पूर्णसत्य से प्राप्त करता है । जिस प्रकार 'सूर्य' से 'चंद्र' को प्रकाश मिलता है, उसी प्रकार अधिमनस को 'अतिमनस्' से प्रकाश मिलता है । 'सूर्य' की तरह 'अतिमनस्' तो 'पूर्णप्रकाशरूप' है । परंतु अधिमनस के प्रदेश में 'चन्द्र' की तरह प्रकाश क्षीण होता है । वहाँ विच्छेद, विभाजन या विभेद की शुरूआत होती है और यह भेद सर्जन की प्रक्रिया अधिमनस की चेतना से भी नीचे उतरकर क्रमशः 'मन', 'प्राण' तथा 'जड़तत्त्व' में पहुँच कर जगत में ऐसी स्थिति उत्पन्न करती है कि सर्वत्र विभेद और विच्छेद नज़र आता है । वहाँ पर अविद्या का आधिपत्य शक्य बनता है और अज्ञान, अहंकार, अंधकार, मृत्यु, संघर्ष, कामवृत्ति, आदि अविद्या के तत्त्वों की शुरूआत होती है

अतिमनस् (Super Mind)

'अधिमनस' से ऊपर की भूमिका अतिमनस् है । वैसे तो हमने इसके पहले 'अतिमनस्' के बारे में थोड़ा परिचय लिया है । परंतु पूर्णयोग की विशेषता के रूप में 'अतिमनस्' को थोड़ा और स्पष्ट करना आवश्यक है । 'श्री अरविन्द' के योग का एक मात्र लक्ष्य यह है कि मनुष्य को आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त हों । वह अपने सत्य स्वरूप तथा अन्य प्राणी मात्र के सत्य स्वरूप को जाने तथा दिव्य चेतना और दिव्य प्रकृति प्राप्त करके परमात्मा से अद्वैतता स्थापित करे । 'अतिमनस्' चेतना प्राप्त करने के लिए जो साधना करनी पड़ती है, वह पूर्णयोग की साधना है । पूर्णयोग द्वारा 'मन', 'प्राण' और शरीर का रूपांतरण करना होता है । और उसके साथ ही 'मन' के उस पार के प्रदेश तक पहुँचना होता है । यह एक विशाल प्रदेश में पहुँचने की साधना है । वहाँ समग्रता का शासन है । उस समग्रता में पूर्णता, परिपक्वता जैसे गुण है । इसी प्रदेश को ही अतिमनस् का प्रदेश कहा गया है । उसका योग अतिमनस् का योग है । अतिमनस् चेतना परमात्मा की चेतना है । 'श्री अरविन्द दर्शन' के साधक और अध्येता तथा गुजराती साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित कवि 'श्री सुन्दरम्' के अनुसार ''अतिमनस् परमात्मा के लिए नया नाम है, यह शब्द परमात्मा के किसी एक खास स्वरूप का, किसी विशेष गुण का या अंग का वर्णन देता नहीं है, परंतु परमात्मा के पूर्ण स्वरूप को सर्वरीति से दिख़ा देता है । विश्व के परमतत्त्व को प्राप्त करने के लिए 'मन' वहाँ जा सकता नहीं है, इसलिए 'मन' से ऊपर जाना पड़ता है, यह अतिक्रमण साधने के लिए अति शब्द 'मनस' के आगे 'श्री अरविन्द' ने रख़ा है, परंतु साथ ही साथ यह बात भी बताई है कि मन के ऊपर का जो कुछ भी है, वह सब 'अतिमनस्' नहीं है । 'मन' से ऊपर जाते हुए अंतिम तत्त्व

तक पहुंचे वही अतिमनस् है । 'अतिमनस्' अर्थात् सामान्य मन की ओर से देखते हुए चेतना का अंतिम आकार और प्रकट स्वरूप तथा परंतत्त्व की स्थिति में से देख़ते हुए प्रथम प्रकट स्वरूप ।''[29]

'अतिमनस्', चेतना परमात्मा की चेतना है, परमात्मा की दिव्य प्रकृतिही पूर्णकक्षा की 'ऋत्-चेतना' है । उसके द्वारा परमात्मा अपने मूल रूप को पहचानता है, और अपना आविर्भाव करता है । 'अतिमनस्' सत्य की चेतना है, विश्वज्ञान तथा आत्मज्ञान की चेतना है, वह एक ओर अखंड है, परिपूर्ण है । अतिमनस् चेतना में परमात्मा की संकल्पशक्ति निज स्वरूप धारण करती है । यहाँ संकल्प ही सिद्धि है । अतिमनस् चेतना आनंद की चेतना है । उसमें पूर्ण आनंद की अवस्था होती है । वेदांत की सच्चिदानंद अवस्था, यहाँ आकार रूप धारण करती है । और क्रियाशील बनती है । अतिमनस् की प्रकृति ज्ञानमय है, उसकी चेतना ज्ञान स्वरूपिणी है । वह स्वयं ज्ञाता है, उसे ज्ञान प्राप्त नहीं करना पड़ता, यहाँ तर्क-वितर्क को कोई स्थान नहीं है और न ही अनुकूल प्रतिकूल के संतुलन की अव्यवस्था है । 'अतिमनस्' में ज्ञान सहज साध्य है । 'अतिमनस्' 'भागवत् स्वरूप' है । प्रकृतिका शास्वत स्वरूप है । सत्य से सत्य के प्रति गति करता है । 'अतिमनस्' शक्ति जगत् के अशुभ को जड़ से ऊखाड़ फेंकने के लिए शक्तिमान है । क्योंकि जगत् का सर्जन करनेवाली यह 'ऋतचेतना' है, अतः सभी जगह पर पहुँच सकती है, वहाँ विभेद या अविद्या का आवरण नहीं है । अतिमनस् तो द्वैत रहित है । एक रूप है, तथा सार्वभौम सत्य है ।

'श्री अरविन्द' ने कहा है कि मनुष्य आज जिन्हें परमात्मा के रूप में

पहचानता है, वे मूल परमात्मा नहीं हैं । वेद, पुराण, गीता आदि में वर्णित परमात्मा से भी मूल परमात्मा अधिक ऊपर रहते हैं । वे प्रभु हैं 'अतिमनस्' । उनका साक्षात्कार जब होता है, तब वैश्विक समस्या के ताले की चाबी हाथमें आती है ।''[30] कोई अकेला मानव 'अतिमनस्' चेतना प्राप्त करे इतना काफी नहीं है, इस पार्थिव जगत में उस 'अतिमनस्तत्त्व' का संपूर्णतः अवतरण हो तथा पृथ्वी पर स्थापित होकर क्रियाशील बने, तभी हमारे विश्व की समस्याएँ सुलझेंगी ।

'अतिमनस्' - 'ऋत-चेतना' का जब प्रादुर्भाव होगा, तब यहाँ इस पृथ्वी पर पूर्णज्ञान, पूर्णप्रकाश और पूर्णसत्य प्रकट होगा । वही पृथ्वी का रूपांतर करेगा । पृथ्वी के जीवन को नया रूप देगा । यहाँ उल्लेखनीय है कि मनुष्य की ऊर्ध्वगति के लिए अब तक जो प्रयत्न हुए, वे बिलकुल निरर्थक नहीं गये हैं । उन सारे प्रयत्नों ने मनुष्य के जीवन की विविध भूमिकाओं के उपर एक पूर्व तैयारीरूप कार्य किया है । इन सभी प्रयत्नों ने मानवीय चेतना की गहरी नींव डाली है । ऊर्ध्वप्रकाश का अवरोहण करवाने के लिए ज्यादा - कम मात्रा में अपना योगदान दिया है और दिव्यप्रकाश को थोडी-बहुत मात्रा में उतारा भी है । इन सारे प्रयत्नों के कारण ही आज अति-मनस् के अवतरण की शक्यता बढ़ी है । सद् प्रयत्न हमेशा कार्यसाधक होता है ।

'अतिमनस्' के अवतरण के बाद, यह पृथ्वी अज्ञानमूलक अंतरायों से मुक्त होगी, अंधकारजन्य परिस्थिति निर्मूल होगी । एक प्रकाशमय 'मन' यहाँ काम करता होगा, मनुष्य का 'मन' प्रकाश और आनंद से सभर बनेगा । वह एक ऊँची भूमिका पर पहुँचेगा । अतिमनस् चेतना स्वयं मनुष्यजीवन

का संचालन करेगी । उसे संवादी बनाएगी । वह मनुष्य की पशुवृत्तियों को नहींवत् कर देगी । 'अतिमनस्' के अवतरण के बाद संपूर्ण मानवजाती यकायक नहीं बदल जाएगी, परंतु उसके कारण अधिक से अधिक विकास की शक्तियाँ तथा शक्यताएँ बढ़ेंगी । 'अतिमनस्' के अवतरण से पृथ्वी पर रहनेवाले सारे मनुष्य अमरत्व प्राप्त करेंगे ऐसा भी नहीं है, परंतु 'अतिमनस्' के अवतरण के बाद थोडे से प्रयत्न से मनुष्य का 'मन' रूपांतरित हो सकेगा । थोड़ी-सी साधना से ऊर्ध्वचेतना प्राप्त होगी ।

बहुत से महान परिवर्तनों की तरह 'अतिमनस् परिवर्तन' भी पहले तो संपूर्ण तैयारी होगी ऐसे कुछेक लोगों में ही आकार होगा, जिनकी चेतना आध्यात्मिक एवम् चैतसिकरूप में साधना में पूर्ण रूप से आगे बढ़ी हुई होगी, ऐसे लोग ही अतिमनस् का प्रकाश प्राप्त कर पाएँगे । स्वाभाविक रूप से ही ऐसे लोग बहुत कम होंगे । उसमें से जो अतिमानव रूप ग्रहण करेंगे, और दिव्य मानव बनेंगे वे ही मानवजाति का नैतृत्व करेंगे । इस शक्यता की और हमें आँखें बिछानी हैं । और अविरत साधना करनी है ।

समूचा जीवन ही योग है

उदुत्तमं मुमुग्धि नो विपाशं मध्यमं चृत अवधामनि जीवसे ।

(ऋग्वेद ३/१/११५)

''शिर के, उदर के, पैरों के पाश को काट दो, ताकि सारा जीवन मुक्त हो जाय ।''

ऋग्वेद का ऋषि शिर से मानसिक बन्धन को, उदर से प्राणिक बन्धन को और पैरों से शारीरिक बन्धनों को तोड़ देने की प्रार्थना कर रहा है, ताकि समूचा जीवन बन्धनविहीन परमसत्ता से संयुक्त हो जाय ।

प्रायः लोग यह सोचते हैं कि योग या अध्यात्म की ओर वे ही झुकते हैं, जो मस्तिष्क के विकार से ग्रस्त है, भावुक हैं या जीवन की कठिनाइयों से संत्रस्त हैं । प्रायः पागलपन या उन्माद को साधना का प्रस्थान-बिन्दु मान लिया जाता है । जैसा कि एक बार श्री अरविन्द के एक शिष्य ने मजाक में कहा - "प्रायः धारणा यह है कि यदि आपके दिमाग का पुर्जा ढीला नहीं है, तो आप योगादि की ओर नहीं झुकेंगे । यानी दिमाग जितना ही ढीला और गड़बड़ हो, साधना की उतनी संभावना बढ़ जाती है ।"[31]

श्री अरविन्द का योग इस प्रकार के शिथिलपंजर बुद्धि वाले लोगों के लिए नहीं था । बड़े कड़े ढंग से बुद्धि की परीक्षा करके, दिमागी संतुलन की दृष्टि से खूब स्वस्थ लोगों को ही वे अपने योग की ओर आने की अनुमति देते थे । वे स्पष्ट कहते हैं - "मेरा योग मस्तिष्क के पूर्ण सन्तुलन की माँग करता है, इसलिए जिनके मन में ऊपर-ऊपर से हल्की इच्छा जगी हो, वे इधर न आयें क्योंकि इस योग में उच्चतर चेतना के अवतरण के लिए उद्‌धाटित होने की संभावना के साथ ही प्राणिक स्तर की शक्तियों के भी घुस आने की संभावना रहती है । इसलिए यदि किसी आदमी के पास पूर्ण बौद्धिक सन्तुलन नहीं है, तो उन गलत शक्तियों द्वारा अधिकृत होने की आशंका हो सकती है । अक्सर वे लोग, जो अदृश्य सत्ता में विश्वास नहीं रखते, उनसे जो उसमें या तांत्रिक क्रियाओं में विश्वास रखते हैं, कहीं ज्यादा ठीक और अच्छे रहते हैं ।"[32]

श्री अरविन्द द्वारा उपस्थापित योग-साधना के लिए स्वस्थ मस्तिष्क, शक्तिशाली प्राणिक और शारीरिक व्यक्तित्व बहुत ही जरूरी अहंताएँ हैं । वैसे वे मानवमात्र या यों कहिये, पूरी सृष्टि को आध्यात्मिक आधारों पर अवस्थित देखना चाहते हैं, इसलिए यह कहना कि वे मनुष्यों में विभेद करते थे, गलत होगा । वे जिस प्रकार की साधना के द्वारा अपने उद्देश्य की प्राप्ति करना चाहते हैं, उसमें इच्छापूर्वक भाग लेने वालों में उपर्युक्त क्षमताएँ होना वे जरूरी मानते थे । वे केवल दृढ़ और सबल मानसिक क्षमता की ही माँग नहीं करते; बल्कि एक सतत तर्कपूर्ण जागरूक मस्तिष्क की माँग करते हैं, 'सत्य की खोज के लिए एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मौलिक आवश्यकता है समीक्षात्मक तर्कक्षमता, करीब-करीब जिद्दी किस्म का ऐसा दिमाग जो हर मुखौंटे को चीर सकता हो और चालू बातों, विचारों और मतों को अस्वीकार कर सकता हो । यह एक प्रकार का शोधक्षम (Solvent) तत्त्व है । आदमी के पास ऐसा साहस होना चाहिए कि वह किसी भी प्रकार के धोखे और आवरण से भिन्न सत्य को देख सके ।''[33]

इसीलिए वे निरन्तर सन्तुलन की बात करते हैं । अतिभावुक या मन को पिच्छल बनाने वाली वैष्णव साधना के अतिवाद का इसीलिए वे घोर विरोध करते हैं । भक्ति का विरोध नहीं, भक्ति के साथ जुड़ी हुई उस गलदश्रु भावुकता का विरोध, जो दिमाग को असंतुलित बनाकर छोड़ देती है । ऐसा नहीं कि श्री अरविन्द भक्ति का विरोध करते हैं । वे सिर्फ भक्ति

के उस खतरे से सावधान करना चाहते हैं, जो भावातिरेक या संवेगों के उच्छल वेग को जगाने का कारण बनता है और मस्तिष्क को इनसे सुरक्षित रखने वाली कोई प्रक्रिया को नहीं स्वीकार करता । इसीलिए उन्होंने कहा – 'जिस क्षण वैष्णव धर्म ने अधिक बहिर्मुखीकरण का यत्न किया, तब जो हुआ हम जानते ही हैं – प्राणावेशमय अधोगति, अत्यधिक भ्रष्टता और ह्रास । चैत्य के दिव्य प्रेम के विरोध में तुम चैतन्य के उदाहरण की दुहाई नहीं दे सकते । उनका प्रेम निरी प्राणिक मानवीय वस्तु नहीं था । ''[34] स्पष्ट ही श्री अरविन्द मानते हैं कि वैष्णवधर्म में प्राणावेश और शारीरिक प्रेम की प्रधानता के खतरे विद्यमान हैं । वे भक्ति के उस तत्त्व को, जो भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम से अपने ह्रदय का रूपान्तर करता है, पूर्णतः स्वीकार करते हैं । उसकी आवश्यकता पर जोर देते हैं ।

श्री अरविन्द योग

अभी तक श्री अरविन्द के जीवन के विभिन्न पहलुओं को देखते वक्त उनकी विशिष्ट योगपद्धति का कुछ न कुछ अंश सामने आता रहा है । 'लेले' के साथ उनका योगाभ्यास, अलीपुर जेल में गीतोक्त योग की साधना, वासुदेव–दर्शन के बाद समदृष्टि और समता की स्थितियाँ, चन्द्रनगर में विभिन्न वैदिक देवियों के दर्शन, जो मानव चेतना के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करती हैं, पोंडिचेरी में उनके चालीस वर्ष के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण पाठकों को कई ऐसे सूत्र प्रदान करते हैं जिनमें से उनके पूर्णयोग का कुछ न कुछ अनुमान लगाया जा सकता है । सन्ध्या–वार्ताओं और

मानव तथा मानवचक्र के सूक्ष्म तत्त्वों की विवेचना में भी उनके योगतत्त्वों की अनेक झलकियाँ अपने आप आ गई हैं । यहाँ मेरा प्रयत्न होगा कि श्री अरविन्द योग और साधना को पारिभाषिक शब्दों के जंगल से निकाल कर यथासंभव सरल और सुभग ढंग से प्रस्तुत कर सकूँ ।

उन्होंने स्वयं एक बार अपने योग को अन्य योग-प्रणालियों से अलग करते हुए अपनी शिक्षा को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया था ।

श्री अरविन्द योग की विशषताएँ

१. श्री अरविन्दयोग का लक्ष्य संसार से विदा हो जाना और स्वर्ग में जीवन या निर्वाण प्राप्त करना नहीं, बल्कि जीवन ओर सत्ता का परिवर्तन करना है । किसी गौण या प्रासंगिक कार्य के तौर पर नहीं, बल्कि विशेष और मुख्य उद्देश्य के तौर पर । यदि दूसरे योगों में चेतना के अवरोहण (चेतना का नीचे उतरना) हैं भी, तो वह पथ में अपने आप आनेवाली या आरोहण (चेतना का ऊपर उठना) की परिणाम स्वरूप घटना मात्र है । वहाँ आरोहण ही मुख्य वस्तु है । यहाँ आरोहण पहला कदम है । वह अवरोहण के लिए साधन है । आरोहण से प्राप्त नई चेतना का अवतरण ही इस साधना का वास्तविक चिह्न तथा मुहर-छाप है । तंत्र और वैष्णव धर्म भी जीवन से छुटकारा पाने में ही अपनी इतिश्री मानते हैं, परन्तु इस योग का ध्येय है जीवन की पूर्ण दिव्यता प्राप्त करता ।

२. इस योग में जिस ध्येय की खोज करनी है, वह व्यक्ति के हित के लिए भगवान् के साक्षात्कार की व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं, बल्कि ए

क ऐसी चीज है जो यहाँ पृथ्वी चेतना के लिए प्राप्त करनी है, अर्थात् इहलौकिक न कि केवल पारलौकिक उपलब्धि । प्राप्त करने की वस्तु है चेतना ही वह शक्ति (विज्ञानमय) जिसे क्रिया क्षेत्र में उतारा जाय, जो अभी पार्थिव प्रकृति में, यहाँ तक कि आध्यात्मिक जीवन तक में संगठित या प्रत्यक्ष क्रियाशील नहीं है, उसे सुसंगठित करना और क्रियाशील करना हमारा उद्देश्य है ।

३. इसी उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए यह पद्धति खुले तौर पर प्रकट की गई है जो अपने उद्देश्य यानी चेतना और प्रकृति का सर्वांगीण परिवर्तन कर सके । जैसा सर्वांगीण उद्देश्य है वैसी ही सर्वांगीण यह पद्धति है अर्थात् यह पुरानी पद्धतियों को ग्रहण तो करती हैं, पर केवल आंशिक क्रिया के तौर पर और अपनी विशिष्ट विधियों में विद्यमान सहायक साधन के रूप में; बस । मैंने यह पद्धति (सारी की सारी) या इससे मिलती-जुलती कोई पद्धति पुराने योगों में प्रतिपादित या संसिद्ध नहीं पाई है । अगर मैं पाता तो अपने लिए नया रास्ता बनाने और तीस वर्ष तक अनुसंधान तथा आन्तरिक सर्जन करने में अपना समय व्यर्थ न गँवाता । जब कि मैं पहले से ही उद्घोषित, प्रस्थापित, पूर्ण रूप से अंकित, प्रस्तर निर्मित, सुरक्षित, और सर्वसुलभ मार्गों पर आसानी से सरपट दौड़ते हुए शीघ्र ही अपने लक्ष्य पर सकुशल पहुँच सकता था । हमारा योग पुराने रास्तों पर ही दुबारा चलना नहीं है, बल्कि कठिन आध्यात्मिक कार्य है ।[35]

श्री अरविन्द मानते हैं कि कोई जाने या न जाने जिन्दगी स्वयं में एक योग है ही । वह अपनी योग-यात्रा पर चलती रहती है । प्रकृति की यह विकास-यात्रा स्वतः संचालित ढंग से चल रही है, अब यह मनुष्य पर निर्भर

करता हैं कि वह उसमें सचेत भाव से हिस्सा लेकर उस प्रक्रिया को तेज करके अपने इसी जीवन में विकास की चरम उपलब्धि पाना चाहता है या नहीं । इस योग–यात्रा में प्रकृति ने तीन चरण पार कर लिए हैं । जड़ में चैतन्य का प्रकटीकरण, चैतन्य से प्राण और प्राण से मन तक का विकास वह स्वतः कर चुकी है । चौथे चरण के विकास की ओर बहुत पहले से लोगों की दृष्टि गई थीं । और हमारे देश में अनेक योग–प्रणालियाँ इसी उद्देश्य से स्थापित हुईं । श्री अरविन्द उन योग–प्रणालियों से संतुष्ट नहीं हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य व्यक्तिगत मुक्ति रहा, जीवन का उच्चतर रूपान्तर नहीं, जो प्रकृति का सच्चा उद्देश्य मालूम होता है ।

योग–सिद्धि के लिए चार तत्त्वों की जरूरत है – शास्त्र, उत्साह, गुरू और समय । श्री अरविन्द अपने प्राकृतिक योग के बारे में कहते हैं कि इस योग का मूल शास्त्र वेद है, वह वेद जो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में छिपा है । गुरू विश्वगुरू स्वयं ईश्वर हैं, जो सभी के हृदय में प्रतिष्ठित हैं । प्रत्यक्ष गुरू उसी का प्रतिनिधि हैं, जो साधक के जीवन की उलझनों को दूर करने में सहायता देता है । इस समन्वित पूर्ण योग के लिए उत्साह जरूरी है । पर शास्त्र, गुरू और उत्साह मनुष्य की स्वतन्त्रता के रक्षक हैं, बाधक नहीं । क्योंकि अनन्त के लिए किए जाने वाले इस योग में स्वतन्त्रता अन्तिम विधान और संबल है ।''[36] यह योग व्यक्ति के लिए नहीं, परमसत्ता के लिए निवेदित है । अतः अहं का विसर्जन इसकी शाश्वत शर्त है । व्यक्ति अहं सारे बन्धनों की जड़ है । योगाभ्यासी को जानना चाहिए कि उसके भीतर सक्रिय शक्ति निर्वैक्तिक और अनन्त है । जिस दिन वह यह जान लेता है उसे मालूम हो जाता है कि उसकी सारी क्रियाओं के भीतर उसका परम हितू विभु पर्दे

के पीछे छिपा कार्य कर रहा है । उसे सामने लाना और सम्पूर्ण जीवन को उसकी क्रीड़ा का क्षेत्र बना देना श्री अरविन्दीय योग का ध्येय है ।

वे इसी के साथ यह भी कहते हैं कि यह योग अपने सभी तत्त्वों में एकदम नया है, ऐसा दावा भी नहीं करता । उन्होंने बहुत ही विस्तार के साथ 'योग-समन्वय' में विभिन्न योगमार्गों का पूर्ण विश्लेषण, चीड़-फाड़, नापजोख की है और उनमें से अपने उद्देश्य के लिए आवश्यक तत्त्वों को ग्रहण किया हैं और उन सभी तत्त्वों और पद्धतियों को अपने स्वयं सिद्ध अनुभवों के आधार पर एक नये योगमार्ग के रूप में उपस्थित किया है । उनका पूर्ण योग उनके द्वारा अनुभूत चार सिद्धियों पर आधारित है ।

१. देशकालातीत शान्त ब्रह्म की अनुभूति, जो लेले के साथ साधना करते हुए प्राप्त हुई ।

२. विश्वचेतना की अर्थात् सर्वत्र भगवान् के दर्शन की अनुभूति, जो अलीपुर जेल में हुई ।

३. परमसत् चेतना की अनुभूति, जिसके दो पक्ष हैं, निष्क्रिय ब्रह्म और सक्रिय ब्रह्म । उन्होंने सक्रिय ब्रह्म या अधिमानसिक चैतन्य की उपलब्धि सिद्धि-दिवस पर प्राप्त की, जिसे उन्होंने प्रकृति में श्रीकृष्ण का अवतरण कहा, जो आनन्दमय अतिमानसिक चेतना की ओर ले जाने में पथप्रदर्शन का कार्य करती है ।

४. अतिमानसिक चैतन्य की अनुभूति, जो सर्वोच्च सत् की अन्तिम उपलब्धि है । श्री अरविन्द योग उन्हीं की इन चार अनुभूतियों के चौखंभे पर कायम है । इसको प्राप्त करने की सारी विधि और साधना, मार्ग और तरीके,

खतरे और खाइयाँ उन्होंने बहुत ही स्पष्टता से समझाने की कोशिश की है । श्री अरविन्द योग या कोई भी योग एक मुसलसल आन्तरिक यात्रा है, एक मनोवैज्ञानिक के आन्तरिक क्षेत्र के, अन्वेषण का प्रयत्न है जिसे हम संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे । यह एक व्यावहारिक मनोविज्ञान है । अन्तः की यात्रा है ।

हमें इस यात्रा के पहले यह जान लेना चाहिए कि योग का अर्थ 'करना' नहीं 'होना' है । यानी यह यात्रा हमसे कहीं बाहर के क्षेत्र में नहीं की जाती, इसलिए इस यात्रा का अर्थ आन्तरिक-रूप से जीने की एक नई विधि को प्राप्त करना है ।

इस प्रकार हमने संक्षेप में देखा कि ''पूर्ण योग का मुख्य उद्देश्य है सामान्य मानवीय चेतना का व्यापक और उच्च ईश्वरीय चेतना में परिवर्तन तथा दिव्य चेतना के मुख्य उपादान अर्थात् शान्ति, प्रकाश, आनन्द, ज्ञान को मनुष्य के भौतिक जीवन में उतार कर उसकी प्रकृति का उच्चप्रकृति में रूपान्तर करना । इस रूपान्तर का उद्देश्य है जीवन में दिव्यता लाना ।''

साधना की शर्तें

इस योग की ओर जाने की पहली शर्त है 'अभीप्सा' । क्या आपके भीतर इस संसार की जिन्दगी से भिन्न एक उच्चतर जिन्दगी के लिए इच्छा उत्पन्न हुई है ? तो आप इधर आ सकते हैं । इस इच्छानुसार आपको अपने को रूपान्तरित करने की साधना के प्रति ईमानदार होना ही होगा । बीच की

स्थिति नहीं चलेगी । यदि अभीप्सा है तो ईमानदारी के साथ उसके लिए प्रयत्न करना होगा । अभीप्सा और ईमानदारी से भी कुछ नहीं होगा, यदि आपको ईश्वर, गुरू और मार्ग में विश्वास नहीं है । विश्वास डगमगा सकता है । कष्टों या बाधाओं के आगे आप आस्था खो सकते हैं । और यदि इस हालत में अहं भाव रहा तो खतरे और बाधायें बढ़ सकती हैं, इसलिए समर्पण बहुत जरूरी है । ईश्वर को सब कुछ सौंप देना सभी बाधाओं से बचने की गारंटी है । इन चार कीलक और अर्गलाओं में सुसज्जित होकर आप निधड़क, योग मार्ग में आगे बढ़ सकते हैं, किन्तु अपनी साधना में गफलत आत्मघाती होती हैं, इसलिए निरन्तर सावधानी और चौकसी रहनी ही चाहिए ।[37]

मस्तिष्क की नीरवता और शान्ति

श्री अरविन्द यह मानते हैं कि जब तक मानव मन (माइंड) नीरव और शान्त नहीं होता तब तक किसी भी प्रकार का योगाभ्यास सम्भव नहीं है । यह शान्ति दो प्रकार से प्राप् त की जा सकती है । सक्रिय रूप से मस्तिष्क को खाली करके या तटस्थरूप से मस्तिष्क में चलने वाली क्रिया का मात्र द्रष्टा रहते हुए । लोगों को ये दोनों ही कार्य बहुत कठिन लगते हैं । हैं भी, पर यह तो प्रकृति को न समझने के कारण इतना कठिन लगता है । श्री अरविन्द ने एक स्थान पर लिखा है, "सभी मानसिक रूप से विकसित लोग, जो औसत से ऊपर हैं, किसी न किसी रूप में, मस्तिष्क को दो भागों में विभक्त कर लेते हैं । हो सकता है कि ऐसा कुछ समय के लिए और कुछ उद्देश्य के लिए ही हो, पर होता है । सक्रिय अंश और निष्क्रिय अंश । सक्रिय अंश विचारों की एक फैक्टरी हैं और निष्क्रिय शान्त अंश, जो

उसका द्रष्टा और स्वामी हैं, जो विचारों की गतिविधियों का निरीक्षण करता है, निर्णय करता है, कुछ को अस्वीकार करता है, कुछ को स्वीकार करता है, परिवर्तन करता है, सुधार करता है, मन के इस कमरे का यही स्वामी है, पूरा मन इसी का साम्राज्य है । योगी इससे भी आगे आगे जाता है । वह खुद स्वामी होता है और एक तरह से मस्तिष्क के भीतर की दूसरी प्रक्रिया के भी ऊपर उठकर उससे अलग होकर या पीछे रह कर स्वतंत्र रहते हुए स्थित होता है । उसके लिए विचारों की फैक्टरी के कारनामें कुछ अर्थ नहीं रखते, क्योंकि वह देखता है कि विचार बाहर से आते हैं, विश्वमन से, या विश्वप्रकृति से, कभी, साफ आकृति लिए हुए, कभी निराकार ढंग से, जिन्हें मस्तिष्क रूप दे लेता है । मन का मुख्य कार्य ही है इन्हें स्वीकृत करना या अस्वीकृत करना और रूप प्रदान करना ।''[38]

ऐसी स्थिति में नीरवता प्राप्त करने का सीधा रास्ता हैं जो कुछ भी मन में प्रवेश कर रहा है, उसे पकड़ कर बाहर फेंकना । यही पद्धति श्री अरविन्द ने लेले के साथ साधना करते हुए अपनाई थी । वे खुद लिखते हैं – ''इसके लिए मैं लेले का अत्यधिक ऋणि हूँ कि इन्होंने इस सत्य का साक्षात्कार कराया । ध्यान के लिए बैठ जाओ, उन्होंने कहा परन्तु कुछ भी सोचो नहीं, केवल अपने मन का निरीक्षण करो, तुम विचारों को उसके अन्दर आते देखोगे ।

उनके प्रवेश कर सकने के पूर्व उन्हें अपने मन से तब तक दूर फेंकते रहो, जब तक तुम्हारा मन पूर्ण नीरवता प्राप्त कर सकने में समर्थ न हो जाय । मैंने यह पहले नहीं सुना था कि विचार प्रत्यक्ष रूप से बाहर से हमारे मन के भीतर आते हैं । पर इस सत्य या संभावना पर शंका करने की बात मेरे

मन में नहीं आयी । बस, मैं बैठ गया । और वैसा ही किया । क्षण भर में मेरा मन उच्च पर्वत शिखर के निर्वात आकाश की भाँति शान्त हो गया और तब मैंने देखा कि एक विचार, फिर दूसरा विचार बाहर से स्पष्ट रूप से आ रहा है । इसके पूर्व वे मेरे मस्तिष्क में घुस कर उसे अपने अधिकार में कर सकें, मैंने इन्हें झटक कर दूर फेंक दिया और तीन दिनों में ही मैं उनसे मुक्त हो गया । उसी क्षण से सिद्धान्ततः मेरे अन्दर का मनोमय पुरूष एक स्वतंत्र प्रज्ञा किंवा विराट् मन बन गया, जो विचारों के कारखाने के एक मजदूर की भाँति वैयक्तिक विचार के संकुचित घेरे में बंधा नहीं, बल्कि सत्ता के सैकड़ों स्तरों से ज्ञान ग्रहण करने लगा तथा इस विशाल दर्शन-साम्राज्य और विचार-साम्राज्य में से अपनी इच्छा के अनुसार विषयों और विचारों का चुनाव करने में स्वतन्त्र था ।"[39]

श्री अरविन्द की यह साक्षी भी बहुतों की आशंका दूर नहीं कर पाती । क्योंकि हम समझते हैं कि दिमाग को खाली करना एक तरह की खफतुलह्वाशी को आमंत्रित करना है । वस्तुतः हमें आज तक किसी ठीक-ठीक मनोविज्ञान की जानकारी ही नहीं हुई । मानसिक अस्तित्त्व का मूल तत्त्व क्या हैं ? वह किस प्रकार संगठित होना चाहिए ? श्री अरविन्द कहते हैं कि - "मानसिक सत्ता का मूल पदार्थ एकदम शान्त है । कोई वस्तु उसे आन्दोलित नहीं कर सकती । विचार या वैचारिक क्रियाएँ जब उसमें प्रवेश करती हैं तो वैसा ही होता है मानो वायुहीन आकाश को पक्षी पार कर रहे हैं । यह उड़ता चला जाता हैं, कहीं कुछ भी हलचल नहीं होती । कोई निशान नहीं पड़ता । चाहे हजार विचार या आन्दोलित करनेवाली घटनायें ही क्यों न घटें, शान्ति वैसे ही बनी रहती है, मानो

मस्तिष्क का मूल ढाँचा ही इस कदर के तत्त्व से बना है जो शाश्वत अक्षय शान्ति से निर्मित है । ऐसा मस्तिष्क, जिसने यह नीरवता और शान्ति पा ली है, अपनी प्रक्रिया शुरू कर सकता है, यह प्रक्रिया निहायत सधन और शक्तिशाली होती है, तो भी मस्तिष्क अपनी मौलिक शान्ति बरकरार रखता है । अपने से कुछ भी न करता हुआ, वह निरन्तर, ऊपरी चेतना से विचार प्राप्त करता है और उसमें बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े मानसिक आकार देता रहता है । नीरव, किन्तु सत्य के आनन्द से परिपूर्ण और इसकी शक्ति और दीप्ति से भरपूर । यही शान्त और नीरव मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली है ।''[40]

यह है मन को नीरव और शान्त बनाने की प्रक्रिया । इसी प्रक्रिया से श्री अरविन्द योग का आरम्भ होता हैं । नीरवता और शान्ति के ठोस रूप में विद्यमान हुए बिना चैत्यपुरूष सामने नहीं आ सकता ।

इस शान्ति के लिए प्रयत्न आवश्यक है । किन्तु ऐसा नहीं कि यह प्रयत्न निर्विध्न और आसान है । अनेक लोग अशान्त जीवन के ही इतने अभ्यस्त होते हैं कि यह शान्ति उनमें भय पैदा करने लगती है । शान्ति को एक ठोस और व्यापक आधार देने के लिये जरूरी है कि यह प्राणिक और शारीरिक स्तरों तक भी उतरे और सम्पूर्ण सत्ता को शान्ति से सराबोर कर दे ।

उसे शुचि और पवित्र करे । ऐसा नहीं कि प्रयत्न करते ही शान्ति उतरने लगेगी और इच्छा करते ही वह प्राणिक और शारीरिक शान्ति का रूप ले लेगी । यह भी जरूरी नहीं कि एक बार मानसिक शान्ति लब्ध हो जाय

तो उसमें वह सर्वदा विद्यमान ही रहेगी । यह सतत प्रयत्न की क्रिया है । इसमें बसन्त आता है तो पतझड़ और ग्रीष्म भी । लम्बे काल तक रूखे दिन भी आ सकते हैं । एक बार शिष्यों के पूछने पर श्री अरविन्द ने कहा – "यह सही है कि मस्तिष्क के खालीपन के बाद एक शुष्कता का दौर आता है, पर जरूरी नहीं कि सबके साथ ऐसा हो ही । पर हो, तो उसे शान्त भाव से इस समय को गुजार लेना चाहिये । दिमाग को खाली करने के आनन्द का, या भार कम होने से एक तरह के छुटकारे का अनुभव होता है । मुश्किल तो यह हैं कि बहुत से 'बर्टेण्ड रसेल' जैसे लोग भी इस खालीपन को सह नहीं पाते । वह कहते हैं कि ज्यों ही वे अन्तर में प्रवेश करते हैं, उस शान्ति का अनुभव करने लगते हैं और कोशिश करते हैं कि वहाँ से निकल कर बाहर भागें । यह कितनी बेवकूफी हैं कि वे वहाँ से निकल भागना चाहते हैं । क्योंकि यदि वे नीरवता का बोध कर सकते हैं तो यह अच्छा है, यह मूल्यवान् क्षमता का सूचक है, पर ये योरोपीय लोग कोई भी चीज बिना बाहरी जीवन के स्वार्थ के कर ही नहीं पाते । वे सोचते हैं चेतना में बहिर्जगत् से तत्त्वों के आने के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकता ।"[41]

इस खालीपन का अर्थ शून्यता नहीं है । खालीपन का अर्थ है नीरवता, शान्ति । श्री अरविन्द ने अचंचलता से शान्ति को ज्यादा स्थायी और ठोस बताया है । वे कहते हैं, "दिमाग को शान्त करने से न केवल वहाँ अनन्त का अवतरण होता है बल्कि आनंद, ज्योति और शक्ति का समुद्र मिलता है । स्वर्ण ढक्कन, जिसे हिरण्यमयपात्र कहा गया है, ऊपर के तत्त्वों और मानसिक के बीच हस्तक्षेप करता है, उसे रोकता है । ढक्कन तोड़ दो,

वे सब तुम्हारी इच्छा मात्र से अवतरित होने लगेंगे । पर उसके लिए शान्ति जरूरी है । यह सही हैं कि बिना शान्ति स्थापित किये भी कुछ लोग उन्हें पा सकते हैं, पर यह बहुत कठिन है ।"[42]

जिस प्रकार परम चैतन्य को मानसिक चैतन्य से हिरण्मय पात्र या सुवर्ण ढक्कन अलग किये हैं, उसी प्रकार हृदय देश में भी एक झिल्ली हैं कि जिसे प्राणिक तत्त्वों से बने आवरण की संज्ञा दे सकते हैं – तुम्हें "हृदय के पीछे क्या है यह जानने के लिए इस आवरण को तोड़ना होगा । कुछ लोगों में शक्ति इस आवरण के पीछे से कार्य करती रहती हैं, क्योंकि यदि ऊपर आ जाये तो उसे बहुत सी मुश्किलों और अवरोधों से टकराना होगा । यह लगातार तोड़ने और बनाने का कार्य भीतर करती रहती है, जब तक कि वह दिन नहीं आ जाता कि पर्दा हट जाय और व्यक्ति अनन्त में जीना शुरू कर दे ।"[43]

इसी अवसर पर श्री अरविन्द से एक शिष्ट ने बहुत ही व्यावहारिक प्रश्न किया – "कृपया हमें वह सारा, आनन्द, ज्योति और शक्ति पाने का कोई सरल रास्ता बताएँ ।"

श्री अरविन्द बोले – "सारा रहस्य तुम्हारी इच्छा में है । चाहना, रखो, इसे चाहना बहुत मुश्किल है न ? खैर, कोई बात नहीं । धैर्य रखो । योग के लिए अपार धैर्य चाहिए ।"[44]

जब तक अभीप्सा नहीं हैं, चाहत नहीं है, उस अदृश्य को पाने की सच्ची कामना नहीं हैं, कुछ नहीं हो सकता । अभीप्सा श्री अरविन्द–योग की साधना की कुंजी हैं ।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस खालीपन या नीरवता का अर्थ जीवन से निष्क्रिय होना नहीं है । एक महत्तर चेतना को हस्तगत करना है । शान्त होने के लिए कार्य छोड़कर बैठे रहने की जरूरत कतई नहीं है । शान्ति की परीक्षा ही कर्म के भीतर होती हैं । श्री अरविन्द ने इस खालीपन को प्राप्त करने के बाद न केवल क्रान्तिकारी कार्यों का लगातार संचालन किया, बल्कि सम्पूर्ण राजनीतिक क्रियाकलापों के केन्द्र बने रहे । इसी अवस्था में उन्होंने गुरिल्ला युद्ध की तैयारियाँ कीं, भाषण किये, पत्र सम्पादन किये, लेख लिखे ।

चैत्य उन्मीलन और क्रमिक साधना सोपान

चैत्य केन्द्र के विषय में हम पहले विचार व्यक्त कर चुके हैं । श्री अरविन्द साधना में इसके महत्त्व पर भी यथास्थान बात की जा चुकी हैं । मानसिक और प्राणिक शान्ति के बाद ही चैत्यपुरूष उन्मीलित होकर सतह पर आता है और व्यक्ति की सभी क्रियाओं की बागड़ोर अपने हाथ में ले लेता हैं । हृदय के पीछे एक झिल्ली में छिपे इस चैत्य पुरूष को आसानी से प्राप्त नहीं किया जा सकता । 'सत्प्रेम' ने श्री अरविन्द की ''चैत्यपुरूष-धारणा'' को बहुत सरल ढंग से समझाते हुए लिखा है - ''यह विश्व की सबसे आसान चीज है पर सबसे मुश्किल भी । सबसे आसान इसलिए की एक शिशु भी इसे जानता है, या यों कहिये उसी में जीता है, वह स्वामी है, कितनी निर्द्वन्द्वता से हँसता है क्योंकि वह अपने चैत्यपुरूष में ही रहता है । सबसे अधिक कठिन, इसलिए कि ज्यों - ज्यों हम बड़े होते हैं, नाना प्रकार की भावनाओं, विचारों, आदि के द्वारा वह स्वतोद्‌भूत चैत्य-स्थिति नष्ट होने लगती है और तब हम ''अपनी आत्मा'' की बात करने लगते हैं

। जिसका अर्थ ही हैं कि अब हम उसके बारे में जानना खो चुके । अब उससे अलग हो गये । कैशोर अवस्था के सारे दु:खों की कहानी ही धीरे-धीरे चैत्यपुरूष के कैद होने की कहानी हैं । हम विकास के संकट की बात करते हैं, पर यह तो दम घुटने का संकट है, वयस्क होने का अर्थ ही है दमघोंट स्थिति की पूर्णता ।''[45] हमारा कृत्रिम रूप से तथाकथित दिमागी परिपक्वता को प्राप्त करना ही प्रकारान्तर से सहज चैत्य स्थिति से अलग होना है ।

जब प्राणिक और मानसिक उद्वेग नष्ट हो जाते हैं, अहं का विसर्जन हो जाता हैं, मस्तिष्क की सीमाएँ जानकर आदमी परम चेतना के सम्मुख नतशिर समर्पण भाव से खड़ा हो जाता हैं तो हृदय-गुफा में छिपी यह ज्योतिकिरण बाहर आ जाती है । आनन्द इसका प्रथम लक्षण है । एक ए ेसा आनन्द जो उद्वेगहीन पर ठोस होता है । शान्त, गंभीर, निरूद्वेग, नि:स्वार्थ, यही आनन्द चैत्य पुरूष के जागरण का प्रथम लक्षण है । एक निर्हेतुक आत्माराम की स्थिति, एक सहजानन्द और व्यापकता की भावना । चैत्यपुरूष कैसा होता हैं ? हम नहीं देख सकते इसलिए नहीं जानते कि कैसा होता है । केवल तांत्रिक शक्ति रखने वाले ही इस अदृश्य अभौतिक को देख सकते है । जो आँखें उसे देख सकती है, उनकी स्वामिनी श्रीमाँ ने कहा है - ''सचेत व्यक्ति को देखते ही लगता है कि इसके भीतर, गहरे से गहरे उतरती जा रही हूँ, बहुत दूर, अन्दर की और काफी गहरे (बहुत सी आँखें ऐसी होती हैं जो बन्द दरवाजे की तरह होती हैं, उनमें घुसना कठिन होता हैं, पर अनेक की आँखें खुली होती हैं) तभी कोई चीज मिलती हैं जो स्पन्दित हो रही होती हैं, कभी वह चमकती होती हैं, कहीं उसमें से स्फुलिँग निकलते होते हैं । यदि देखने वाला धोखा खा गया तो कह उठता है - 'यह है वह

जीवन्त आत्मा' । पर यह वह चीज नहीं है । यह इस व्यक्ति का प्राणिक पुरूष है । आत्मा को देखने के लिए इस तरफ से हटकर दूसरी ओर यात्रा करनी होगी । गहरे में अपने को समेट लो, और प्रवेश कर जाओ । भीतर जाओ और भीतर उतरते जाओ, एक बहुत लम्बे छिद्र के भीतर यात्रा करते हुए चलते जाओ, और वहाँ एक चीज है, गरमाहट लिए हुए, शान्त, नानातत्त्वों से समृद्ध, और बहुत स्थिर, और बहुत पूर्ण, अत्यन्त मधुर यह हैं आत्मा । और यदि कोई अभ्यास करता है, और अपने भीतर सचेत है, जो एक प्रकार का ऐसा आधिक्य दिखता है, कि लगता है जैसे कोई सभी सम्पूर्णताओं को जो अमापनीय हैं, एकत्र पा गया है । और वह जानने लगता है कि यदि वह किसी तरह वहाँ जीना जान जाय तो नाना रहस्यों को जान जायेगा । यह सब कुछ शाश्वत के शान्त स्थिर जल पर पड़नेवाले स्पष्ट प्रतिबिम्ब की तरह लगता है । यहाँ समय की सीमा खत्म हो जाती है । यहाँ सिर्फ शाश्वत के लिए हुए, और होने, या हो रहे का ही बोध रह जाता है ।''[46]

चैत्यपुरूष के उन्मीलन के लिए जो द्वार खुलता है, चाहे जिस स्तर से खुले, उसे खुलना (ओपेनिंग) कहते हैं । यह खुलना कैसा होगा ?

श्री अरविन्द ने लिखा है - ''भीतर से उद्‌धाटन या ऊपर से अवतरण - योग - सिद्धि के लिए ये दो सर्वोपरि रास्ते हैं । दिमाग की ऊपरी सतह, संवेगों आदि को मिला-जुला कर की गई तपस्या वगैरह कुछ-कुछ ऐसी स्थितियाँ पैदा कर सकती हैं, पर, नतीजा हमेशा अनिश्चित या अधूरा होता हैं । इसकी तुलना में उपर्युक्त दोनों रास्तों के नतीजे निश्चित और पूर्ण होते हैं । इसीलिए हम अपने योग में 'खुलने' या उद्‌धाटन पर बहुत जोर देते हैं

। यह खुलना आन्तरिक मन की ओर से प्राणिक स्तर से, या शरीर से लेकर अन्तरतम चैत्य स्तर में कहीं से हो सकता है । मन से ऊपर की सत्ता की ओर खुलना इस साधना की फल–प्राप्ति के लिए अनिवार्य चीज है । इसका कारण यह है कि हमारा छोटा दिमाग, प्राण, शरीर, जिसे मिला–जुलाकर हम अपने को हम कहते हैं, यह एक सतही बात है, ये सतही प्रक्रियाएँ हमारी नहीं है ।

सच्ची आत्मा कहीं सतह पर नहीं है । वह या तो अन्तरतम की गहराई में है या हमसे ऊपर की ओर स्थित है । अन्तर में वह आत्मा है जो आन्तरिक मन, आन्तरिक प्राण और अन्तर शरीर को कायम किये हुए है । जिनमें यह क्षमता है कि वे वैश्विक व्यापकता को प्राप्त कर सकें, जिसके फल की हम आकांक्षा करते हैं, ये सभी आत्मिक सत्य के सीधे सम्पर्क में जाकर दिव्य आनन्द का आस्वादन कर सकते हैं । बशर्ते वे स्थूल भौतिक शरीर की कैद से, दुःखों से अपने को छुड़ा सकें । हमारे मनोविज्ञान के अनुसार यह आन्तर सत्ता क्षुद्र बाह्य व्यक्तित्व से चेतना के कुछ केन्द्रों या चक्रों द्वारा जुड़ी रहती है, जिसका अनुभव योग–प्रक्रिया में होता है । आन्तर सत्ता का अत्यल्प अंश इन चक्रों से छनकर बाहरी व्यक्तित्व में आ पाता है, पर वही अत्यल्प हमारे जीवन का सर्वोत्तम होता है जो कला, कविता, दर्शन, धर्म, अभीप्सा, ज्ञान, प्रयत्न आदि में झलकता है । पर आन्तरिक केन्द्र अधिकतर बन्द ही रहते हैं । उन्हें खोलना और सक्रिय बनाना योग का पहला कार्य हैं । जैसे ही यह खुलना या उद्घाटन संभव होता हैं, आन्तरिक सत्ता की शक्ति और संभावनाएँ जग जाती हैं । तभी हम अपने को बृहत्तर चेतना के प्रति और फिर वैश्विक चेतना के प्रति जागरूक कर पाते

हैं । तब हम सीमित जीवन के अलग–अलग पड़े क्षुद्र व्यक्ति न रहकर विश्व शक्तियों के क्रियाकलाप में केन्द्र बन जाते हैं । इन शक्तियों के अनजान क्रीड़ा–कन्दुक न रह कर, जैसा हम सीमित जीवन और सतही चेतना वाले व्यक्ति के रूप में रहते हैं, उनकी क्रीड़ा के कुछ हद तक स्वामी बन जाते हैं । किस हद तक हम ऐसा हो सकते हैं, यह हमारे भीतरी आन्तरिक सत्ता के उच्च आध्यात्मिक स्तरों की ओर खुलने या उद्घाटित होने की स्थिति पर निर्भर करता है । इसी के साथ–साथ हृदयस्थ चैत्य केन्द्र के खुलने से हमें अपने भीतर की ईश्वरीय सत्ता और ऊपर के उच्चतर सत्य की जानकारी होने लगती हैं ।

उच्चतम आध्यात्मिक आत्मा हमारे व्यक्तितत्त्व या शारीरिक सत्ता के पीछे स्थित नहीं है; बल्कि वह इसे अतिक्रान्त करती हुई इसके ऊपर प्रतिष्ठित है । आन्तरिक सत्ता का सर्वोच्च केन्द्र सिर में हैं, जैसे अन्तरतम का केन्द्र हृदय में है । पर जो केन्द्र हृदय में है । पर जो केन्द्र सीधे आत्मा की ओर खुलता हैं वह शिर से ऊपर हैं, शारीरिक सत्ता से बिल्कुल अलग, यह सूक्ष्म शरीर में प्रतिष्ठित हैं । इसके दो पक्ष हैं और इसीलिए इसके खुलने के परिणाम भी दो प्रकार के होते हैं । एक है निष्क्रिय, विराट् शान्ति, स्वतंत्रता और नीरवता के रूप में अनुभव गम्य, यह कभी भी क्रियाओं और अनुभवों से प्रभावित नहीं होता, यह अंशतः उन्हें आधार प्रदान करता है, पर कभी भी उन्हें उत्पन्न नहीं करता, यह हमेशा तटस्थ और उदासीन रहता है । दूसरा है सक्रिय, जो विश्वात्मा के रूप में अनुभूत होता है, यह वैश्विक क्रियाओं को केवल आधार ही नहीं प्रदान करता; बल्कि उन्हें सम्पादित और समुत्पन्न भी करता है । यह केवल हमारी शारीरिक आत्माओं की ही नहीं,

बल्कि जो उनसे ऊपर और अलग है, यह जगत् और दूसरे तमाम जगत, भौतिक और अतिभौतिक तमाम स्तरों का नियमन करता है । हम अनुभव करते हैं कि आत्मा सबमें विद्यमान हैं, पर साथ ही यह भी अनुभव करते हैं कि यह सर्वोपरि, अतिक्रान्त करने वाली, सभी वैयक्तिक जन्मों और वैश्विक सत्ताओं के ऊपर है । विश्वात्मा में प्रवेश करने के लिए, जो एक में और सबमें विद्यमान हैं, हमें अहं से मुक्त होना होगा । अहं या तो, ए क चेतन यांत्रिक स्थिति मात्र बन जाता है या हमारी चेतना से पूर्णतः निवारित हो जाता है । यही हैं अहं का लय या निर्वाण । विश्वात्मा में प्रवेश करने की क्रिया द्वारा हम वैश्विक कलापों तक को अतिक्रान्त कर जाते हैं । यह क्रिया ही पूर्ण मुक्ति या पूर्ण सत्ता का लय अथवा निर्वाण कही जाती है ।

''पर हमें ध्यान रखना चाहिए कि उच्च सत्ता की ओर उद्‌धाटन केवल मुक्ति और निर्वाण या शान्त स्थिति में ही परिसमाप्त नहीं होती । साधक केवल विराट् शान्ति, व्यापकता आदि को ही नहीं, जो शिर के ऊपर अनुभूत होती हैं और पूरे भौतिक और अतिभौतिक को अपने में समेटे रहती हैं, बल्कि वह कुछ अन्य वस्तुओं की भी अनुभूतियाँ करता है । वहा हैं सर्वोपरि शक्ति, ज्योति, परमज्ञान, विराट् आनन्द जिसमें दिव्य उल्लास और प्रसन्नता छायी रहती है । आरम्भ में ये चीजें एक आवश्यक पर अनिश्चित, शाश्वत, केवलतत्त्व की तरह लगती हैं, इनमें से किसी में भी साधक निर्वाण ले सकता है । यानी जिस तत्त्व की ओर आकृष्ट हो, उसी में अपनी सत्ता को विसर्जित कर सकता हैं । पर हम यह भी देखते हैं कि यह सत्ता परमशक्ति, परम ज्योति और आनन्दों का आनन्द लिये हुए है और इनमें से सभी शक्तियाँ

हमारे भीतर अवतरित हो सकती हैं । लय न चाह कर इन्हें उतारने का प्रयत्न यहीं से शुरू होता है ।

ये सभी, केवल शान्ति ही नहीं, नीचे उतारी जा सकती है । हालाँकि सुरक्षा की दृष्टि से सबसे पहले अचंचलता और शान्ति को उतारना ज्यादा उचित है । क्योंकि यह बाकी के अवतरण को बहुत सुरक्षित बना देती है । वरना बाहरी भौतिक प्रकृति का इतने प्रभावपूर्ण शक्ति, आनन्द और ज्योति को धारण करना असंभव हो जायेगा । ये तमाम चीजें मिलकर वह होती हैं, जिसे हम उच्चतर अध्यात्म या दिव्यचेतना कहते हैं । यही हैं अतिमानसिक चेतना का पहला स्तर ।

चैत्य केन्द्र का खुलना प्रधानतः हमें वैयक्तिक ईश्वर से जोड़ता है । यह दिव्यता को आन्तरिक ढंग सें सम्बद्ध करता है । यह मुख्यतया प्रेम और भक्ति का स्रोत है । सिर से ऊपर केन्द्र का खुलना हमें पूर्ण दिव्य से सीधे जोड़ता और हमारे भीतर दिव्य चेतना को जन्म देता है जिसे नव जन्म या आध्यात्मिक जन्म कहा जा सकता है ।

जब शान्ति खूब अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो जाती है तब यह उच्चतर या दिव्य शक्ति अवतरित होकर हमारे भीतर क्रियाशील हो जाती है । यह प्रायः सर्वप्रथम सिर में उतरती है और आन्तरिक मस्तिष्क के केन्द्रों को खोल देती है । पुनः इसका अवतरण हृदय केन्द्र में होता है और यह संवेगात्मक सत्ता को पूर्णतः मुक्त करती है; पुनः यह नाभिचक्र में उतरती है और आन्तरिक प्राणिक सत्ता को मुक्त करती है, पुनः यह मूलाधार चक्र में उतर कर शारीरिक अन्तर सत्ता को स्वतंत्र करती है । स्वतंत्रता या मुक्ति का

अर्थ परिशोधन है । वह इन स्तरों को बारी–बारी से निर्बन्ध और परिष्कृत बनाने का कार्य करती है । वह पूरी मानव प्रकृति को खंडशः लेकर उसमें परिवर्तन लाती है । जिस कमी को पूरा करना है, पूरा करती है, जिस चीज को निकालना है, निकालती है । जो गढ़ना हैं गढ़ती है । यह संयुक्त करती है, समन्वित करती है और पूरी प्रकृति को एक छन्द प्रदान करती है । वह उच्चतर चेतना को अवतरित करके यह सब कार्य करती है, जब तक कि अतिमानसिक चैतन्य का अवतरण संभव नहीं होता । यह सारा कुछ तैयार किया जाता है, तत्पर बनाया जाता है उस चैत्यपुरूष के द्वारा जो हृदय देश में सक्रिय होता है । जितना ही अधिक खुला हुआ, ऊपरी जीवनस्तर पर आकर यह चैत्यपुरूष सक्रिय होता है उतनी ही शीघ्रतापूर्ण, सुरक्षित और आसान शक्ति की प्रक्रिया हो सकती है । जितना ज्यादा प्रेम और भक्ति से हृदय भरता हैं, जितना अधिक समर्पण होता है, उतनी ही पूर्ण साधना का विकास हो पाता है । क्योंकि अवतरण और रूपान्तर का अर्थ ही है दिव्य चेतना से अधिक से अधिक सम्पर्क–सायुज्य ।

यही साधना का मौलिक विचार तत्त्व है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस साधना में हृदय चक्र और सिर के ऊपर के मानसिक चक्रों का खुलना अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि हृदय चैत्यपुरूष के लिए खुलता है और मानसिक चक्र उच्चतर चेतना के लिए । और कहना न होगा कि चैत्यपुरूष और उच्चतर चेतना का यह परस्पर सहयोग सिद्ध के लिए आवश्यक है । पहला उद्‌धाटन या खुलना हृदय में एकाग्र ध्यान से संभव होता है, एक अभीप्सा द्वारा जो ईश्वर से प्रार्थना करती है कि यहाँ अवतरित हों और चैत्यपुरूष के माध्यम से पूरी प्रकृति को निर्दिष्ट दिशा में ले चलें ।

प्रार्थना, आकांक्षा, भक्ति, प्रेम, समर्पण आदि इस प्रथम चरण की साधना के मुख्य सहायक तत्त्व हैं । इसके साथ ही साथ उस सब कुछ का, जो इस साधना में बाधक हैं, अस्वीकृत करना भी चलता रहना चाहिए । दूसरा उद्घाटन या खुलना मस्तिष्क में (भ्रूवर्मध्य) ध्यान की एकाग्रता से संभव हैं जो बाद में सिर के ऊपर ध्यान में (सूक्ष्म कारण शरीरस्थ सहस्रार चक्र में) बदल जाता हैं । यहाँ भी वैसी आकांक्षा और अभीप्सा चाहिए, एक इच्छाशक्ति ताकि दिव्य चेतना की शान्ति, शक्ति, ज्योति, ज्ञान, और आनन्द का सत्ता में अवतरण हो सके । इसमें पहले शांति उतरती हैं अथवा शांति और शक्ति साथ- साथ । कुछ को ज्योति पहले मिलती है, कुछ को आनन्द, कुछ पर अचानक ज्ञान का निर्झर बरसने लगता है । कुछ के अन्दर ऐसी 'ओपेनिंग' होती है कि वे जान जायँ कि अनन्त शान्ति, शक्ति, आनन्द आदि का रूप कैसा है । इस स्थिति में वे या तो प्रयत्न करके वहाँ तक आरोहण करते हैं या चीजें निम्नप्रकृति में अपने आप अवतरित होने लगती है । कुछ के साथ मस्तिष्क में अवतरण पहले होता है, फिर हृदय-प्रदेश, नाभि-प्रदेश और फिर समूचे शरीर में वह संचरित होता है । कुछ में अनिर्वचनीय ढंग की ऐसी 'ओपेनिंग' होती है, जिसमें अवतरण का कोई रूप नहीं दीखता, न शान्ति, न ज्योति, न व्यापकता, न शक्ति । कुछ में अचानक वैश्विक चेतना में सीधे समस्तरीय 'ओपेनिंग' होती है या सहसा व्यापक मन में प्रवेश हो जाता है कि ज्ञान का सर्वत्र प्रस्फुटन होने लगता है । जिस रूप में यह आए, इसका स्वागत करना चाहिए । क्योंकि इसके लिए कोई निर्भ्रान्त और पक्का नियम या क्रम नहीं है । पर यदि शान्ति का अवतरण नहीं हुआ है तो सावधानी की जरूरत है कि कहीं आप आनन्दातिरेक से फट न जायँ अथवा दिमाग का सन्तुलन न खो बैठें । सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है

दिव्य शक्ति का अवतरण, श्रीमाँ की शक्ति का आगमन जो चेतना के संगठन का तथा उसे आधार प्रदान करने का कार्य सुगम कर देता है ।[47]

सारे जीवन का योग

व्यक्ति की तैयारी जिस स्तर पर हो यह योग वहीं से शुरू हो सकता है । यदि आप मानसिक रूप से तैयार हैं तो ज्ञानयोग द्वारा, भावना रूप से तत्पर हैं तो कर्मयोग द्वारा आप अभ्यास आरम्भ कर सकते हैं । उद्धाटन जैसा कहा गया किसी भी स्तर पर हो सकता हैं । यह आपकी तैयारी या अभीप्सा और ईश्वरीय अनुग्रह (श्रीमाँ की कृपा) पर निर्भर है कि तैयार की अनुसार उद्धाटन कब और कैसे होता हैं । श्री अरविन्द ने 'योग समन्वय' इसलिए नहीं लिखा था कि उसके द्वारा ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, हठयोग या राजयोग अथवा यंत्र योग का गड्डमगड्ड एकत्रीकरण कर दिया जाय । योग समन्वय ऐसा तरीका नहीं हैं जिसे सब योगों के मार्ग के रूप में स्वीकार कर लिया जाता हैं । प्रत्येक योग पर उन्होंने उनकी अलग-अलग संभावनाओं को दृष्टि में रखकर हर पक्ष पर इस ढंग से विचार किया कि जाना जा सके कि किस प्रकार किसी भी योग द्वारा उद्धाटित होकर आप उनके पूर्ण योग की ओर बढ़ सकते हैं । उन्होंने वह प्रक्रिया भी समझाई है जहाँ आकर एक बिन्दु पर ये सभी मिल जाते हैं अर्थात् कोई आदमी ज्ञान से शुरू करके कैसे कर्म और भक्ति को पा लेता है और इसी प्रकार दूसरे में भी यही समन्वय घटित होता है । ''ऐसा इरादा था कि जब 'सेल्फ परफेक्शन' पूरा हो जाय तो एक ऐसा रास्ता बताया जाय जिसमें सब समन्वित हो सकें, पर वह कभी लिखा नहीं गया ।''[48]

श्री अरविन्द योग कर्म की प्रधानता स्वीकार करते हैं । कर्मशून्य जीवन भी क्या जीवन है । उन्होंने अपने एक शिष्य को लिखा, "पुराने योग में जीवन से अलग होकर ईश्वर को पाना चाहते हैं । अतः वे कहते हैं कर्म छोड़ दो । इस नये का उद्देश्य ईश्वर तक पहुँचना और वहाँ से प्राप्त पूर्णता को जीवन में उतारना है अतः हमारे लिए कर्म अनिवार्य हैं ।[49]

किन्तु पूरा जीवन योग कैसे हैं, इसे हम दूसरी दृष्टि से भी देख सकते हैं । श्री अरविन्द जिस चैत्यपुरूष की बात करते हैं, वह ईश्वरीय किरण या ज्योति है । उसके उदय के बाद मनुष्य का बौद्धिक अहं तो नष्ट हो ही जाती है, बल्कि यों कहें, उसके नष्ट होने पर ही चैत्यपुरूष का उदय होता है । इसलिए मस्तिष्क ईश्वरीय सत्य को अभिव्यक्त करने का सिर्फ यंत्र मात्र रह जाता है । उसके माध्यम से प्राप्त सारा ज्ञान दिव्य चेतना के प्रसार-प्रचार का साधन हो जाता हैं । ज्ञान योग के द्वारा निष्क्रिय ब्रह्म में लय होकर जहाँ पूर्व के ज्ञानयोगी जगत् से संन्यस्त हो जाते थे, अब यह नया योगी दिव्य चेतना वाले ब्रह्म के सक्रिय रूप से जुड़कर अपने समूचे उपलब्ध ज्ञान को मानव प्रकृति के रूपान्तरण के लिए अर्पित कर देता है । उसके ज्ञान का मुख्य प्रयोजन ईश्वरीय विधान को ठीक-ठीक समझना हो जाता है, वह, अपने आप संकुचित बुद्धि के गर्व, मात्सर्य, असूया, परनिन्दा, आत्मविस्फारण या आत्मग्लानि से अलग हो जाता है । यानी समता और स्थितप्रज्ञता उसे अपने आप लब्ध हो जाती है । वह पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक, धर्म-अधर्म, जाति-अजाति की संकुचित सीमायें तोड़कर अपने को ईश्वरीय लीला का सहज पात्र बना लेता है । ऐसे ज्ञानी की दृष्टि क्या होती है, "यदि ईश्वर ने मुझे नरक में जगह दी है, मैं नहीं जानता कि क्यों मुझे स्वर्ग की चाह करनी चाहिए । क्योंकि वही अच्छी तरह जानता है कि मेरे कल्याण के लिए क्या

उचित है ।''[50]

''भक्ति क्या है, सिर्फ भगवान् की सेवा ही न । भगवान को ठीक से समझ लो तो सेवा भी ठीक से होगी । क्योंकि बिना ज्ञान के भक्ति लंगड़ी है और बिना कर्म के वह निष्क्रिय । भक्ति मनुष्य के मन से ईश्वर से भयभीत होना दूर करती है । ईश्वर से डरना अपने को उससे दूर कर लेना है । पर उसकी क्रीड़ा में उससे डरना एक तरह का विचित्र आनन्द प्रदान करता है । ''[51] क्रीड़ में डरने का अर्थ कुछ नहीं है, सिर्फ यह कि हम जिससे प्यार करते है वह हमारे खेलने के अर्थात् कार्य करने की त्रुटि से खिन्न न हो । प्रेमास्पद की खिन्नता किस प्रेमी को दु:खी नहीं करती ? इसलिए भक्ति का अर्थ ही है सम्पूर्ण सृष्टि को ईश्वरीय लीला मानकर अपने प्रेमास्पद की प्रसन्नता के लिए उचित ढंग से उसके महारास का संगी बनना । वह हमारा स्वामी है, सखा है, प्रेमी है, प्रेमास्पद है और यदि यह मान्तया भक्त के हृदय में है तो उसके द्वारा होनेवाली किसी घटना से दु:खी होने का प्रश्न नहीं । वहाँ तो सिर्फ सुख ही सुख है । एक बार राधा-भाव का अर्थ बतात हुए श्री माँ ने कहा - ''बाँसुरी के दिव्यवादक श्री कृष्ण अंतरस्थ और विश्वव्यापक भगवान् है, उनमें परम आकर्षण-शक्ति है और राधा आत्मा है, आन्तरात्मिक व्यक्तितत्त्व है । वह बाँसुरी के वादक की पुकार का उत्तर देती है । मुझसे यह कहा गया है कि आज सायंकाल में राधा की इस चेतना पर अर्थात् जिस ढंग से एक वैयक्तिक आत्मा भगवान् की पुकार का उत्तर देती है, कुछ कहूँ । यह एकमात्र भागवत उपस्थिति के साथ तादात्म्य करके उसके प्रति अपना पूर्ण समर्पण करके समस्त वस्तुओं में आनन्द खोजने की योग्यता है ।''[52] श्री अरविन्द ने इसी तत्त्व की और लक्ष्य करके कहा था,

''यह प्रेम और स्पृहा अंत में रूप तथा रूपातीत को एक कर देती है । आत्मा तथा जड़ को अभिन्न कर देती है । इसी एकत्व को प्रेमगत भावना यहाँ अज्ञान के अंधकार में खोज रही है, और इसी को वह तब प्राप्त भी कर लेती है । वह वैयक्तिक मानवीय प्रेम स्थूल जगत् में प्रकट हुए अन्तर्यामी भगवान् के प्रेम में परिवर्तित हो जाता है ।''[53]

कर्म के द्वारा हम सकल सृष्टि में व्याप्त नारायण की अपने ढंग से सेवा करते हैं । कर्म का रहस्य बड़ा गहन है । क्या कुकर्म है क्या सुकर्म ? क्या कठिन है क्या सरल ? क्या उच्च है क्या नीचे ? ये सारी चीजें भ्रम है । क्योंकि कर्म कर्म है यदि ठीक दृष्टि से किया जाय । विश्व में केवल सुन्दर ही नहीं है, कवल सुजन ही नहीं है, वहाँ भयानकता और ध्वंस भी है । श्री अरविन्द कहते हैं कि, यदि तुम काली की उपासना नहीं करते तो कृष्ण को नहीं पा सकते । ''कौन है ऐसा, जो काली की ज्वालामयी भयंकर उपस्थिति को झेल सके ? केवल वह जिसे कृष्ण ने पूर्णतः अंगीकृत कर लिया है ।''[54] काली और कृष्ण का यह सम्न्वय ही कर्म का रहस्य है । भयमुक्ति योग-साधना की बहुत जरूरी शर्त है । एक बार श्री अरविन्द से पूछा गया कि भय से मुक्ति कैसे मिल सकती है तो उन्होंने कहा, ''मेरा उदाहरण तो यह है कि जब भी मुझे भय लगा, मैं अदबदा कर वहीं काम करता जिससे भय लगता, मृत्यु तक के खतरे को उठाते हुए और अचानक देखा कि मैं भयमुक्त हूँ ।''[55] भयमुक्त वही हो सकता है जो अनन्य रूप से अपने अहं को छोड़कर कार्य करे । श्री अरविन्द ने बार-बार कहा है कि अहं कर्म को पतित करता है । ''कर्म योग का पहला चरण (किसी भी योग का) है धीरे-धीरे अहं को कम करना और अन्ततः उसका समूलोत्पाटन

। इस अहं को कर्म के केन्द्रीय बिन्दु से हटाना ही होगा ।''[56]

श्री अरविन्द ऐसे उत्तर योगी थे, जो बनी–बनाई परिभाषाओं को स्वीकार कर लेने को तैयार नहीं थे । वे इसीलिए निरन्तर विकसनशील दिव्य चेतना के पूर्ण योग की बात करते है ताकि यह दुनिया बदल सके । वे कहते है कि, ''गुरूरूपी ईश्वर की शिष्यता, पितारूपी ईश्वर का पुत्रत्व, मातारूपी ईश्वर का वात्सल्य, ईश्वरीय सखा के हाथों में हाथ डाले रहने की प्रसन्नता, अपने कैशोर मित्र के साथ खेलकूद और हँसी–खुशी, ईश्वर की प्रसन्नता भरी सेवा, अपनी दिव्य प्रेमिका का प्रेम, ये सात मानवीय शरीर के सौन्दर्य है । क्या तुम इन्हें एक में मिलाकर सतरंगी इन्द्रधनुष नहीं बना सकते ? तभी तुम्हें स्वर्ग की जरूरत नहीं होगी, तभी तुम अद्वैतवादी की मुक्ति को अतिक्रान्त कर पाओगे ।''[57] पहला सौन्दर्य भारतीय साधन का है जिसमें गुरू को ईश्वर माना गया, दूसरा ईसाई धर्म का है जहाँ पैगम्बर ईश्वर का पुत्र था, तीसरी शक्ति–साधना है जहाँ ईश्वर दुर्गा है, चौथी वैष्णव सख्य–भक्ति है जहाँ ईश्वर सखा है, पाँचवी लीलावादी प्रेम है जहाँ ईश्वर प्रेमास्पद है, छठी दास्यभक्ति है जहाँ ईश्वर स्वामी है, सातवीं सूफी साधना है जहाँ ईश्वर प्रेमिका है, यह गौड़ीय सहजिया सम्प्रदाय की रामी और राधा भी है । श्री अरविन्द कहते हैं कि ईश्वर सब है, इन सातों रंगों का इन्द्रधनुष है, और इसी इन्द्रधनुषी छाया में सच्ची आध्यात्मिकता विकसित होती है । इसीलिए अरविन्द योग की ओर ऐसे निर्बल को नहीं आना चाहिए जो इन सातों में से किसी भी एक के अतिरेक को ही पूर्णता मानता हो या उसी के द्वारा अपना सन्तुलन खो बैठा हो । वे पृथ्वी पर अपने पूर्ण योग द्वारा ए क ऐसा स्वर्ग लाना चाहते है जहाँ सारी मानव जाति ऐसे लड़के और

लड़कियों में बदल जायेगी, "जहाँ ईश्वर कृष्ण और काली के रूप में उपस्थित होगा । सर्वाधिक प्रसन्न युवक और सर्वशक्तिमान् लड़की के रूप में । दोनों के साथ-साथ नन्दन वन में खेलेंगे । अदन का बगीचा भी बुरा नहीं था, पर आदम और हौवा काफी बड़े हो गये थे (परिपक्व), उनका ईश्वर बुड्ढा हो गया था ऐसा सख्त और गंभीर कि उसने सर्प का उपहार देने से अपने को रोका नहीं"[58]

प्रकाश का पथ और अंधकार पर विजय

यह संक्षेप में श्री अरविन्द का योग समन्वय है पूरे जीवन को योग में बदलने की प्रक्रिया है । पर इसी के साथ-साथ मैं इतना और कह देना चाहता हूँ कि यह कोई बच्चों का खेल नहीं है । इस रास्ते में खन्दकें, खाइयाँ हैं । परेशानियाँ हैं । स्वयं श्री अरविन्द को भी इनका मुकाबला करना पड़ा था ।

"मानव व्यापार बहुत कठिन समस्या है । मेरा अपना अनुभव ही लो । मुझे नीरवता और शान्ति, और निर्वाण के अनुभव हुए; जिन्होंने फिर कभी मुझे छोड़ा नहीं, पर इन शान्ति और समता की अपने अस्तित्त्व के प्रत्येक हिस्से में स्थापित करने के लिए मुझे लगातार प्रयत्न करना पड़ा । तुम जानते हो समता क्या है ? समता वह भाव है जिसे कोई भी वस्तु किसी स्थिति में आन्दोलित न कर सके । पिछले अगस्त तक मैं सफल रहा । यह दुर्धटना शायद मेरे समता भाव को परीक्षित करने की अन्तिम घटना है । इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति को धीरे-धीरे कार्य करते चलना होगा, जब तक वह अवचेतन में पड़े इसके बीज को उखाड़ न फेंके ।"[59]

हालाँकि उन्होंने अपनी चालीस वर्ष की साधना में निरन्तर यह प्रयत्न किया कि यह रास्ता बाद के यात्रिकों के लिए सूर्याभिमुख–ज्योतिपथ (Sunlit Path) बन जाए । उन्होंने अनेकानेक पत्रों में, वार्ताओं में साधकों से कहा कि जितनी कठिनाई मुझे और श्रीमाँ को उठानी पड़ी है, वह अब दूसरों को उठानी नहीं पड़ेगी ।

उन्होंने बड़े आश्वासन के साथ कहा – "सच पूछो तो भविष्य में दूसरों के लिए सुगमता का मार्ग निश्चित करने के लिए ही हमने यह भार ढ ोया है । इसी उद्देश्य से श्रीमाँ ने एक बार भगवान् से प्रार्थना की थी कि इस पथ के लिये जो भी कठिनाइयाँ, विपत्तियाँ, दुःख कष्ट आवश्यक हों, वे दूसरों के बनाय मुझ पर ही लाद दिये जायँ । यह अभीष्ट उन्हें वर्षों के दैनिक तथा भीषण संघर्षो के परिणामस्वरूप इस हद तक प्रदान किया गया है कि जो लोग उन पर पूर्ण और सच्चा भरोसा रखते हैं, वे ज्योतिर्मय मार्ग में चलने में समर्थ होते हैं ।"[60]

उन्होंने नाना साधकों को यह आश्वासन दिया कि यदि तुम धैर्यपूर्वक और स्वभाव में बिना किसी मौलिक दुष्टता के प्रयत्नशील रहोगे तो नील चाँद निश्चय ही तुम्हारे आकाश में खिलेगा । "मैं विश्वास करता हूँ कि ए क नीला चन्द्रमा हरेक के आकाश में खिलेगा ।"[61] परन्तु श्री अरविन्द बहुत स्पष्ट कहना चाहते है कि यदि तुम्हारे भीतर से अहंकार दूर नहीं हुआ तो तुम्हें कोई भी मुश्किलों से बचा नहीं सकता । यह अहंकार उनकी साधना में सबसे बड़े शैतान के रूप में माना गया है । सभी बुराइयों की जड़ और दुरन्त । इसे धैर्यपूवर्क हटाने का भी उन्होंने रास्ता बताया है ।

"अहंभाव का पूर्ण निराकरण आसान चीज नहीं है । जब तुम सोचते

हो कि यह पूर्णतः नष्ट हो चुका है, सबसे ज्यादा जरूरी है मानसिक और प्राणिक अहंभाव का निराकरण । दूसरे, शारीरिक और अवचेतन निहित अंह का कोई खास महत्त्व नहीं है । वे अवकाश पाकर ठीक किये जा सकते हैं ।''[62]

सावित्री

श्री अरविन्द के लिए कविता उसी दिन मांत्रिक या ऋचा–माध्यम बन गयी, जिस दिन उन्होंने इस जगत् से परे के 'कुछ' को, जिसके होने पर ही जगत् का होना होता है, देखा और अनुभव किया । अनुभूति की प्रामाणिकता के लिए यह आवश्यक था कि वे इस प्रकार के माध्यम को उपलब्ध करें, जो उसे ज्यों का त्यों अभिव्यक्त कर सके । उसके लिए उन्हें भगीरथ प्रयत्न करने पड़े ।

खोद रहा मैं त्रासभरे इस कीच बीच में
लम्बी गहरी एक डगर ।
उतरे जिससे स्वर्णनदी का गीत मनोहर
मृत्यु हीन ज्वाला का घर ।''[64]

श्री अरविन्द के योग की शर्त ही है, पाताल की यात्रा । कीचड़ के बीच निरन्तर गहरे उतर कर मधुरिमा के स्रोत को पाना । रूरू ने इसी पाताल की यात्रा की । पुरूरवा ने इसी अन्ध तमस् को चीरने की कोशिश की । पर श्री अरविन्द पाताल और परमधाम को जोड़ना चाहते है । वे इनके बीच संतरंगी सेतु बनाने को निकले थे । यहखाला का नहीं ज्वाला का घर है,

इसीलिए इसके बीच रहना आसान नहीं और उससे भी अधिक कठिन है, इसके बीच समता का भाव बनाकर दुःखातीत होना । सत्य को देखने की लगातार साधना और उसे निरावृत्त अभिव्यक्त करने की शोशिश । 'सावित्री' इसी प्रयत्न का फल है । वह मांत्रिक कविता का महाकाव्य है, साधना का स्तवराज है, और पूर्णयोग का द्वादश कर्पूरवर्तिका महास्तोत्र है, जिसके विषय में श्री माँ ने लिखा है – 'सावित्री' पढ़ने का अर्थ है योगाभ्यास । इसके लिए आध्यात्मिक एकाग्रता चाहिए । किसी को भी यहाँ वह सब कुछ मिलेगा, जो ईश्वर को पाने के लिए जरूरी होता है । योग का प्रत्येक चरण यहाँ अंकित है । यही नहीं, इसमें अन्य योगों का रहस्य भी समाहित है । वस्तुतः यदि कोई एक–एक छन्द में व्यक्त सत्य का अनुसरण करे, तो वह निश्चय ही अन्त में पूर्ण रूपान्तर के द्वारा अतिमानसिक सिद्धि को प्राप्त कर सकता है । यह एक ऐसा सच्चा निर्देशक है, जो कभी भी साधक का साथ नहीं छोड़ता, उसकी सहायता हमेशा प्राप्त होती है, जो इस पथ पर चलना चाहता है । 'सावित्री' का प्रत्येक छन्द मन्त्रदर्शन है, जो उस सब कुछ को अतिक्रान्त कर जाता है जिसे अब तक मनुष्य ने ज्ञान के रूप में प्राप्त किया है । और मैं जोर देकर कहना चाहती हूँ, इसमें शब्द इस ढ ंग से नियोजित किये गये है किं उनसे उत्पन्न पवित्र लयात्मकता तुम्हें वहाँ ले जाती है, जो वाक् का उद्‌गम है अर्थात् ओऽम् ।''[65]

यह है 'सावित्री' का माहात्म्य । यह सब कुछ उनके लिए है, जो साधना के पथिक है । कविता के पाठकों के लिए 'सावित्री' का अपना अनूठा महत्त्व है । इसमें महाकाव्य की नवीन से नवीन बिम्बयोजना और शैली–शिल्प का अद्‌भुत संयोजन है ।

'सावित्री' 23,813 पंक्तियों में लिखा हुआ वैश्विक चेतना का महाकाव्य है । सिराक्यूज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रेमाँड एफ. पाइपर (Raymond Frank Piper) ने लिखा है कि मुक्तवृत्त में लिखा हुआ यह काव्य संभवतः विश्व की सभी भाषाओं में लिखे हुए काव्यों में सर्वश्रेष्ठ है ।'[66]

श्री अरविन्द की कविताओं को समझने और उनका रसास्वादन करने के लिए काव्य को, विश्व की विभिन्न भाषाओं के काव्य के सर्वश्रेष्ठ को समझने की एक संस्कारिता अत्यन्त आवश्यक है । वे वाल्मीकि को सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं, कालिदास को कलात्मकता का प्रतीक । होमर और वर्जिल उनके लिए सहज बोधगम्य थे, आत्मीय थे । शेक्सपियर को उन्होंने आत्मसात् कर लिया था । उन्होंने आधुनिक अंग्रेजी कविता की उस घारा का स्पष्ट संकेत दिया है, जो उनकी मांत्रिक कविता का आधार बनी । उन्होंने लिखा है – ''वाल्ट ह्विटमैन और उसके उत्तराधिकारियों की कविता जीवन की कविता है, किन्तु यह जीवन मनुष्य की आत्मा तथा मानवता की सामूहिक अन्तरात्मा की महत्ता, तथा बौद्धिक अन्तर्ज्ञान के द्वारा विस्तारित, प्रकाशित और उन्नत है । इसी मानवता की सूक्ष्मतम उच्चता पर स्थित अन्तरिक्ष में, जो अब भी अप्राप्य है, टैगोर की कविता अपनी उड़ान भरती है । यह भी आध्यात्मिकता के पूर्ण प्रकाश में नहीं जा सकी; बल्कि एक ए ेसे वायुमंडल में तैरती रही, जिसमें अपने अन्वेषण से उसने सूक्ष्मता और मृदुता का एक मनोमूलक आध्यात्मिक दिव्यलोक पा लिया था, जिसमें परासत्ता की झलकियाँ दिखाई पड़ती हैं । उनकी कविता की विस्तृत लोकप्रियता इस बात का सबूत है कि आज के मनुष्य का मन किस दिशा की चाहत से भरा है ।''[67]

स्पष्ट ही श्री अरविन्द रवीन्द्रनाथ के काव्य को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख मानते हैं और यह प्रयत्न करने के पक्ष में दीखते हैं कि अगले कदम के रूप में आध्यात्मिक काव्य को आना चाहिए । सत्य तो यह है कि श्री अरविन्द को आश्चर्यकारी रूप में विश्व की कई समृद्धतम भाषाओं का ज्ञान होने से, उसमें लिखे हुए महत्तम और समृद्ध साहित्य का बड़ा सूक्ष्म स्तरीय परिचय था । संस्कृत, बांग्ला, फ्रांसीसी, ग्रीक, लैटिन और अंग्रेजी का पूर्ण ज्ञान उनके लिए एक अभूतपूर्व और उर्वर आधार साबित हुआ । चीली की विश्वकवयित्री मदाम ग्रैब्रील मिस्त्राल ने ठीक ही लिखा है – ''उनकी आश्चर्यकारी विशेषता वह अभिव्यक्ति–क्षमता है, जो निर्दोष पारदर्शी हीरे की तरह सुन्दर और स्पष्ट है, जिसके कारण कोई काव्यशास्त्र से अपरिचित व्यक्ति भी कठिनाई में नहीं फँसता । विश्व की छह भाषाओं के ज्ञान ने पांडिचेरी के गुरूदेव को समन्वय की अद्‌भुत क्षमता, सब प्रकार के अवरोधों से मुक्त स्पष्टता तथा एक ऐसा सौन्दर्य प्रदान किया है, जो जादुई लोक की सीमाएँ छू लेता है । हमारे सामने उन्होंने ऐसा गद्य प्रस्तुत किया, जो जर्मन कालजयी लेखक को योरोपीय रहस्यवाद के मूल स्रोत एखर्ट (Eckhart) के समानान्तर है । ये उच्च तरंगें हमारे सामने हैं और अब हम जान गये हैं कि विश्व में एक ऐसी भी जगह है, जहाँ संस्कृति ने अपनी प्रतिष्ठा भरी आवाज पा ली है, जहाँ एक व्यक्ति के भीतर अतिमानसिक जीवन, और उसको व्यक्त करने की अद्‌भुत शैली प्राप्त है, जो अपने सुन्दर और संयत क्लैसिक गद्य को आत्मा के कार्य के लिए साधन के रूप में इस्तेमाल करता है ।''[68]

मिस्त्राल की ये पंक्तियाँ संभवतः एक महान् प्रतिभाशालिनी काव्यस्रष्टा

की ओर से अभिव्यक्त सच्ची किन्तु आज के विश्व में विरल ईमानदारी से भरी श्रद्धांजलि की प्रतीक है ।

श्री अरविन्द का महाकाव्य सृष्टि के पहले विद्यमान् शाश्वत तमिस्र अथवा जड़ तमस् के अनुभूतिपरक वर्णन से शुरू होता है । ऋग्वैदिक ऋषि इस स्थिति को 'तमासीत्तमसागूढमग्रे' अर्थात् 'गूढ़' तमस् से आच्छन्न तमस्' कहा करते थे, किन्तु अरविन्द का यह मांत्रिक का काव्य इस स्थिति को अपनी प्रतीति और अन्तर्दर्शन के आधार पर बहुत स्पष्ट करके उपस्थित करता है । तमस् की नाना मुद्राओं का स्पष्टीकरण किया गया है । पूरा ब्रह्मांड अशेष तमस् में डूबा है । यह सही है कि देवताओं का, जो सृष्टि के विभिन्न स्तरों का शासन और नियमन करते हैं, जागरणकाल आनेवाला था, शाश्वत उषा के प्रतीक का सूर्य उदित होने को था किन्तु प्रकाशदायी रास्ता तब जड़ तमस् से ढँका हुआ था । महारात्रि, शाश्वत के मंदिर में, जो बिल्कुल प्रकाशहीन था, इस तरह लेटी थी कि देवताओं के जागने और सक्रिय होने के सभी रास्ते रूँध दिये थे ।

'अप्रकेत', चिन्हों से रहित यह सूक्ष्म कारण सलिल सर्वत्र तमस् के रूप में विद्यमान था । तमासीत्तमसा गूढ़मग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् । ऋ.10/126/3

महारात्रि का मानस, संविराट् आच्छादक
उस दीपहीन मंदिर में, शाश्वत के
धनकुहाच्छन्न दुर्भेध तमस् के
महामौन की सीमा पर विस्तृत हो पड़ा हुआ था ।

एक अमनस्क चक्षुहीन शून्य का महागर्त सारे ब्रह्माण्ड को अपने में समेटे हुए था । कवि को लगता है कि वह तमस् और कुछ नहीं है बल्कि विगत सृष्टि की वह सीमाहीन निष्फल ऊर्जा ही है, जो जन्म और मरण की पहेली को सुलझाने में असफल थक कर चूर और श्लथ होकर चतुर्दिक् फैल गई है । उस कुहरे और अंधकार के बीच वह विस्मृत सत्ता वैसा ही एक अभिशप्त विश्व पुनः रचने की प्रक्रिया में कुछ न कर पाती हुई सी भटक रही है ।

उस रूपरहित चेतना की यह हल्की इच्छा अन्धतमस् की झिल्ली को तोड़ने लगती है । यही ईश्वरीय 'तपसस्तन्महिना' यानी सृष्टि को उत्पन्न करने की हल्की इच्छा है । इसे ही ऋषि आदि इच्छा अथवा 'एकोऽहं बहुस्यामः' का बोध कहते हैं । यही 'कारण जलधि' है, जिसमें से सृष्टि का नाभिकमल उत्पन्न होता है । इस बोध का, जो बोध न होकर पूर्वज्ञान जैसी कोई चीज था, परिणाम हुआ, यानी अचानक उस गूँगी गहराई के ऊपर किसी अनजान देवता का चक्षु झलक उठा । यह प्रकाशदायी चक्षु आदि सूर्य का टोह लगाने निकला हुआ बालचर हो मानो । लग रहा था कि पुनःसृष्टि की प्रक्रिया शुरू करने के लिए कोई महाशक्ति हस्तक्षेप करने लगी है । उसका वह सन्देश, वह संकेत दिग्भ्रमित प्रकृति के महावक्ष को अधिकृत करके, उसको पुनः सृष्टि के लिए तैयार होने को बाध्य करता हुआ-सा उसी शून्य में, बो दिया गया ।

महाकाल के वक्षःस्थल में स्मृति काँपी
मानो जैसे बहुत काल की मरी आत्मा जीवित हो उठी
पर विनाश जो प्रत्येक पतन के बाद उभरता

भूतकाल के सभी क्रिया-कलापों से सज्जित मंचों को
तोड़ चुका था और नष्ट को फिर से निर्मित करना होगा
अतः पुराकाल के अनुभव सारे फिर प्रयत्न कर उठे
सब कुछ हो सकता है वहाँ,
जहाँ प्रभु के हाथों का हल्का सा स्पर्श मिले । (१/१)

श्री अरविन्द सृष्टि की प्रक्रिया का, जो सदा से बड़े क्रान्तदर्शी के लिए भी अबूझ पहेली रही है , अत्यन्त स्पष्ट, नाना, अनजान और अदृष्ट रंगों में रंजित अद्‌भुत और उद्‌भासक वर्णन उपस्थित करते है । किस प्रकार अन्धतमस् टूटा ? कैसे देवपथ पुनः उन्मुक्त हुआ ? कैसे वनस्पति जगत् उत्पन्न हुआ ? किस प्रकार चिरादिम पशुलोक से विकसित होकर सृष्टि के मंच पर मनुष्य ने प्रवेश किया, किस प्रकार वह मानवीय ज्ञान के उस कुहाच्छत्र आरंभिक काल में श्रमिक के रूप में अपनी मामूली शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से संघर्ष करता हुआ अपने अस्तित्त्व की रक्षा में लगा हुआ था ?

इसी प्रकार के एक कबीले के भीतर सावित्री ने जन्म लिया । सावित्री का जन्म सामान्य नहीं है । वह मानवीय काया में ईश्वरीय सत्ता की प्रतिनिधि है, इसीलिए उसे सभी सीमाओं से, जो यथार्थ होतीं, हटाकर कवि उसे तांत्रिक स्तर पर ले जाता है । सावित्री अपने दैवीस्थान से पृथ्वी की ओर चलती है -

शाश्वत स्थिर और परिवतन की राजदूतिका
देवी सर्वज्ञा वह झुकी सहारा लिये हुए विस्तार बंध का

जो घेरे था नियति–बद्ध यात्रायें करते नक्षत्रों को ।
देखा उसने दिक् प्रान्तर प्रस्तुत था उसके चरणों के हित
एक बार वह तिरछे मुड़ी देखने अपना सूरज जो आवृत था
रूकी रही सोचती हुई कुछ, और चल पड़ी ।

स्पष्ट ही दिव्य लोकमंडल से पृथ्वी की ओर चलते हुए क्षण के लिए सावित्री भी ठिठक गयी । इस कर्दमपूर्ण पृथ्वी पर, जहाँ अविश्वास, प्रवंचना, छल–छद्म और असत्य का भयानक अंधकार छाया हुआ है, आने के पहले सावित्री का भी एक क्षण के लिए असमंजस में पड़ जाना अस्वाभाविक नहीं है :

यहाँ जहाँ अज्ञान हमारा
अर्धदीप्त सा महागर्त के तट पर चलता
भ्रान्त जगत् के मूकवक्ष पर
यहाँ जहाँ कोई अपने आगे का एक कदम भी नहीं जानता
और सत्य कंटकित पृष्ट पर सन्देहों के आसीन जहाँ है ।
श्रम के त्रासद परायत्त इस क्रिया क्षेत्र में
जो कि किसी व्यापक उदासीन के नीचे विवश पड़ा है ।

ऐसे ही विश्व में, जो अपने उद्धारक सन्देशवाहकों की निरन्तर उपेक्षा करता है, वे तो मुकुट पहनाने आते हैं, और बदले में कंटकों का उपहार पाते हैं, क्रूस पर लटकाये जाते हैं । वह आयी थी, सिर्फ मानव को दुःखों से मुक्त कराने, सिर्फ उनकी सहायता करने । सावित्री के अवतरण का अध्याय बड़े नाटकीय ढंग से अन्त में यह सूचना देता है कि वह वही दिन था, जिस

दिन सत्यवान् मरने वाला था ।

जाहिर है कि पाठक के मन में यह जिज्ञासा पैदा कर देने के बाद कि सावित्री दुःखी मानवता के उद्धार के लिए आयी थी और विश्व की निर्मम नियति का स्वयं शिकार हो गयी, कवि को यह बताना जरूरी लगा कि सावित्री क्यों और कैसे आयी ?

एकाकी दिल की डगर पर चलता हुआ
जहाँ इन्तहा तन्हाई का नर्तन ही देता आश्वासन था
अथवा लगता था ऐसा कहीं दूर जाते हुए कारवाँ की
टुन-टुन आवाजें उभरती हों ।

अश्वपति के चतुर्दिक् फैले वातावरण और एक से एक उच्च चेतना के स्तरों पर चलती उसकी यात्रा इतनी अद्‌भुत ढंग से वर्णित है, चित्रित है, कि नितान्त सूक्ष्म अनिर्वचनीय शून्यता के प्रदेशों की कवि ने अपनी सम्पूर्ण सच्ची रहस् अनुभूतियों द्वारा साकार कर दिया है । उसने इन्हें इस ढंग से ए ेसे उपस्थित किया है कि साधना के इस संघर्ष, तड़प, मौन, घूर्णन, और अप्रतिहत अवस्था के आगे इस विश्व के तमाम दृश्य और संघर्ष नितान्त फीके और नकली लगते है । अंत में अज्ञेय को ज्ञेय बनाने की अपनी महत् यात्रा के दौरान अश्वपति भगवती माता के लोकों में प्रवेश करता है । क्योंकि वह जानता है कि अपने दुरन्त संयम और तपश्चरण से उसने जिस चोटी को अतिक्रान्त किया है, वह सबसे ऊँचा शिखर नहीं है । इसलिए वह सृष्टि के उस उद्‌गम की ओर चलता है क्योंकि उसके रहस्य को जानकर ही वह पृथ्वी पर आह्लाद और मौन में, मोह और सौन्दर्य में, अर्थात् तमाम

विरोधमूलक तत्त्वों के बीच समन्वय पा सकने में समर्थ होगा । यही यात्रा उसे "आत्मधाम और नई सृष्टि के रहस्य लोक" तक पहुँचाती है । उसने विचारहीन विचारों के रहस्य के भीतर से उठने वाले गुह्य इशारों पर अपने को केन्द्रित किया और अग्रिम आरोहण पर चल पड़ा । इस विराट् संकल्प में मानों उसके भीतर सोये देवता का स्पन्दन जग उठा हो । ज्ञानदीप्त सत्य के लोक की देहरी सामने थी ।

एक साथ अपने सूर्यों से उद्‌भासित
त्रिपुर स्वर्ग हो उठे प्रज्ज्वलित
रहस्‌गर्भ में सोया कृत वह त्रास भरा
सहसा हो उठा अनावृत्त ।

इससे भी आगे वह अनजान महत्ता के क्षेत्र को आयत्त करता बढ़ता गया और तब इस लम्बी और विराट् संघर्ष–साधना का अन्त करीब आया । सावित्री की तीसरी पुस्तक का चौथा सर्ग 'दर्शन और वरदान' का सर्ग बन गया ।

सहसा लगी सुनाई पड़ने उस अनन्त शून्य में अतिपावन
पैरों की ध्वनि, एकाकीपन की गहराई को चीरती हुई मनभावन
एक परस ने उसके शरीर की शिरा–शिरा कर दी झंकृत
सीमित ह्दय लगा भेंटने एक ह्दय उल्लसित असीमित ।
नीरवता टूटी, आत्मा और शरीर आनन्दातिरेक से होते पुलकित
मन की गति औ' जीवन सारा हो उठा सुघा वर्षण से प्लावित ।
शक्तिपुत्र, ओ सृष्टि–शिखर के यात्री, ओ आरोहण तत्पर ।

तू एकाकी, साथ न कोई, शावत के इस स्वर्ण–द्वार पर ?

जीत चुका जो सब तेरा है, पर इससे आगे बढ़ने की कोशिश मत कर

।

आविर्भाव सत्य का समयपूर्व पर देगा पृथ्वी का अस्तित्त्व विकल

यह अमेय अवतरण सहन करने योग्य नहीं है अमी मनुज दुर्बल ।[69]

अश्वपति मर्माहत सा खड़ा रह जाता है । उसे लगता है कि क्या वार्षों की साधना और तपश्चर्या से उसने जो किया, वह निष्फल जायेगा ? फिर भी वह विश्वास नहीं हारता । भागवती महाशक्ति ने सारे मानवीय विकास की त्रुटियाँ बताकर उसे पहले से अधिक समृद्ध कर दिया है । वह अब अपने और अपने सरीखे मनुष्यों की सारी दुर्बलताएँ स्वयं आद्याशक्ति के द्वारा जानकर ही तुष्ट हैं । वह जानता है कि मानवीय ज्ञान के ये तम्बू निहायत क्षुद्र और अस्थायी है । वह जानता है कि जीवन का पंक बहुत गहरा और अतलव्यापी है । मनुष्य जो है, वह सामने है । ईश्वरीय कृपा और दैव सहायता के बिना वह क्या कर पायेगा ? अश्वपति अपने लिए कुछ नहीं चाहता । किन्तु मनुष्य जाति के लिए किए गए स्वेद और रक्त को एकाकार करके की गई अपनी इस साधना को निष्फल होते वह नहीं देख सकता । अतः वह अन्तिम प्रयत्न के लिए तैयार होता है और महाशक्ति से प्रार्थना करता है ।

ओ ऋतावरी अन्तरतम में सूर्य छिपाये,

नाना स्वर्गों में बन्द, ज्योति की गहराई को

भास्वर करने वाली, वाचा पश्यन्ती, ओ अमोघ ज्ञानेश्वरि,
जगज्जननि, प्रज्ञाशोभा, ओ त्रिपुरसुन्दरी
शाश्वत कलाकार की कौल वधू ओ
अब न विलम कर रख दे कर तू स्वर्ण यष्टि पर महाकाल की
जो लगता है कर न रहा साहस कि खोल दे
हृदय देश वह शाश्वत प्रभु का ।
अरे विश्व की दीप्तानन्द निर्झरी
अपने रचे विश्व से मुक्ते, ओ अप्राप्य
लोकों की निर्बन्ध शक्ति तू, अन्तरतम की ओ सुवासिनी
महालास तू । तुझे ढूँढ कर बाहर-बाहर मानव हारा
हे रहस्यमयि संगीते, तु वेदवाक् सी सदा प्रतीकित
अपनी शुभ्र दया को आकृति देकर पृथ्वी पर अवतरित करो
तेरा ही कोई एक रूप आ जाये जग का समुद्धार करने को
भर दे तेरा एकाकी क्षण इस अनन्त को ।[70]

अश्वपति की प्रार्थना निष्फल नहीं गई । राजराजेश्वरी महाशक्ति ललिता त्रिपुरा सुन्दरी ने या कह लें भागवती महाशक्ति ने मानव जाति के उस अग्रगण्य यात्री की पूर्ण आश्वस्त करते हुए कहा –

'निस्सीम व्यापक एक मन जो विश्व सारा बाँध लेता
हृदय मधुरिम और दोलित शक्ति ईप्सित माप लेता
देवगण की भावनाओं से द्रवित हो, "जायगी" ।

अश्वपति इस वरदान को सुनकर परम प्रसन्न हुआ । महाशक्ति अपने इस प्रतिनिधि का व्यक्तितत्त्व और लक्षण बताती रहीं । उसकी शक्तियों का परिचय देती रहीं, जिनके समन्वय से वह इस पृथ्वी का रूपान्तरण कर सकेंगी ।

ताकतें सब उच्चताएँ निहित होंगी, एक सुन्दरता
निसर्गीं यहाँ पृथ्वी पर चलेगी, बादलों के पाश जैसे,
कुन्तलों में सदा उसके खुशी सोयेगी । और उसकी देह
मानों कि जैसे घरू तरू पर प्यार का पंछी मनोहर
पंख अपने फड़कफड़ायेगा । दुःख-हीना वस्तुओं से
जागता संगीत जो उसको सजायेगा ।
पूर्णता की बीन स्वर उसका सँवारेगी
और उसकी खिलखिलाती हँसी में स्वर्ग की स्रोतस्विनी
कलनाद करती ही रहेगी । अधर वे मधुचक्र
होंगे परमविभु के और उसकी छलछलाती खुशी
दैवी अंग औ' प्रत्यंग में जो कि स्वर्णिम पात्र जैसे है
बसेगी, और देवनन्दन के प्रफुल्लित पुष्प जैसे वक्ष उसके,
मौन हिय में धरेगी वह परम गरिमा ज्ञान की
बल असीमित साथ होगा खड्ग जैसे
युद्धकर्ता की निरन्तर । और उसके चक्षुओं से
शाश्वती खुशियाँ निहारेंगी, अपरिमित
मृत्यु के भय-क्रान्त क्षण में बीज बोया जायेगा ।

स्वर्ग की टहनी मनुज की भूमि में आरोपिता होगी
प्रकृति अपने मर्त्य चरणों को उलँध कर शान्त
होगी । नियति उसकी अडिग इच्छा-शक्ति के
आगे बदलने को विवश होगी ।[71]

और सावित्री पृथ्वी पर अवतरित हो गयी । महाभारत श्री सावित्री ने अकृतकार्य किया अर्थात् यमपाश से अपने पति के प्राण मुक्त कराये तो आश्चर्य से गौतम ऋषि ने पूछा था -

श्रोतुमिच्छामि सावित्रि त्वं ! हि वेत्थ वरावरम्
त्वां हि जानामि सावित्रि ! सावित्रीमिव तेजसा

सिर्फ एक ऋषि को यह भासमान् हुआ था कि सावित्री सामान्य स्त्री नहीं, देवी सावित्री ही है और श्री अरविन्द ने पहली बार यह प्रकट किया कि यह सम्पूर्ण मुमूर्षु मानवजाति रूपी सत्यवान् को पुनरूज्जीवित करने के लिए उनकी साधना के वरदान रूप में प्राप्त हुई । सावित्री और कोई नहीं श्रीमाँ है ।

'सावित्री' महाकाव्य के अगले भाग काफी आसान लगेंगे । यहाँ आकर पाठक चैन की साँस ले सकता है क्योंकि ये भाग मानवीय अनुभूतियों के चिरपरिचित चढ़ाव-उतार से भरे हैं । चौथी पुस्तक में सावित्री का जन्म, विकास, पति की खोज, सत्यवान् से उसकी भेंट आदि का वर्णन है, जो काफी वृत्तात्मक होने से कथासूत्र की सघनता के कारण बोधगम्य हो गया है । सावित्री और सत्यवान् के मिलन और प्रेम का अद्‌भुत वर्णन किस

पाठक को मुग्ध नहीं कर लेता । प्रेम का परिपाश्र्व ही अविस्मरणीय है ।

नीचे फैला था जंगल वह मरकत मणि सा स्वप्न मगन
क्षितिज चमकता लगता था जैसे सोया एकाकीपन
घुँघले नाले बहते थे मोती–माला के ज्यों सूत्र सघन ।
नि:श्वास भटकती थी प्रसन्न जंगली पत्तियों के दल में
शान्त, सुगंधित धीमे–धीमे आनन्द लपेटे पटतल में
बेहोश लुढ़कती हवा वहाँ फूल गंध से हो पागल
श्वेत हंस चुपचाप खड़ा था चंचु उठाये शुभ्र विमल
शुक मयूर थे रत्निम करते वृक्ष और वसुधातल
आनन्द सिन्धु में तिरती सी सावित्री आई उपवन में
प्रेम गीत गुंजरित हो रहे व्याप रहे थे कण कण में ।[72]

सावित्री और सत्यवान् के प्रेम में रूरू या पुरूरवा का मादक उच्छवास नहीं फूटता क्योंकि सावित्री को निरन्तर मालूम था कि नियति उसके ऊपर वज्रपात करने ही वाली है इसलिए नियत स्थान का यह मिलन नियति की पूर्व सूचना से आक्रान्त है । 'सावित्री' की छठीं पुस्तक इस नियति का ही विवेचन है ।

मृत सत्यवान् को पुनरूर्जीवित करने के लिए सावित्री की योगसाधना ही कवि का मूल विषय है, इसीलिए उसका पूरा ध्यान इसी ओर केन्द्रित रहा है । 'सावित्री' महाकाव्य के आरंभ में महारात्रि की तमिस्रा से ही सावित्री का अवतरण दिखाया गया था । मृत्यु की महारात्रि में पुनः प्रवेश उसकी नियति दिखाई गई है । यह प्रवेश जरूरी है क्योंकि वह शाश्वत रात्रि का

रहस्य जाने बिना प्रकाश का सूर्य ला भी कैसे सकती है ? महाकाव्य का तीसरा खण्ड इसी शाश्वतरात्रि के वर्णन से शुरू होता है । नारद ने कहा था – "नियति कुछ नहीं, सत्य की ही एक क्रिया है, जिसे सामान्य व्यक्ति देख नहीं पाता । वह दिव्यशक्ति की पूर्वनिश्चित घटना के अलावा और क्या है ?" रानीने पूछा था कि "क्या मानवात्मा इस नियति से छुटकारा नहीं पा सकती है ?" सावित्री की माता को नारद ने उत्तर दिया था – "यद्यपि सावित्री में दैवी अंश है, पर उसे पीड़ा की घाटियों से गुजरना ही होगा, क्योंकि यह समस्या एक व्यक्ति की मृत्यु की नहीं, मृत्यु–तत्त्व को जानने की है ।" समस्या बड़ी और जटिल है और कहना न होगा कि जटिल समस्या को सुलझाने में सावित्री पूर्णतः अपने को विसर्जित कर देती है ।

सावित्री इस दुस्सह दुःख से भी घबड़ाती नहीं, सत्यवान् की मृत्यु उसे अचानक उदासी और पीड़ा के भीतर अपूर्व एकाग्रता से भर देती है । सहसा ऊपर से आवाज उभरती है – "अपने मिशन को पूरा करने के लिए तैयार हो जा ।" उस दैवी आवाहन ने उसके भीतर सोयी हुई तमाम दिव्य शक्तियों को सन्नद्ध कर दिया । वह अपनी चेतना में डूबती चलीं गई और अबाध प्राणिक, निम्न प्राणिक स्तरों को अतिक्रान्त करती गयी । वह साक्षी–भाव से इनकी गतिविधियों को देखती रही । तब वह उस स्तर पर पहुँची–जहाँ उसने देखा कि जीवनी शक्ति रस्सियों से बँधी है और मन सब कुछ पर शासन करने की कोशिश करता रहता है । अपनी आत्मा को ढूँढती वह एक दूसरे क्षेत्र में पहुँची, जहाँ उसने देखा कि शक्ति की तीन वैश्विक शक्तियाँ समासीन हैं । वे उसे रोकना चाहती है, पर वह उनकी उपेक्षा करके

आगे बढ़ जाती है; क्योंकि वह जानती है कि महान् होते हुए भी ये तीनों शक्तियाँ विश्व का रूपान्तरण नहीं कर पायेंगी ।

इन तीनों शक्तियों में पहली को 'दुखों की देवी', जो असीम आन्तरिक सहानुभूति और प्रेम की देवी भी है, दूसरी को 'शक्ति की कुमारी' जिसे ऋत और अनुशासन की देवी कहा गया है और तीसरी 'ज्योति की माँ' अर्थात् मानसिक और बौद्धिक ज्ञान की देवी कहा गया है । ये तीन शक्तियाँ महेश्वरी, काली और सरस्वती से कुछ साम्य रखती-सी प्रतीत होती हैं ।

इन तीनों को पार करती हुई वह एक रहस्यमय रास्ते से अपनी आत्मा को उपलब्ध कर लेती है । वह जीवन के दो नकारों को भी देखती है । निर्वैयक्तिक होने के लिये अपने व्यक्तित्त्व का नकार, क्योंकि उसे बोध हुआ कि परम सत्य को पाने के लिये अपने को उसमें लय करना होगा, अपने वैयक्तिक जीवन का नकार क्योंकि व्यक्ति क्या है, सिर्फ वैश्विक सत्ता से निकला एक बिन्दु ही न ? फिर क्यों न बिन्दु विसर्जित हो जाय । दोनों ही नकार नाकाफी है, क्योंकि दोनों ही स्थितियों में मृत्यु की सत्ता स्वतः स्वीकृत हो जाती है । अतः यदि मृत्यु पर विजय पानी है, तो उनसे भी आगे जाना होगा ।

तभी महत् आवाज गूंजती है - 'तू सत्य को देखेगी ।' और सहसा सावित्री जीवित देवताओं के देश में प्रवेश करती है । यहाँ उसे ऐसी अमोघ शान्ति की उपलब्धि होती है कि उसे लगता है कि वह कभी भी मृत्यु का सामना करने को तैयार है । इस संकल्प के साथ ही सावित्री की साधना और पृथ्वी पर आने का उसका प्रयोजन एकाकार हो गये । वह तुरन्त अपने

प्रयोजन को दृष्टि में रखते हुए शाश्वत रात्रि के लोक में प्रवेश करती है, इस लोक में वह मानव आकृत्ति में नहीं जाती, क्योंकि आज तक यहाँ कोई मनुष्य प्रवेश नहीं कर सका । वहाँ पर वह देखती है कि यह एक विचित्र माया–लोक है, जो मात्र नकारों से भरा है । यहाँ कुछ भी असली नहीं है । मनुष्य का, सत्ता का, ईश्वर का, सबका नकार । सिर्फ ध्वंस और मृत्य के ईश्वर के अलावा सबकी अस्वीकृति, सबका नकार । यम उसे समझता है कि मनुष्य को दिये गये सभी आदर्श और मूल्य व्यर्थ है । वह कहता है कि सिर्फ जीवन को खा जाने वाले देव के अलावा बाकी सब नाशवान् है । यम उसे रोकता है और कहता है कि यहाँ सबको झुकना पड़ता है । सावित्री उत्तर देती है :

> मैं न झुकूँगी आगे तेरे अरे मृत्यु के महा मुखौटे
> रजनी के काले झूठ, मनुज पर छाने वाले
> ओ चीजों के नकली ध्वंस जताने वाले
> अमर आत्मा से हारा तू करता रहता छेड़–छाड़ नित
> मैं अपने आत्म तत्त्व की सहज अमरता से परिचित हूँ
> और जानकर ही आई हूँ क्षमता अपनी विजयी जैसी
> मैं तेरे द्वारे याचक बनकर नहीं खड़ी हूँ ।''[73]

मृत्यु देव और सावित्री का कथोपकथन बड़ा नाटकीय है । सावित्री उसकी बातों को नहीं मानतीं और कहती हैं कि अमरता हमारा उत्तराधिकार है । परमविभु का ज्ञान अपनी इच्छाशक्ति और प्रेम का ज्ञान है । यह वही विभु है, जिसने मृत्यु–देवता का निर्माण किया है । मृत्यु–देवता स्वीकार करता है कि उसका निर्माता कोई ओर है, पर यदि वह है तो इतना उदासीन

है कि उसे सावित्री की बात सुनने की फुर्सत नहीं है और यदि वह उस उदासीन विभु को पाना ही चाहती है तो पाये, पर उसमें लय होने के बाद उसे सत्यवान् का प्रेम नहीं मिल सकता । सावित्री यम द्वारा परिभाषित हृदयहीन ईश्वर का उपहास करती हुई कहती हैं –

कल्पित तुम्हारी कालिमा से कौन है वह देवता
धृणा से रचे ऐसे विश्व को वह देखता
गर्व से किसने रचे है ये चमकते ग्रह सितारे ?
निश्चय रचे उसने नहीं मेरे हृदय के भाव सारे
हृदय मंदिर का हमारे फर्श है जिसने बनाया
वह ईश इच्छा शक्ति मेरी, रास्ता उसने दिखाया
ईश मेरा प्रेम है जो सुखी मन सब कुछ सहेगा
कामनायें सब समर्पित है उसे, स्वीकार पूजा को करेगा ।
ज्योति–संस्कृत किया उसने है सकल संकल्प मेरा
स्वर्ण पंखी प्रेम मेरा बाँध लेगा शून्य तेरा ।[74]

वस्तुतः यहीं वह ग्रंथि स्पष्ट की गई है, जिसे ठीक से न समझने के कारण लोग प्रेम के सही और नकली रूप में अन्तर नहीं कर पाते । सावित्री कहती है –– "सत्य के ज्ञान में प्रेम समाहित है क्योंकि प्रेम के बिना–ज्ञान पूरा हो ही नहीं सकता ।"

यदि मैंने शाश्वत प्यार किया है, तो ही मैं जान सकूँगी ।
मेरे अन्दर का प्रेम जानता है सही सत्य,

बाकी परिवर्तित होते सभी मुखौटे

और जानती हूँ कि ज्ञान का आलिंगन कितना विस्तृत है ।[75]

वह आगे बढ़ती है और द्वाभालोक, गोधूलि वेला में लोक में प्रवेश करती है । उसे अब अपनी उमरता और शाश्वत सत्ता का पूर्ण विश्वास हो जाता है । उसे अपने दिव्य प्रेम की अमरता का भी पूर्ण भान होता है । उसके सामने यम एक नया आकर्षक माया जाल फैलाता है । वह जान जाती है कि उसे सिर्फ अन्धकार को ही नहीं, अर्ध प्रकाश को भी नकारना होगा; क्योंकि यह ज्यादा खतरनाक वस्तु है । अर्ध प्रकाश एक ऐसा आश्वस्तकारी भाव है, जो आगे बढ़ने की प्रेरणा ही छीन लेता है । तब वह इस कुहेलिका को भी तेज धार से चीर देती है और पाती है कि सारी प्रकृति अपने से बेहतर बनने की लीला में तल्लीन है । मृत्यु प्रेम में बदल रही है, विराट्, हिरण्यगर्भ, चैतन्य और आनन्द जो परम सत्ता के चार पक्ष है, निरन्तर समन्वित ढंग से इसी प्रक्रिया में तल्लीन है । वह परासत्ता के पास पहुँच जाती है । और तब सावित्री की परीक्षा शुरू होती है । उससे कहा जाता है कि वह चाहे तो अकेले परमानन्द का धाम उसे प्राप्त हो सकता है । वह इस लुभाने वरदान को ठुकरा देती है । नहीं, मैं महादिवस का प्रकाश बनकर यहाँ नहीं, सिर्फ ज्योति बनकर पृथ्वी पर रहना चाहती हूँ । मैं सत्यवान् के बिना अपना प्रयोजन, अपना 'मिशन' पूरा नहीं कर पाऊँगी –

व्यर्थ में तुम क्यों मुझे सिर्फ मेरी खुशी का लोभ देकर

ठग रहे हो, दुःखी जग में युगल आत्मायें बचीं तो क्या ?

सुनो, मेरी और उसकी आत्मायें एक हैं, अविभाज्य जैसी

और हम आये यहाँ है विश्व को अमरत्व देने ।
परमविभु को विश्व में लाकर प्रतिष्ठापित करेंगे ।
विश्व–जीवन को बदलना दिव्यता में ध्येय अपना
मनुज के उद्धार के निज कर्म को मैं छोड़ सकती हूँ नहीं
ये लुभाने शब्द और वरदान तेरे व्यर्थ है ।
खुशियों–भरे इन दिव्य लोकों के लिए
बलिदान पृथ्वी का नहीं स्वीकार मुझको ।[76]

और तब आरम्भ होता है 'सावित्री' काव्य की अन्तिम पुस्तक यानी द्वाद्वश पर्व जिसका कवि ने उचित ही नाम रखा है पृथ्वी की ओर प्रत्यावर्तन ।

सावित्री को सत्यवान् मिल गया है और दोनों आत्माएँ हाथ में हाथ डाले नीचे उतरती हैं । इधर पृथ्वी पर सत्यवान् के मृत शरीर के मृत शरीर के पास सावित्री ट्रांस में डूबी है –

''वह रहस् समाधि से जागी अचानक
और देखा जगत् की थिर शान्त गोदी मे अवस्थित है ।
कि शाखें हरित सुन्दर झुक गई है शीश ऊपर
मानों कि रक्षा कर रही थीं नींद में
खोई हुई की, जादुई आँचल उढ़ाकर ।

सत्यवान् को जीवनदान मिला । वे दोनों इस पृथ्वी को रूपान्तरित करने की अपनी महत् योजना में लग गये ।

यही है 'सावित्री' महाकाव्य यही है अतिमानसिक योग का द्वाद्वश वर्तिका कर्पूरस्तोत्र ।

श्री अरविन्द ने इस काव्य के बारे में एक बार अपने एक शिष्य को पत्र में लिखा था – ''यह कविता एक आनवरतिक धारा की तरह प्रथम पंक्ति से अन्तिम पंक्ति तक अवतरित हुई । 'सावित्री' मेरी दूसरी कृतियों से भिन्न एक खुद में महान् कार्य था । पुरानी प्रेरणा से ही मैंने अपने मूल की आठ या नौ बार आवृत्ति की होगी । हर बार नवीनीकरण । इसके बाद मैंने इसे दुबारा नये सिरे से लिखना शुरू किया । पहले प्रथम पुस्तक पर एकाग्र हुआ और बार–बार एक ही अंश पर कार्य करता रहा, इस आशा से कि प्रत्येक पूर्णता में सब तरह से पूर्ण होनी चाहिए । किन्तु अब ऐसे कार्यो के लिए शायद ही समय प्राप्त हो सके । ''[77]

कहा तो यहाँ तक जाता है कि 'सावित्री' उनके पूरे जीवन की तपस्या का फल है । इसका बीजांकुरण बड़ौदा में ही हो गया था । और जैसा कि नीरदवरण ने लिखा है, मृत्य के कुछ रोज पहले अन्तिम अंश पूरा करके उन्होंने अद्‌भुत निश्चिन्तता का अनुभव किया । अर्थात् 'सावित्री' को लिखने में उन्होंने पचास वर्षों का समय लगाया था, पूरी अर्धशताब्दी ।

श्री अरविन्द के साहित्यक व्यक्तित्व का इस निबंध में एक संक्षिप्त रेखांकन ही किया जा सका है । उनकी कविताएँ, नाटक तथा काव्यशास्त्र और अन्य कलाशास्त्रों पर उनके विचार इतने महत्त्वपूर्ण और विविध – आयामी हैं कि उन्हें पूर्णत: उपस्थित करने के लिए अलग से प्रयत्न करना होगा । मैंने उनके साहित्यिक, सांस्कृतिक योग दान को यथासंभव विस्तृत ढ

ंग से परिचित-परीक्षित करने का इरादा किया था और उसके लिए सामग्री भी एकत्र की थी, किन्तु स्थानाभाव से वह इस शोधग्रंथ में समाविष्ट नहीं होपा रही है । उस पक्ष पर कभी फिर । 'अहना' शीर्षक उनकी सुप्रसिद्ध कविता का एक अंश उद्धृत करके मैं उनके महान् प्रेरणादायी और कालजयी व्यक्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ -

ऊँचे पहाड़ों से आयी इस कपोती के साथ-साथ,
भय हीन होकर मैं रास रचाऊँगा ।
खुशियों से भरी-भरी खिल-खिलाहटों को पीता हुआ,
यूनानी द्वीपों में देवता सा विचरूँगा ॥
जीवन इन रंगों में अमरता को उतारेगा,
मांश-पेशियों को ईश्वरीय रंग में डुबाऊँगा ।
स्वर्ग की आबदार चमक से धरती के प्रकाश की
शादी रचा कर मैं दोनों को एक में मिलाऊँगा ॥

श्री अरविन्द : कृतित्त्व

महर्षि अरविन्द उच्चकोटि के विद्वान्, कवि, आलोचक, चिंतक, साधक, देशभक्त व भविष्यद्रष्टा थे । आपने विपुल साहित्य का सर्जन तो किया ही, दर्शन, इतिहास, सभ्यता, संस्कृति आदि विषयों पर अनेक पुस्तकों की रचना की, लेख लिखें । श्री अरविन्द अद्वितीय सर्जनात्मक ऊर्जा सम्पन्न लेखक थे । आपन कई पत्र-पत्रिकाओं का वर्षो सम्पादन किया । आपके सम्पादकीयों तथा लेखों में आपके गंभीर विचार अनुस्यूत है । अनेक पश्चिमी विश्वविद्यालयों के दर्शन व साहित्य विभागों में, श्री अरविन्द की

'द लाइफ डिवाइन', 'द ह्यूमन साइकल', 'फयूचर पोएट्री' जैसी पुस्तकों का पाठ्यक्रम में समावेश किया गया है । विश्व–चिंतकों में सक्रिय–चिंतक के रूप में श्री अरविन्द का स्थान अद्वितीय है ।

श्री अरविन्द रचित साहित्य मात्रा एवं गुणवत्ता में विपुल एवं उदात्त है । उसक अवगाहन के लिए पाठक का उच्चतर मनोभूमि का आरोहण आवश्यक है । महर्षि अरविन्द का काव्य अनेक स्तर पर अर्थ प्रदान करता है । वह प्रतीकात्मक व रूपकात्मक है । श्री अरविन्द का गद्य गहन विचारों से युक्त शक्ति और स्फूर्ति का गद्य है । उनकी भाषा ऊर्जस्वित है । श्री अरविन्द रचित प्रमुख पुस्तकें निम्न हैं :

1.	दिव्य जीवन	The Life Divine
2.	योग समन्वय	The Synthesis of Yoga
3.	सावित्री (महाकाव्य)	Savitri : A Legend and a Symbol
4.	गीता प्रबंध	Essays on Geeta
5.	मानव–चक्र	Human Cycle
6.	भावी कविता	The Future Poetry
7.	वेद रहस्य	The Secret Vedas

इन प्रमुख ग्रंथों के अतिरिक्त श्री अरविन्द ने अनेक सम्पादकीय, लेख आदि लिखे हैं । श्री अरविन्द बहुभाषाविद्, बहुज्ञ, गहन अध्येता, राष्ट्रभक्त व मानवतावादी चिंतक थे । श्री अरविन्द विरचित साहित्य प्रेरणा व मार्गदर्शन प्रदान करने वाला है । मानव सभ्यता के विकास हेतु नवीन सोपानों की सर्जना करने वाला है । भोग, हिंसा व विकृतियों से ग्रस्त

मानव जाति को आत्मा की उदात्तता की ओर ले जाने वाला है महर्षि अरविन्द विरचित साहित्य ऐसा प्रकाश स्तम्भ है जो सदियों तक पीड़ित व त्रस्त मानवता का मार्गदर्शन कर, उसे उदात्त मनोभूमि पर ले जाने की अद्वितीय क्षमता रखता है । अरविन्द की वाणी अभिमंत्रित वाणी है जिसमें अजेय प्राणशक्ति सन्निहित है । उनकी कृति पर रचनाओं का संक्षिप्त परिचय :

सावित्री महाकाव्य :

श्री अरविन्द द्वारा 50 वर्षों की अनवरत साधना द्वारा अंग्रेजी में विरचित सावित्री (Savitri - A Legend and a Symbol) बृहत महाकाव्य है । यह ग्रंथ 12 पर्वों तथा 49 सर्गों में विभक्त 23,813 पंक्तियों में रचित विशाल काव्य-ग्रंथ है । महर्षि बाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण (44,000पंक्तियाँ) तथा महर्षि वेदव्यास द्वारा विरचित महाभारत (2,20,000 पंक्तियाँ) को छोड़कर यह ग्रंथ विश्व का सबसे बड़ा महाकाव्य है । ग्रीक महाकवि होमर के महाकाव्य 'इलियड' तथा ओडेसी, रोमन कवि वर्जिल का 'एनिड', इटली के कवि दाँते का 'दिवीना कामेदिया'', 'अंग्रेज अंधकवि मिल्टन का 'पेराडाइज लॉस्ट' तथा 'पेराडाइज री ग्रेन्ड' जर्मन कवि गेटे द्वारा विरचित महाकाव्य 'फॉस्ट' आदि कोई भी रचना अपने आकार, विषय निरूपण तथा गरिमामय उदात्त शैली में सावित्री के बराबर नहीं है । श्री माँ के अनुसार 'सावित्री' पराकाव्य है । यह साधनानुभूति प्रसूत रचना है ।

महाकाव्य वस्तुतः एक ऐसी उदात्त पद्यमय बृहतकाय कथात्मक रचना होती है जिसमें किसी इतिहास पुरूष की उपलब्धियों अथवा पतन का वर्णन

होता है । इसका संबंध परम्परा, इतिहास, पुराण, धर्म तथा संस्कृति से होता है ।

श्री अरविन्दो विचरित 'सावित्री' महाकाव्य का आधार महाभारत के वनपर्व में वर्णित सावित्री–सत्यवान का प्राचीन आख्यान है । यह आख्यान वनपर्व के सात अध्यायों (291 से 297 तक) में वर्णित है । यह आख्यान महाभारत में ऋषि मार्कण्डेय ने पाण्डवराज युधिष्ठिर को सुनाया ।

सावित्री एक प्रतीक काव्य है जिसमें विविध पात्र सजीव और सचेतन सत्ताओं के प्रतीक है । इस महाकाव्य में राजकुमारी सावित्री दिव्य ज्योति और सत्य–चेतना की, सत्यवान अज्ञानांधकार ग्रस्त और अचैतन्य मृत्य का, सावित्री का पिता अश्वपति अभीप्सु मानव आत्मा का, तथा सत्यवान का पिता द्युमत्सेन दिव्य मन का प्रतीक है । यह मृत्यु, अज्ञान और असत्य का प्रतीक है । नारद ऋषि अन्तः प्रज्ञा के प्रतीक है ।

सावित्री एक प्रतीक काव्य या रूपक ही नहीं, अतिमनस् चेतना के क्षेत्र में श्री अरविन्द की योगपरक अनुभूतियों की अभिव्यंजना है ।

सावित्री की शैली गरिमामय व उदात्त है तथा शब्द योजना वैदिक प्रतीकवाद के अनुरूप है जिसके तीन प्रकार के अर्थ है – आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिका इस सम्पूर्ण महाकाव्य का प्रथम प्रकाशन सन् 1954 में हुआ ।

सावित्री के विषय में ऋषि अरविन्दने लिखा है –

''महाकाव्य में सत्यवान और सावित्री की कहानी आती है जिसने

मृत्यु पर विजय पायी है । किन्तु यह कथा जैसे कि मानव–कथा की अनेक विशेषताओं ने उसे प्रदर्शित किया है, वैदिक युग की एक प्रतीकात्मक पौराणिक गाथा है । सत्यवान वह आत्मा है जिसके भीतर सभ्यता का दिव्य सत्यलोक वर्तमान है पर जो नीचे उतर कर मृत्यु और अज्ञान की पकड़ में आ गया है । सावित्री दिव्य वाक् है, संदेश है, सूर्य–पुत्री है, सर्वोच्च सत्य की देवी है जो उद्धार के लिए नीचे उतरती और जन्म लेती है । अश्वपति अश्व (प्राणशक्ति) का प्रभु है, सावित्री का मानवी पिता है, तपस्या का अधिपति है । उसमें आध्यात्मिक प्रयास की वह घनीभूत शक्ति है जो हमे मर्त्य स्तर से ऊपर के स्तरों तक जाने में सहायता पहुँचाती है । द्युमत्सेन देदीप्यामान सैन्यगण का नायक और सत्यवान का पिता है । वह दिव्य मन है जो यहाँ पतित होकर अंधा हो गया है । उसने दिव्य दृष्टि के अलौकिक साम्राज्य को खो दिया है । इस हानि के द्वारा अपने वैभव के राज्य को भी । तो भी यह कथा एक रूपक मात्र नहीं है , इसके पात्र केवल मानवीकृत गुण भर नहीं हैं अपितु वे उन सजीव और चेतन शक्तियों के अवतार और विभूतियाँ हैं जिनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में हम आ सकते हैं और वे भी मानव शरीर धारण करती हैं जिससे कि वे मनुष्य की सहायता कर सकें, उसे उसकी मर्त्य अवस्था से ऊपर एक दिव्य चेतना और अमर जीवन का मार्ग दिखा सकें ।[78]

मद्र देश के राजा अश्वपति नि:संतान है जो संतति की प्राप्ति के लिए घोर तप करते है । तपस्या के परिणामस्वरूप वे विविध लोक लोकान्तरों का दर्शन करते है व अंत में भगवती माता का दर्शन करते है । भगवती माता अपने अंशावतार रूप में उनके घर जन्म लेना स्वीकार करती है ।

समय की गति के साथ भगवति माता का अश्वपति के घर जन्म होता है जिसका नामकरण होता है "सावित्री" । युवावस्था में सावित्री सत्यवान का चयन पति रूप में करती है जिसकी जीवनावधि केवल एक वर्ष है । पति के साथ वन में रहती सावित्री कठोर तप करती है व सत्यवान के जीवन की अंतिम यात्रा की राह देखती है । आखिर वे घड़ियाँ आ ही पहुँचती हैं । विधि द्वारा निर्दिष्ट सत्यवान की मृत्यु का दिवस आ पहुँचता है । सावित्री सत्यवान के साथ वन में लकड़ियाँ काटने चली जाती है । जहाँ दोपहर के समय सत्यवान सावित्री के उत्संग में गिरकर अपने प्राण त्याग देता है । मृत्यु के देवता यमराज सत्यवान की आत्मा को लेने आ पहुँचते हैं परन्तु सावित्री अपनी योगशक्ति से उनके पीछे चली चलती है । हठ करती है कि सत्यवान की आत्मा उन्हें लौटा दी जाए ।

यमराज विविध वरदान प्रदान करते है परन्तु अंत में वे अपने ही वचनों में बंधे सत्यवान की आत्मा लौटाने को मजबूर हो जाते हैं ।

यमराज के दिए वरदानों के फलस्वरूप सत्यवान के माता-पिता को दृष्टि व राज्य की प्राप्ति होती है और सावित्री को अपना अखण्ड अहिवात ।

इस थोड़ी सी कथावस्तु को लेकर महाकवि ने अपनी ऊर्वर प्रतिभा के द्वारा जिस महान् कृति की रचना की है वह युगों तक मानव-जाति को प्रकाश देती रहेगी ।"

श्री अरविन्द कविता का सारा ध्येय उसका क्रान्तदर्शन व मंत्रकाव्य के रूप में चरमोत्कर्ष व परिणति मानते हैं । इसके सिवा सारे शरीर सौष्ठव वे

गौण स्वीकार करते हैं । कविता का जो मंत्र रूप है वह हमें उनकी कृति "सावित्री" में ही प्राप्त होता है । मानो समीक्षक के रूप में प्रस्थापित विचारों को ही वे अपनी कृति द्वारा संसिद्ध करते हैं ।

इस कृति को काव्य की सभी दृष्टियों से पूर्णता प्राप्त है पर इस महाकाव्य की चरम श्रेष्ठता इस तथ्य में है कि यह महाकाव्य जगत् को भगवान की तरह सत्य मानता है व मानव के सारे तपों का फल यही मानता है कि इसी धरा धाम पर भगवती शक्ति का प्रादुर्भाव हो और जगत् में ही भगवान् के राज्य की स्थापना हो । कामायनी में कवि "प्रसाद" जहाँ कैलाश के आरोहण के बाद "आनन्द" की प्राप्ति का निर्देश करते हैं वहाँ श्री अरविन्द की तपस्या का परमश्रेय इसी भूमि पर प्राप्तव्य है किसी अन्य लोक में जाकर नहीं । इस तरह "सावित्री" श्री अरविन्द की क्रान्तदृष्टि का महत् फल, ऋषित्व का परम उद्‌गार व काव्य कला की सर्वोत्कृष्ट स्थिति 'मंत्र' का समवाय है जो जगत् में ही भगवान् की प्राप्ति का आशावादी स्वर लिये हुए है ।

"सावित्री" के विषय में श्री अरविन्द लिखते हैं –

"मैंने जो कुछ देखा है, अनुभव किया है अथवा अन्तर में जाना है, वही व्यक्त करने का प्रयत्न किया है ।"[79]

जिस प्रकार श्री अरविन्द का दर्शन भविष्य के लिए लिखा गया है उसी प्रकार उनका "सावित्री" महाकाव्य भी भावी की रचना है ।मानव जाति का विज्ञानमय रूपान्तरण व मानवता की भूमि पर ही भगवान् की उपलब्धि का भविष्य इस काव्य द्वारा निर्दिष्ट किया गया है । श्री अरविन्द दर्शन के

सारे सिद्धान्त काव्य के ताने-बाने में कवि ने स्वयं गूंथ दिये हैं जो हर पंक्ति में नवीन प्रकाश व नवीन विचारधारा लिये है । पार्थिव प्रकृति के क्रमविकास और अंततः मानव से अतिमानव बनने की भावी इस काव्य द्वारा निरूपित की गई है ।

श्री अरविन्द दर्शन अपने रस सिक्त रूप में "सावित्री" की पंक्तियों में चिरस्थायी हो गया है जो कवि की "भविष्य कृति" व "मान्युमेंटल उपलब्धि" है । प्रोफेसर रेमण्ड़ फ्रेंक पाइपर के शब्दों में :-

"सावित्री" की रचना प्रायः पचास वर्षो में हुई है जो संभवतः अंग्रेजी भाषा का सबसे महान महाकाव्य है और आधुनिक विश्व की किसी भी भाषा में सबसे विशाल काव्य रचना है । मैं निर्भयतापूर्वक यह कहने का साहस करता हूँ कि यह आज तक रचित विश्वपरक कविताओं में सबसे अधिक विस्तृत, सुगठित, सुन्दर और पूर्ण है । इसमें प्रतीक रूप से आदिकालीन व्याप्त शून्य से लेकर पृथ्वी के अंधकर और संघर्षो में होते हुए अतिमानसिक आध्यात्मिक अस्तित्त्व के उच्चतम प्रदेशों तक सबकुछ है और यह मानव से सम्बन्धित प्रत्येक महत्त्वपूर्ण बात को ऐसे काव्य के द्वारा प्रकाशित करती है जो अद्वितीय विशालता, भव्यता और आलंकारिक क्रान्ति से युक्त है । संभवतः "सावित्री" मानव मन को पूर्ण ब्रह्म के प्रति प्रसारित करने वाली सबसे अधिक प्रभावी कलात्मक कृति है ।"[80]

इस प्रकार श्री अरविन्द का यह महाकाव्य एक अद्‌भुत महाकाव्य है । निस्संदेह यह उनके सारे जीवन का सारतत्त्व प्रस्तुत करता है - "अत्यन्त गरिमा, महिमा, सरसता और भव्यता के साथ ।"[81]

"सावित्री" श्री अरविन्द के आध्यात्मिक जीवन व अभीप्साओं के मूर्तिमंत प्राकट्य की मंत्रमयी काव्य गिरा है ।

सावित्री के हिन्दी में दो अनुवाद हुए हैं –

एक श्रीमती विद्यावती कोकिल द्वारा तथा दूसरा श्री शिवदास द्वारा – सावित्री सौरभ । भारत की अन्य भाषाओं में भी इस ग्रंथ के अनुवाद हुए हैं । गुजराती भाषा में श्री पूजालाल तथा श्री सुन्दरम् ने इस महाकाव्य के अनुवाद प्रस्तुत किये हैं ।

तेलुगु भाषा में "आन्ध्र महासावित्री" के नाम से तीन भागों में श्री शार्वरी ने सावित्री का अनुवाद किया है ।

तेन्नेटी पूर्ण चन्द्र राव ने सावित्री का 4 भागों में अपूर्ण अनुवाद किया है । वे हैदराबाद में वर्षों से श्री अरविन्द केन्द्र चलाते हैं । देहांत के कारण उनका कार्य अधूरा रह गया ।

सावित्री का सम्पूर्ण अनुवा श्री कोत्ता रामकोटय्या ने भी किया है ।

सावित्री का संक्षिप्त अनुवा श्री माना प्रगड़ श्री रामुलू ने किया है ।

भावी कविता (The Future Poetry)

श्री अरविन्द कारयित्री प्रतिभा (Creative Talent) तथा भावयित्री प्रतिभा (Critical Talent) सम्पन्न गहन अर्न्तदृष्टि के सर्जनशील आलोचक – कवि थे । जहाँ 'सावित्री' उनकी साधनात्मक सर्जना का सर्वोच्च निदर्शन

है, वहीं 'भावी कविता' उनकी गहन रसज्ञता व विश्लेषण क्षमता युक्त आलोचनात्मक क्षमता को व्यक्त करने वाला अद्वितीय ग्रंथ है । साहित्य के किसी भी अध्येता के लिए यह एक मार्गदर्शक ग्रंथ हो सकता है क्योंकि श्री अरविन्द ने कविता - सौन्दर्य, लय, छंद, अर्थव्यंजना, विचार तत्त्व, मंत्र कविता, रूप विधान और भाव 'शब्द और आत्मा' जैसे विषयों पर जैसे गंभीर विचार व्यक्त किये हैं वे अद्वितीय हैं ।

यथा मंत्र के विषय में (कविता का सर्वोच्च स्वरूप) श्री अरविन्द लिखते हैं : "मंत्र, जो गहनतम आध्यात्मिक वास्तविकता की काव्यात्मक अभिव्यंजना है, तभी संभव होता जब काव्यात्मक वाणी की तीन उच्चतम तीव्रताएँ मिलती हैं ओर नीरक्षीरवत् एक हो जाती हैं - 1. लयात्मक गति की उच्चतम तीव्रता, 2. शब्दरूप, विचार तत्त्व शैली की उच्चतम तीव्रता, और 3. आत्मा की सत्यदृष्टि की उच्चतम तीव्रता ।"[82] आगे वे लिखते हैं - "लय काव्यात्मक अभिव्यंजना की प्राथमिक आवश्यकता है क्योंकि यह 'ध्वनि गति' होती है जो अपनी लहर पर शब्द में विचार-गति को लिये चलती है ।"[83]

कविता का सर्वसामान्य स्वरूप स्थूल तुकबन्दी है तो उसका सर्वोच्च स्वरूप मंत्र कविता हैं । छोटे छोटे प्रारंभिक कवि तुकबंदियों में ही चुक जाते हैं, पर गंभीर विचारशील कवि क्रमशः जीवन सत्य को अपने काव्य में उतारते चलते हैं जैसे वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, शेक्सपीयर, वर्डस्वर्थ, शैली, कीट्स वाल्ट ह्विटमेन आदि ।

कविता का अत्यंत ऊर्जित स्वरूप 'मंत्र-कविता' होता है, उसके रचनाकार सत्य को देखते हैं अतः इन्हें दृष्टा या ऋषि कहा जाता है । मंत्र

कविता से उत्पन्न होने वाली तरंगों (Vibrations) में अमित शक्ति होती है जो उनके उच्चारण से उत्पन्न होती है ।

कवि भी भगवान होता है, पर वह सर्जनात्मक क्षमता द्वारा उसे उपदेशात्मक ही नहीं, सौन्दर्यनिष्ट बना देता है । श्री अरविन्द के शब्दों में –

''भगवान सत्य को ईश्वरीय वाणी या उसके आदेश रूप में उद्घोषित करता है, वह संदेशवाहक होता है, वहीं कवि सत्य को उसकी सौन्दर्य क्षमता में हमें दिखाता है या उसके प्रतीक या बिम्ब में, या उसे हमारे लिये प्रकृति की जीवन की, प्रक्रियाओं में उद्घाटित करता है ।''[84]

वाल्मीकि, वेद व्यास या शंकराचार्य या वल्लभाचार्य या तुलसी जैसे कवियों की कतिपय रचनाएँ मंत्रकाव्य बन जाती है । शंकराचार्य के स्तोत्र, वल्लभाचार्य का 'मधुराष्टक' या तुलसी की 'हनुमान चालीसा' ऐसे उदाहरण है । कवि की साधनात्मक ऊर्जा का निक्षेप इन पंक्तियों में हो जाता है जिनके उच्चारण के साथ ही इस ऊर्जा का प्रसार आरंभ होता है तथा पाठक ही नहीं, उसके परिवेश को भी स्पंदित करती है । वेद के अनेक मंत्र इस कोटि में आते है जिसमें 'गायत्री मंत्र' प्रमुख है ।

काव्य का सारतत्त्व लय और गति, शैली और विषयवस्तु, काव्यात्मक विजन और मंत्र काव्य का राष्ट्रीय विकास, काव्य सत्य का सूर्य, महत्तर जीवन का प्रश्वास, काव्य का आनन्द और सौन्दर्य की आत्मा, आत्मा की शक्ति रूप विधान और भाव, शब्द और आत्मा–जैसे सैद्धान्तिक समीक्षा के सुचिन्त्य निबंध तथा अंग्रेजी काव्य का स्वरूप (2 निबंध), अंग्रेजी काव्य की

दिशा (5 निबंध), आधुनिक साहित्य की गति विधि (2), उषा के कवि (2) विक्टोरियन कवि, अर्वाचीन अंग्रेजी काव्य (4 निबंध) – व्यावहारिक समीक्षा के आदर्श नमूने हैं ।

अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों (वर्डस्वर्थ, कॉलरिज, बायरन, शैली, और कीट्स) रहस्यवादी कवि (विलियम ब्लेक) तथा विक्टोरियन कवियों (टेनिसन, ब्राउनिंग आदि) पर लिखी इनकी व्यावहारिक समीक्षाए ँ अत्यंत सूक्ष्म तथा विश्लेषणात्मक हैं ।

कॉलरिज के विषय में श्री अरविन्द लिखते हैं –

"उनकी दृष्टि बिम्बों से भरपूर है । वे केवल एक द्रष्टा नहीं अन्य धरातलों के संस्पर्शी हैं । मगर उनकी अभिव्यंजना शक्ति उनके विजन की शक्ति के बराबर नहीं है ।"[85]

वर्डस्वर्थ के विषय में श्री अरविन्द लिखते है – "वे एक साथ ही द्रष्टा, कवि, विचारक, ईश्वर और कलाकार है ।" स्वतन्त्रता के कवि शेली के विषय में वे लिखते हैं – "प्रकाश, प्रेम, स्वाधीनता – ये तीन देव है जिनकी उपस्थिति में, शैली की शुद्ध और ज्योतिर्मयी आत्मा रहती थी, पर वह एक स्वर्गिक प्रकाश, स्वर्गिक प्रेम, स्वर्गिक स्वाधीनता थी ।"[86]

पुनः दोनों युवा कवियों–शैली और कीट्स की तुलना करते हुए श्री अरविन्द लिखते हैं – "एक आकाश से धरती की ओर उन्मुख होकर गाता है, दूसरा धरती से देवलोक की ओर देखता है । अंग्रेजी काव्य में कीट्स 'शब्द और छंद' के प्रथम सम्पूर्ण कलाकार हैं.. ।[87]

कीट्स सौन्दर्य के कवि थे तो शैली स्वतन्त्रता के । दोनों की मृत्यु बहुत कम आयु में हुई । कीट्स राजयक्ष्मा (टी.बी.) से केवल 26 वर्ष की आयु में चल बसे, तो शैली का 28 वर्ष की आयु में समुद्र में डूब कर देहांत हुआ । लार्ड बॉयरन की मृत्यु भी केवल 30 वर्ष की आयु में युद्धभूमि में हुई । कीट्स सौन्दर्य मंदिर के द्वारा तक पहुँचे, पर दरवाजा खोलने के पहले ही उनका जीवन समाप्त हो गया । "कीट्स और शेली अपनी शक्तियों के पूरी तरह फैलने के पहले ही छीन लिये गये, बॉयरन अपने रास्ते से बहुत अलग ले जाये गये, ब्लेक अपनी सुदूरता में धुँधलाते गये, कॉलरिज और वर्डस्वर्थ महज बौद्धिक मन में कवि तथा दृष्टा को क्रमशः खो बैठे ।"[88]

हिन्दी के छायावादी कवियों पर इतनी सूक्ष्म, विश्लेषणात्मक व तलस्पर्शी समीक्षा का आज भी अभाव है । श्री अरविन्द के अनुसार –

"कविता हमें सत्य का दर्शन कराती है । वह केवल विचार या भाव को जागृत या उत्तेजित मात्र नहीं करती । विचारात्तेजन का कार्य तो गद्य का दायित्त्व होता है । कविता स्वयं द्रष्टा की देखी सत्यवस्तु का हमें भी दर्शन कराती है । प्राचीन युग में कवि का अर्थ ही होता था द्रष्टा । कवि का कार्य यह नहीं है कि वह छंद रूप में चिंतन सामग्री दे, तुकबन्दी मात्र करे या चारण के समान प्रशंसा ही लिखा करें । कवि तो क्रांतद्रष्टा या सत्य दृष्टा होता है जो वस्तु के पार किसी निहित सत्य को देख लेता है और उस सत्य का दर्शन कविता के पाठक को कराता है यदि यह "दर्शन" कविता में न पाया जाए तो वह जरूर एक रचना होगी परन्तु कविता तो कदापि नहीं होगी ।"

श्री अरविन्द इस तरह वेद के काव्य को श्रेष्ठ सत्यदर्शन का काव्य

मानते है जिसमें कवि ऋचा के बाहरी आवरण में सत्य की आभा छिपाये है जिसे उसने अपनी पारदर्शिनी द्रष्टि से देखा है ।

सर्जना के क्षणों में कवि अपने आप से ऊपर उठ जाता है तथा एक विशेष मनःस्थिति में पहुँच जाता है जिसे प्लटो ने दिव्य पागलपन Divine Freenzy कहा । वह इन क्षणों में आविष्ट (Possesed) होकर पैगम्बरीय वाणी में बोलता है – जो विश्वजनीन सत्य होता है ।

निश्चित ही भावी कविता श्री अरविन्द रचित ऐसी अप्रतिम पुस्तक है जो साहित्य के किसी भी गंभीर पाठक और आलोचक को गहन अन्तर्दृष्टि व साहित्य-विवेक प्रदान करने में सक्षम है । साहित्यावलोकन संबंधी यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है ।

योग समन्वय (Synthesis of Yoga)

श्री अरविन्द ने अपने योग-दर्शन में भारत की आध्यात्मिक दृष्टि के साथ पश्चिम की सार्वभौम दृष्टि का समन्वय प्रस्तुत किया है ।

योग का अर्थ है जुड़ाव, एकात्मता, सम्मिलन । आत्मा और परमात्मा का एकीकरण-आत्मा का उत्कर्ष और विकास-पाशविक वृत्तियों का ऊर्ध्वीकरण व उनकी मानवीय व कलात्मक परिणति । सौन्दर्योपासना (लीलाभाव) तथा कलासर्जना वस्तुतः योगवृत्ति का ही विस्तार है ।

योग साधना वह ऐच्छिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति स्वेच्छा से अपनी सहज वृत्तियों का ऊर्ध्वीकरण करता है तथा अपनी बिखरी

हुई ऊर्जा का संचयन कर अपनी क्षमताओं का विकास करता है । इससे उसकी कार्य क्षमता, चिंतन–मनन शक्ति व जीवन विवेक विकसित होता है । इसीलिए कहा गया है – "योग: चित्तवृत्ति निरोध:" अर्थात् बिखरी हुई आंतरिक ऊर्जा का संयमन तथा "योग: कर्मषु कौशलम्" अर्थात् इस प्रकार संचित ऊर्जा के द्वारा कार्य क्षमता बढ़ाना – एकाग्रता प्राप्त करना ही योग के सामान्य जागतिक उद्देश्य हैं ।

योग का चरम उद्देश्य है – आत्मशक्ति का विकास । श्री अरविन्द के अनुसार योग साधना से मनुष्य की चेतना विकसित होकर 'मन' से 'अतिमन' (Supermind) पर जा पहुँचती है जो अति मानव (Superman) के विकास का आधार है । श्री अरविन्द का अतिमानव सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिए ए क उदात्त आदर्श की कल्पना है । जर्मन दार्शनिक नित्शे ने भी अतिमानव की कल्पना की थी जिसकी परिणति हिटलर जैसे विनाकशकारी व्यक्तितत्त्व में हुई, क्योंकि उसका कोई आध्यात्मिक या नैतिक आधार नहीं था ।

श्री अरविन्द का विकासवाद वस्तुत: उत्क्रांति है जो मानव चेतना का विकास है, डार्विन का केवल शारीरिक विकास नहीं विकास के प्रत्येक सोपान पर चेतना के समस्त स्तरों का भी अभ्युत्थान होता है । अरविन्द इस विकास के दो स्वरूप मानते हैं विस्तार तथा समन्वय ।

श्री अरविन्द के अनुसार मानव शरीर के साथ–साथ मन एवं चेतना के विकास की प्रक्रिया 'प्रकृत एवं सहज' है जो अवश्यंभावी है, पर इस कार्य में शताब्दियाँ लग सकती है ।

मनुष्य अपनी स्वेच्छा से, योग–साधना द्वारा, अपनी चेतना का विकास सहज ही कर सकता है ।

इस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति जैसे–जैसे अतिमानसिक चेतना प्राप्त करता जाता है – विश्व में भी दिव्य सत्ता की अभिव्यक्ति अधिकाधिक होती जाती है ।

श्री अरविन्द का दर्शन उनकी विराट व समन्वित योगसाधना की नींव पर खड़ा है जिसके ताने बाने में महर्षि ने सारी योग प्रणालियाँ समन्वित कर उसे मानव के क्रमविकास "विज्ञान" की प्राप्ति के लिए नियोजित किया है ।

श्री अरविन्द की यौगिक प्रत्यक्ष दृष्टि व स्वानुभूति ने हर योगमार्ग व जीनव विधान से सारांश को ग्रहीत कर उसे मधुकोष में पर्यवसित कर दिया जो भागवत जीवन की प्राप्ति का पाथेय है । उनके अनुसार सम्पूर्ण जीवन ही योग है ।

भारतीय योग अपने सार–तत्त्व में प्रकृति की कुछ महान् शक्तियों की एक विशेष क्रिया या रचना है ।

"अगर हम जीवन और योग दोनों को यथार्थ दृष्टिकोण से देखें तो संपूर्ण जीवन ही चेतन या अवचेतन रूप में योग है ।" सम्पूर्ण ब्रह्मांड चिदानन्दसत्ता के अवतरण की पीठिका बनने लगता है । ऐसे व्यक्ति जितनी अधिक संख्या में होंगे, विश्व का परिमार्जन उतनी गति से होगा । प्रकृति

मानो ऐसे दिव्यपुरूष या अतिमानव के अवतरण की प्रतीक्षा में है । स्वयं अरविन्द ने साधना द्वारा 24 नवम्बर सन् 1926 के दिन ऐसी दिव्य चेतना की प्रथम बार धरा पर उतार लाने में सफलता पाई थी ।

श्री अरविन्द ने सावित्री महाकाव्य में इस दिव्य चेतना के अवतरण की कल्पना करते हुए ऐसे अतिमानव का चित्र उपस्थित किया जो विश्व में चेतना के राज्य की नींव रखेगा –

–जब अतिमानव जन्म लेगा प्रकृति के शासक के रूप में, उसकी उपस्थिति जड़ को निर्मित कर देगी, परावर्तित प्रकृति की निबिड़ रात्रि में वह सत्य की अग्नि–प्रज्वलित करेगा और जगत् में सत्ययुग विधि का करेगा प्रसार, मनुष्य तब आत्मा की आवाज की ओर होंगे उन्मुख ।''

अरविन्द दर्शन निरा बौद्धिक तर्क वितर्क नहीं है । यह केवल जानना नहीं है प्रत्युतर करना और होना भी है । अरविन्द ने ज्ञान को क्रियात्मक परिणति प्रदान की, जिससे कि अपेक्षित परिणाम यत्नपूर्वक प्राप्त किया जा सके । योग साधन भी है और साध्य भी । दर्शन तर्क व बुद्धि पर आधारित है, वहीं योग का आधार अभ्यास व अनुभूति है ।

योग गहन आन्तरिक अभीप्सा का क्रियात्मक रूप है । अरविन्द के सम्पूर्ण योग या स्र्वांग दर्शन के अनुसार–शरीर, मन, आत्मा तथा प्राण का सम्पूर्ण निष्ठा के साथ चिदानंद के प्रति समर्पण–योग की प्राथमिक आवश्यकता है । सर्वांग योग वस्तुतः ज्ञान, प्रेम और कर्म तीनों का समन्वय है और इसी के साधन में चैत्यपुरूष का उद्घाटन होता है इस आध्यात्मिक परिवर्तन द्वारा समस्त सत्ता में एक उच्चतर प्रकाश शक्ति तथा आनंद का अवतरण होता है

सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त एक ही चेतना की अनुभूति के कारण, शेष सृष्टि साथ उसका संघर्ष नहीं होगा । इससे सारे विश्व में सुख, शांति, समृद्धि और मानवीय सौहार्द्र सहानुभूति, सहिष्णुता एवं परस्पर सहयोग भाव का स्वतः विकास होगा । विश्व शांति व मानवीय विकास की भूमिका यह सम्पूर्ण योग निर्मित करेगा ।

श्री अरविन्द ने अपनी इस पुस्तक में भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक पद्धतियों का समन्वय करते हुए, भारतीय योग मार्ग की भावी उपादेयता को स्पष्ट किया है ।

मानव चक्र (The Human Cycle)

इस पुस्तक में श्री अरविन्द की इतिहास दृष्टि स्पष्ट हुई है । मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास को वे रेखीय न मानकर चक्रिक मानते हैं, जिसमें मानव के बौद्धिक विकास के साथ-साथ उसकी चेतना के विकास का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है इसे समझने की एक नवीन दृष्टि प्रदान करते हैं ।

श्री अरविन्द ने इतिहास की चक्राकार गति, विशेषतः यूरोप के इतिहास के परिप्रेक्ष्य, को ग्रंथ में समझाते हुए लिखा है कि मानव जाति की प्रगति विविध युगों में विविध मतों के अनुसार हुई है । "मानव समाज कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में से होकर प्रगति करता है जिन्हें क्रमशः प्रतीकात्मक (Symbolic)", आदर्श प्रधान (Typal), परंपरा-प्रधान (Conventional), व्यक्तिप्रधान (Individualistic) तथा अनुभव प्रधान (Subjective) नाम दिया जा सकता है ।"[89] आगामी युग आध्यात्मिक युग होगा जिसमें विश्व का समस्त मानव समुदाय परात्पर में ही जियेगा व कर्म

करेगा । मानव इतिहास का रथचक्र इसी युग की ओर तेजी से गतिशील है । "आध्यात्मिकता जीवन का निषेध कर मनुष्य की प्राणशक्ति को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं करेगी बल्कि वह जीवन के सामने स्वयं भगवान् को प्रकट करेगी, यही उसके रूपान्तर का मूल तत्त्व होगा ।"[90]

अतएव आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य अपने–आपको, व्यक्ति और गति में जीवन तथा मानव–सत्ता की परिपूर्णता के रूप में चरितार्थ करने को प्रयत्न करेगा और यही आत्मा की ऊँचाइयों का आधार बनेगा जो अंत में उच्चतम शिखरों के साथ सारतः एक हो जाएगा । वह शरीर की घृणापूर्वक उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ेगा और न वह प्राणिक सत्ता को तपस्या द्वारा भूखों ही मारेगा, वह चरम रिक्तता या दुःख को आध्यात्मिक जीवन का नियम नहीं समझेगा, वह कला, सौन्दर्य और जीवन के सौन्दर्यात्मक आनंद का अतिनैतिक तरीके से निषेध भी नहीं करेगा, न ही वह विज्ञान और दर्शन को हीन, उपेक्षणीय अथवा भ्रातिपूर्ण बौद्धिक विषय समझकर उनकी उपेक्षा करेगा, यद्यपि विपक्षी अतियों के विरोध में इन अत्युक्तियों की सामयिक उपयोगिता को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता । वह सबके लिए सब कुछ होगा, किन्तु वह सबमें एक साथ उनका सर्वोच्च उद्देश्य और अर्थ भी होगा । '"वह मनुष्य के सामने उसके अंदर स्थित दिव्य तत्त्व को, अंतरस्थ प्रकाश, शक्ति, सौन्दर्य, शुभ, आनंद और अमरत्व के रूप में प्रकट करेगा तथा उसके बाह्य जीवन में भी भगवान् के उस राज्य की स्थापना करेगा जो पहले हमारे अंदर ही प्रकट होता है । वह मनुष्य को उसकी अपनी सत्ता के प्रत्येक भाव में (सर्वभावेन) भगवान को प्राप्त करने और उसमे निवास करने

का रास्ता बतायेगा । मनुष्य चाहे जिस प्रकार भी रहे और कर्म करे, वह उसी में अर्थात् भगवान में, परमात्मा में, अपनी सत्ता के सनातन सत्त्व में निवास करेंगा और कर्म करेगा ।

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते । (गीता) ।[91]

श्री अरविन्द कहते हैं कि विश्व का इतिहास विभिन्न चक्रों से गुजरता हुआ आज इस परिस्थिति व भूमिका पर आ पहुँचा है जहाँ से वह आध्यात्मिक शिखरों के क्षितिजों की ओर यात्रा प्रारंभ कर सकता है । मानवी जाति का यही अनिवार्य भावी है तथा क्रम विकास का यही अगला विवर्तनशील पृष्ठ ।

आपने अपने ग्रंथ के "आध्यात्मिक युग का उदय और विस्तार" नामक अध्याय में कहा है : "तब वह परिवर्तन चरितार्थ हो जाएगा जो मानव-जीवन को उसकी वर्तमान सीमाओं से उन विशालतर और पवित्रतर क्षेत्रों में रूपांतरित करने के लिए तैयार कर देगा, तब पार्थिव विकास ऊपर की ओर शक्तिशाली रूप में प्रेरित हो चुका होगा जो एक दिव्य विकास का केवल एक अस्पष्ट प्रारंभ तथा सुन्दर आश्वासन था"[92]

दिव्य जीवन (Life Divine)

मूलतः अंग्रेजी में श्री अरविन्द द्वारा लिखित इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक का हिन्दी अनुवाद तीन भागों में श्री केशवदेव आचार्य ने किया है । समग्र पुस्तक मुख्यतः निम्न अध्यायों में विभक्त है - मानव अभीप्सा, मानस और अतिमनस्, प्राण का अवरोहण तथा अतिमनस् का आरोहण । श्री

अरविन्द ने गहन अध्ययन, चिंतन, मनन तथा साधना की अनुभूतियों के आधार पर इस पुस्तक की रचना की है जिसमें मानव मन, चित्त, आत्मा, अन्तःचेतना आदि का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए मनुष्य की अतिमनस् चेतना को उतार लाने की अभीप्सा तथा प्रयत्नों का विस्तृत विवरण दिया गया है ।

श्री अरविन्द का कृतित्त्व तीन प्रकार का है – दर्शन व अध्यात्म, साहित्य तथा पत्रकारिता समसामयिक विषय, देश–भक्ति, अनेक लेख व अनुवाद ।

श्री अरविन्द ने मूलतः अंग्रेजी में तथा बंगला में सृजनात्मक रचनाएँ कीं । सम्पूर्ण अरविन्द साहित्य 33 भागों में प्रकाशित हुआ है । द्वितीय खण्ड में नाटक और कहानियाँ छपी है । अधिकांश नाटक यूरोपीय कथानकों पर आधारित है ।

चौथे खण्ड में श्री अरविन्द लिखित कहानियाँ संगृहीत हैं । पाँचवें में कविताएँ तथा आठवें खण्ड में संस्कृत, तमिल, ग्रीक, लेटिन आदि से अनूदित रचनाएँ हैं । श्री अरविन्द ने भारतीय पुराणों और साहित्य का गहन अवगाहन किया था, परिणामतः उनकी उर्दू रचनाएँ इन विषयों पर आधृत हैं ।

इतने विपुल कृतित्त्व को देखकर कहा जा सकता है कि श्री अरविन्द अद्वितीय बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान, कवि, चिंतक और योगी थे जिनका प्रभाव आगामी पीढ़ियों पर जरूर पड़ेगा ।

दर्शन और काव्य

चिंतन के अछूते आयामों की खोज दर्शन है तो अनुभूतियों की सरस सामर्थ्यपूर्ण व सम्प्रेषणीय अभिव्यंजना ही काव्य है । चिंतन के उच्च शिखरों से दर्शन नीचे उतरता है और काव्यरूपी जल में लवण-सा घुलकर जीवन में परिव्याप्त हो जाता है । दर्शन सूर्य की ऊर्जा है तो काव्य वह पर्णहरितयुक्त वृक्ष है जो प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा को पदार्थ में बाँधकर सकल जीवराशि को प्रदान करता है और उन्हें जीवन दान देता है ।

दर्शन जहाँ परम तत्त्व की खोज है जो चिंतन का परिणाम है, साहित्य वहीं पर अनुभूति का आह्लाद और अनुभूति की अभिव्यक्ति है । जब मानव का अन्तःकरण उस चरम व परम की खोज शुरू करता है । वह दर्शन की सीमा में प्रवेश करता है परन्तु जहाँ वह श्रद्धा, विश्वास का संबल लेकर अनुभूति की भूमि पर आरोहण करता है वहीं पर तत्त्वज्ञान की सीमाएँ मानों साहित्य की क्षितिज-रेखा से जा मिलती है । तत्त्वज्ञान वहाँ पर लुप्त हो जाता है और मानव की चिरन्तन अनुभूति पिघले हिम की गंगा बनकर मानव की वाक् निर्झरिणी-सी फूट पड़ती है । यही सत्य मानों गोस्वामी जी के शब्दों में -वन्दे वाणी विनायको' है । विनायक है तत्त्वज्ञान के देवता तथा वाणी - भारती या सरस्वती है । इन दोनों का समवाय या सम्यक् संश्लेषण ही मानों सारा काव्य जगत् दर्शन को अपने आधार रूप में लिये है ।

मानव अनुभूति की चरम प्रेरणा जब वाणी रूप में प्रकट होती है तभी साहित्य का जन्म होता है ।

दर्शन और काव्य एक-दूसरे के विरोधी नहीं अपितु ''शिव-पार्वती'' के युगल की तरह वाणी का अर्थ के युग्म के समान एक-दूसरे में इतने

घुले–मिले है कि उन्हें अर्धनारीश्वर ही कहा गया है । फिर भी यह एक वास्तविकता है कि दर्शन को हमेशा साहित्य की भूमि पर उतार लाने का भगीरथ प्रयत्न हर देश व हर भाषा में हुआ है । दर्शन की जीवन प्रधान प्राणशक्ति को काव्य के रस से सिक्त करने के लिए हर युग में बृहद् प्रयत्न हुए हैं । दर्शन हिमालय की चढ़ाई जैसा कठिन व दुर्गम है तो साहित्य गंगा के पवित्र जल सा सर्व सुलभ है । यही कारण है कि महान् साहित्यकार हमेशा श्रेष्ठ दार्शनिक भी होते हैं । दर्शन के अभाव में कविता की पंक्तियाँ केवल तुकबन्दी रह जाती है, जो कालजयी रचना नहीं बन सकती । नीरस ज्ञानोपलब्धि की सरस अभिव्यंजना ही साहित्य है ।

दर्शन काव्य को स्थायीत्व प्रदान करता है और काव्य दर्शन को सर्व सुलभ बनाता है । श्रेष्ठ दार्शनिक का कवि होना जरूरी नहीं है परन्तु श्रेष्ठ कवि का दार्शनिक होना अपरिहार्य है । दर्शन काव्य को किसी भी मानव का महाकवित्व तब तक सिद्ध नहीं होता, जब तक वह गंभीर दार्शनिक भी समवर्ती रूप से न हो ।

श्री राम का शील, शक्ति व सौन्दर्य वाला मर्यादा पुरूषोत्तम स्वरूप हो, या श्री कृष्ण का मनोहारी लोकरंजक रूप हो–रामायण या श्रीमद्भागवत् में आकर ही वह जनग्राह्य हुआ । एक ओर जहाँ कबीर की अनगढ़ वाणी में समग्र भारतीय साधनात्मक परंपरा अभिव्यक्ति पाती है तो दूसरी ओर गोस्वामी तुलसीदास का सम्पूर्ण काव्य ही दर्शन को जन–जीवन सुलभ बनाने का उपक्रम है । मलिक मोहम्मद जायसी ने सूफी धर्म के प्रेम मार्ग को कथात्मक रूप देकर सर्वसुलभ बनाया तो सूरदास तथा अन्य अष्टछाप कवियों ने वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गीय लीलाभाव की माधुरी का काव्यानुवाद

कर निराशा भरे जीवन को रसाप्लावित किया । वस्तुतः काव्य दर्शन का रसात्मक अनुवाद होता है । भारतीय साहित्य ने मनीषियों की जटिल दार्शनिक प्रपत्तियों को साहित्यरूपी रस-कलश में ढ़ालकर अशिक्षित अर्धशिक्षित व शिक्षित जन समुदाय तक पहुँचाया । इसको और अधिक मधुर गीतिकाव्य बनाकर, भक्त कवि जयदेव (अष्टपदी-गीत गोविन्द), मिथिला कोकिल विद्यापति, मीरा, कबीर, सूर, तुलसी आदि ने जन-जन का कंठहार बनाया । गत आठ सौ वर्षों से इन कवियों की रचनाओं को जनता और गायक गाते हुए रस सागर में गोते लगाते रहे हैं । इन गीतों के माध्यम से उदात्त जीवन-दर्शन सहज ही जन-जीवन में सुरभित मलय पवन-सा व्याप्त हो गया महर्षि अरविन्द उच्च कोटि के विद्वान्, साधक व कवि थे । इन तीनों रूपों की चरम परिणति उनके महाकाव्य सावित्री में देखी जा सकती है ।

सावित्री उनके समस्त दर्शन का जीवंत – काव्यमय दस्तावेज है । इस प्रकार साहित्य को दर्शन की आधारशिला पर खड़ा कर श्रेष्ठ साहित्यकार जिस भावभूमि का सृजन करते हैं वह शताब्दियों तक जनता का अवलम्ब ए वं आश्वासन बन जाती है । महर्षि अरविन्द का बृहदाकार महाकाव्य दर्शन व काव्य का मणि-कांचन योग है विश्व की सांस्कृतिक धरोहर है ।

भारतीय दर्शन का आधुनिकीकरण

भारतवर्ष की यह विशेषता रही है कि जब-जब भी वह जीवन-शक्ति से रहित हुआ तब-तब उसने अंत:शक्ति से पुनः संजीवनी शक्ति प्राप्त की और अपना पुनर्गठन अपने ढंग से किया । भारतवर्ष जब मुस्लिमों से आक्रांत हुआ और तदनन्तर अंग्रेजों की पराधीनता में आया, तभी अपनी

अंतरात्मा की दीप्ति से स्वयं को नवीकृत किया है ।

आधुनिक भारत के पुनर्जागरण के अग्रदूत के रूप मं कतिपय मनीषियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । ये मनीषी निम्न हैं –

1. राजा राममोहन राय, 2. महर्षि दयानंद सरस्वती, 3. स्वामी रामकृष्ण परमहंस, 4. विवेकानंद, 5. गांधीजी, 6. महर्षि अरविन्द, 7. विनोबा भावे आदि ।

राजा राममोहन राय ने भारतीय वैदिक व औपनिषादिक गरिमामयी वाणी को नये संदर्भों में प्रकाशस्तंभ की तरह विशिष्ट स्थान दिलाया एवं उसके प्रकाश में एक ओर जहाँ पश्चिम की स्वस्थ विचारधारा का संश्लेषण विश्लेषण किया वहीं भारतीय समाज की जर्जर–बर्बर परम्पराओं प कुठाराघात किया । ब्रह्म समाज की स्थापना और आपके भाषण व लेख नवभारत के क्षितिज पर नवीन दर्शन लेकर उदित हुए ।

महर्षि दयानंद सरस्वती

राजा राममोहन राय यदि उपनिषद् के ब्रह्म के पास जाकर रूक गये तो उससे आगे बढ़ने का श्रेय हम महर्षि दयानंद सरस्वती को दे सकते हैं । महर्षि ने अपना आधार बिन्दु वेदों को लिया व उसी के प्रकाश में नवभारत के जीवन को नवीन दर्शन प्रदान किया ।

महर्षि दयानंद सरस्वती के व्यक्तित्त्व और श्रेष्ठ कार्यप्रणाली की श्री अरविन्द ने जगह–जगह प्रशंसा की है । वेद के प्रकाश में भारत के पुनर्जागरण के मंत्रदाता के रूप में श्री अरविन्द ने इनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की

है ।

श्री अरविन्द स्वामी दयानंद को एक योद्धा के रूप में देखते हैं जो पृथ्वी पर परमेश्वर का संदेश देने के लिए निर्भय होकर बाधाओं से टकराता है और विजय पर विजय प्राप्त करता है – "जब मैं परमेश्वर के कारखाने के इस दुर्गम कारीगर की मूर्ति का ध्यान करता हूँ तो मेरे सामने झुंड के झुंड चित्र आने लगते है जो सभी चित्र संघर्ष के, कार्य के, विजय के, विजयी परिश्रम के चित्र है । तब मैं स्वयं से कहता हूँ कि यह है दिव्य प्रकाश का सैनिक, परमेश्वर के जगत् का योद्धा, मनुष्यों और संस्थाओं को बनाने वाला शिल्पकार और आत्मा के सम्मुख प्रकृति जो कठिनाइयाँ उपस्थित करती हैं, उनका निर्भीक और अदम्य विजेता ।"

भारतीय दार्शनिक विचारधारा को व्यवहार के क्षेत्र में उतार लाने का सर्वप्रथम श्रेय महर्षि दयानंद सरस्वती को है । जिन विचारों को आगे चलकर स्वामी रामतीर्थ एवं स्वामी विवेकानंद ने व्यवहार में वेदान्त या वेदान्त को व्यावहारिक रूप में प्रतिपादित किया उसका आदि प्रणेता हम महर्षि दयानंद सरस्वती को कह सकते है । इस विषय में श्री अरविन्द कहते हैं –

"महर्षि दयानंद सरस्वती के जीवन में हमेशा इस आध्यात्मिक व्यावहार्यता का शक्तिशाली प्रवाह दिखायी देता है । सर्वत्र उनके नाम पर एक स्वतः स्फूर्त शक्ति और निश्चयात्मकता की छाप है ।"[93]

श्री अरविन्द ने "आध्यात्मिक व्यावहार्यता" का महान् सिद्धान्त महर्षि दयानंद सरस्वती से ग्रहण किया है । महर्षि दयानंद सरस्वती ने वेदों को आधार बनाकर राष्ट्रीय चरित्र की स्थापना की एवं भारत के स्वच्छ ज्ञान आलोक की विश्व-प्रांगण में प्रतिष्ठा कर हमारा राष्ट्रीय गौरव बढ़ाया ।

महर्षि ने यूरोपीय ढंग की वेद-व्याख्याओं के परे हटकर भारतीय दर्शन का जाज्वल्यमान स्वरूप वेदों के दर्शन से प्रकट किया ।

इस तरह वेद एवं उपनिषद् के सही दार्शनिक आशय आधुनिक युग में नवीन आलोक लेकर प्रकट हुआ ।

श्री रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद

महर्षि दयानंद एवं राजा राममोहन राय का अभिप्राय अप्रत्यक्ष और तर्काश्रित था तो श्री रामकृष्ण परमहंस का अभिगम प्रत्यक्ष एवं श्रद्धा पर निर्भर था । उन्होंने अपने ढंग से साधना का माध्यम मार्ग चुना एवं सारे भारतीय दर्शन धर्म एवं आध्यात्मिक सत्यों, इतना ही नहीं वरन् विदेशी धर्मों के सत्यों का प्रत्यक्ष साक्षत्कार किया । परमहंस ने भारत को भक्ति की लोक पावनी गंगा का पुनः संस्पर्श दिया व अपने व्यक्तितत्त्व एवं उपदेशों से भारत में नवप्राणों का संचार किया ।

परमहंस ने न वेद लिये न उपनिषद् । अपने स्वानुभूति पर आधारित जीवन द्वारा ही भारतीय दर्शन को नवीन आयाम प्रदान किया । आपके शिष्य स्वामी विवेकानंद ने आपकी साधनापद्धति एवं वेदान्त के सर्वोच्च सत्यों का समन्वय कर संपूर्ण मानवजाति को "शिकागो सम्मेलन" द्वारा भारतीय महत्

परम्पराओं का परिचय कराया । आपने विश्व का भ्रमण कर मानव मात्र के बंधुत्व को परिपुष्ट किया जो भारतीय दर्शन का ही चिन्तन सत्य है "वसुधैव कुटुम्बकम्" । सर्वधर्मसमन्वय, सेवा, प्रेम और विश्वबंधुत्व की विजयवैजयन्ती कर आपने सिद्ध कर दिया कि भारतीय दर्शन ही तपित तृषित मानव को शान्ति का अमिय पिला सका है । आपके ही शिष्य स्वामी रामतीर्थ ने वेदान्त दर्शन को नवीन ढंग से प्रकट कर उसे भावना के अमृतनीर से सराबोर कर दिया । आपकी वाणी से भारत की चेतना में आत्मगौरव जागा और विदेशों में जागा भारत के प्रति श्रद्धाभाव ।

गांधीजी और श्री अरविन्द

महात्मा गांधी और श्री अरविन्द के विषय में दिनकर जी ने लिखा है : भूमि का स्वर्गीकरण और स्वर्ग का भूमीकरण । महात्मा गांधी और श्री अरविन्द दोनों महापुरूष प्रचण्ड देशभक्ति की लौ हृदय में संजोये थें । आपने स्वदेश की मुक्ति का जो महायज्ञ किया उसी के आनुषांगिक रूप में देश के नवनिर्माणार्थ भारतीय प्राचीन विचारधारा या दर्शन को नवीन आयाम में प्रस्तुत किया । महात्मा गांधी की स्वराज्य की परिकल्पना रामराज्य में परिसमाप्त होती है और श्री अरविन्द की परिकल्पना भारत के विश्व में गौरवपूर्ण स्थान और भूमि पर स्वर्ग का राज्य या भागवत जीवन या सत्ययुग की अवधारणा में प्रस्फुटित होती है । दोनों महापुरूषों ने अपना आधार प्राचीन भारत का गौरव ग्रंथ भगवद्गीता को लिया व उसी के प्रकाश में गाँधीजी ने बहिर्मुखी साधना की तो श्री अरविन्द ने अन्तर्मुखी ।

गांधीजी ने अपने विचारदर्शन में पूर्ववर्ती विचारकों के समस्त सारसंग्रह को सगुंफित कर लिया व भारतवर्ष के नवनिर्माण को अपने ढंग से प्रस्तुत किया । गांधीजी गौ, खादी, हिन्दी, मदिरानिषेध, हरिजनोद्धार, ग्रामोद्धार नारी जागरण व मानव के चरित्र को संगठित करने पर विशेष बल देते है । आपकी स्वराज्य की परिकल्पना "मेरे सपनों का भारत" में सुरक्षित है । गांधीजी ने श्रीराम व श्रीराम के आदर्श चरित्र को भारत के जन-जन का जागरण मंत्र माना । आप रामचरितमानस व गीता के महान् अध्येता थे । कबीर का सादा जीवन, निर्भीक व्यक्तितत्त्व, हिन्दू-मुस्लिम एकता जैसे तत्त्व आपके व्यक्तितत्त्व में घुल-मिल गये थे । आपने कबीर व तुलसी, गीता व रामायण सभी को नवजागरण के संदर्भ में प्रस्तुत किया । इस तरह गांधीजी का सादा व तपोमय व्यक्तितत्त्व हजारों भारतीयों का आदर्श व आराधना बन गया । गांधीजी की विचारधारा में पूर्व व पश्चिम के श्रेष्ठ विचार स्वयमेव संश्लिष्ट हो गये थे । दूसरी ओर श्री अरविन्द ने योग व तप का अन्तर्मुखी मार्ग चुना । श्री अरविन्द ने 1910 से 1950 तक पांडिचेरी में गहन साधना की व भारत के उत्थान के लिये तपोनिष्ठ रहे । आपने भागवतजीवन के साथ भौतिक जीवन की संसिद्धि पर बल दिया । आपका दर्शन पूर्व की श्रेष्ठ प्राचीन विचारधारा का नवीन युग के अनुकूल नियोजन है । आपने वेद, उपनिषद्, गीता व वेदान्त दर्शन को पश्चिम की आदर्शवादी विचारधारा से समन्वित कर आगामी भारत एवं उदित होते विश्व के लिये नवीन रूप में प्रस्तुत किया । अध्यात्म जीवन की सिद्धियों और भौतिक जीवन की उपलब्धियों का सम्यक् समन्वय आपके दर्शन का मेरूदण्ड है । इस तरह गांधीजी व श्री अरविन्द दोनों ही महापुरूषों ने नवजागरण की कड़ी में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है । इन दोनों महापुरूषों के

प्रयत्नों से नवभारत क्रमशः जन्म ले रहा है । भारत ही नहीं, हिंसा व भौतिकवादी भोग के अतिरेक से पीड़ित समस्त मानवजाति इन दोनों महापुरूषों की ओर आशान्वित दृष्टि से देख रही है ।

श्री अरविन्द दर्शन

आधुनिक भारत के चिन्तनशील विचारकों एवं प्रतिभाशाली महापुरूषों में श्री अरविन्द का स्थान हिमगिरि शिखर जैसा अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ है ।

श्री अरविन्द जन्मतः बंगाली थे । वे अपने जीवन के 14 वर्ष इंग्लैंड में बिताकर बड़े हुए थे । वहीं आपने पाश्चात्य साहित्य व दर्शन का गहन अध्ययन एवं मनन किया । भारत लौटते समय वे पूर्णतः पश्चिमी ज्ञान विज्ञान के महान् वैचारिक भण्डार को आत्मसात् किये हुए थे । भारत में आपने बड़ौदा के कॉलेज में प्राध्यापक का कार्य शुरू किया व योगसाधना आरम्भ की । बड़ौदा निवास काल में आपने भारतीय दर्शन, परम्पराओं, तथा विचारधाराओं का अध्ययन किया व कई भारतीय भाषाओं के साहित्य का भी गंभीर अध्ययन किया । इसी काल में वे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े । जेल भी गये । 'वंदेमातरम्' पत्र निकाला ।

भारत की प्रमुख साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों से परिचित श्री अरविन्द अलीपुर बम केस में अलीपुर की जेल में बन्द किये गये । इस जेल अवधि में जो प्रायः एक वर्ष की थी – आपने स्वानुभूति पर

आधारित गीता का नवीन सीरे से मनन किया व उपनिषदों का गहन अवगाहन किया । जेल से छूटकर आप पांडिचेरी (दक्षिण भारत) चले गये व वहाँ तमिल भाषा का गंभीर अध्ययन कर दक्षिण के महापुरूषों के विचारों को आत्मसात् किया । इस प्रकार श्री अरविन्द की विचार त्रिवेणी मे पूर्व के उत्तर-दक्षिण व पश्चिम के समस्त ज्ञान-विज्ञान का सम्यक् सामंजस्य अनायास ही हो गया । श्री अरविन्द ने योगी होने से कई सत्यों का सहज ही साक्षात्कार किया व नये सिरे से हर दार्शनिक विचारधारा का मनन किया ।

श्री अरविन्द के समस्त दर्शन का मूलाधार भगवद्गीता का भागवत प्रकाश है जिसकी साधना पद्धति के प्रकाश में आपने योग-वेदान्त वेद-उपनिषद् - तंत्र व वैष्णव सभी को समन्वित कर लिया । इस तरह श्री अरविन्द दर्शन के मूल स्रोत हमें गीता व उपनिषदों के शिखरों तक ले जाते है । श्री अरविन्द के विषय में डॉ. श्यामबहादुर वर्मा ने ठीक ही कहा है :

"श्री अरविन्द के विचार-दर्शन की सीमा मानवता ही नहीं है । वे उससे भी आगे बढ़ते है । मानवता, राष्ट्र, व्यक्ति, सभी प्राणी, जड़-चेतन आदि उस विचार की परिधि में आते है । यहाँ वेदान्त, सांख्य, योग, पाश्चात्य दर्शन आदि सभी अपना उचित स्थान पाते है । द्वैत, अद्वैत, मायावाद, बौद्ध दर्शन आदि के साथ ही पता नहीं कितनी अन्य दार्शनिक धाराएँ इस भगीरथी में आकर मिली है किन्तु गंगा जैसे अपनी प्रमुखता के कारण सब धाराओं के सम्मिलित स्वरूप में भी गंगा ही कहलाती है, वैसे ही श्री अरविन्द का सत्त्वदर्शन भी वेदान्त ही कहलाता है और अधिक स्पष्टता के लिए उसे 'यथार्थवादी वेदान्त', 'सक्रिय वेदान्त' इत्यादि भी कह

दिया जाता है । तथापि यह तत्त्वदर्शन समचुच तत्त्वदर्शन है, केवल 'फिलॉसफी' नहीं, 'विचारों की बुनाई' मात्र नहीं । यह साधना से अनुभूत सामग्री का बौद्धिक व्यवस्थापन है । अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से विश्व की अनेकता और ब्रह्म की एकता के सम्बन्धों व रहस्यों का विश्लेषण, विवेचन तथा उद्‌घाटन है । यह बौद्धिक उड़ान न होकर परतत्त्व तक के अगणित लोकों की आध्यात्मिक यात्रा का अत्यन्त सजीवता, निष्ठा तथा अन्य अभिव्यक्ति के साथ नवीनतम वर्णन है ।''[95]

श्री अरविन्द की महर्षि दयानंद सरस्वती एवं उनके द्वारा प्रतिपादित वैदिक सिद्धांन्तों के प्रति अपार निष्ठा थी । आपने वेद का मूल आशय आध्यात्मिक माना है व एकेश्वरवाद के सिद्धान्त की भूरि-भूरि श्रद्धापरक प्रशंसा की है । आपका वेद-रहस्य ग्रंथ मानो भारतीय सांस्कृतिक गौरव ग्रंथ की गौरवपूर्ण प्रतिभा द्वारा लिखा गया आध्यात्मिक संविधान है । वेद संहिता भारतवर्ष के धर्म, सभ्यता और अध्यात्मज्ञान का सनातन स्रोत है ।

श्री अरविन्द ने वैदिक प्रतीकों का आवरण हटाकर उनके वास्तविक आशयों को स्पष्ट किया है ।

उपनिषदों के तत्त्वज्ञान के प्रति श्री अरविन्द की गहरी निष्ठा है ।

आपने उपनिषदों के दार्शनिक प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय में कहा है :-

''उपनिषद् शब्द का अर्थ है गूढ़ स्थान में प्रवेश करना । सम्यक् ज्ञान की चाबी मन की निभृत कोठरी में लटक रही है । सम्यक् ज्ञान तर्क आश्रित नहीं है । ऋषियों ने मन की इस निभृत कोठरी में प्रवेश कर वह चाबी प्राप्त

की और अभ्रांत ज्ञान के विशाल राज्य के राजा बने । योग द्वारा ही प्राप्त हो सकता है – साक्षात् दर्शन ।"

श्री अरविन्द परम देशभक्त थे अतः आपके सारे दर्शन की जड़ में भारत का कल्याण एवं विश्व मानवतावाद का मधुर निःस्वन गूंज रहा है ।

श्री अरविन्द की दार्शनिक विचारधारा उनके प्रमुख ग्रंथों में तो प्रतिपादित हुई है; साथ ही आपके भाषण, विविध लेख व छोटे-छोटे ग्रन्थ आपकी विचारधारा के संदेशवाहक प्रदीप्त दीप है ।

श्री अरविन्द स्वयं महाकवि थे साथ ही योगी, महान् अध्येता एवं बहुभाषाविद् व राष्ट्रभक्त मानवतावादी चिंतक थे । इन सारी विशेषताओं के कारण आपके साहित्य में संजीवनी शक्ति एवं नवजीवन देने वाली प्रेरणा अनुस्यूत है ।

श्री अरविन्द इस जगत् को सत्य मानते हैं और कहते हैं कि यह जगत् स्वयं परमात्मा की अभिव्यक्ति है तो फिर असत्य कैसे हो सकता है । "सर्व खल्विदं बह्म" यह सूत्र मानों की अरविन्द के दर्शन की मूल अवधारणा है ।

श्री अरविन्द कहते हैं कि यह विश्व सत् तत्त्व की आत्माभिव्यक्ति, चित् की सृष्टि एवं आनन्द की महायात्रा है । अतएव सच्चिदानंद का ही विस्तार है यह जगत् व जगत् का विस्तार ।

श्री अरविन्द की मान्यता है कि "जीवन इसी 'सच्चिदानंद' को प्राप्त करने के लिए यात्रा करता हुआ आगे बढ़ रहा है जिसे उन्होंने चेतना का क्रम विकास नाम दिया है । जड़ प्रकृति जब अपनी छंदोबद्ध निंद्रा में डूबी रहती

है और उसकी मूक और गंभीर जड़ समाधि में भी उसकी क्रियाशक्ति की व्यवस्थित कर्मधारा को जारी रखने वाली दिव्य आत्मा और दिव्य भावना के विषय में वह अचेतन होती है, तब उस अवस्था में से बाहर निकलकर यह जगत् आत्मा-चैतन्य के प्रति उन्मेषोन्मुख प्राण से अधिक क्षिप्र, विविध और व्यवस्थित छंद में प्रवेश करने की चेष्टा करता है । प्राण से निकलकर यह जगत् मन में ऊपर उठने की चेष्टा करता है, जहाँ व्यष्टि को स्वयं अपना और अपने जगत् का बोध होता है और इस जागृति में विश्व को उसके चरम कर्म के लिये आवश्यक साधन की प्राप्ति हो जाती है, वह आत्मचेतन व्यक्तितत्त्व को पा जाता है । कर्म का अगला गढ़ने वाला सचेतन अतिमनस् है जो स्वयं अतिमानव है । इसलिये हमारे जगत् को मन के परे जाकर उस उच्चतर तत्त्व, उस उच्चतर पद, उस उच्चतर कर्मण्यता में ऊपर उठना अभी बाकी है जहाँ विश्व और व्यक्ति उसको जान और पा जाते हैं ।[96]

श्री अरविन्द कहते हैं कि यह सारी सृष्टि-पृथ्वी से सच्चिदानंद पर्यन्त-मानों सप्त-धामों के रूप में प्रतिष्ठित है जिसके पादतल में भूमण्डल है व शीर्ष पर परमात्मा का ज्योतिर्मय लोक है ।

''पृथ्वी को भागवत् तत्त्व का पादपीठ कहा गया है व द्युलोक को ईश्वरीय सत्ता का शीर्ष स्वीकार किया गया है । इस द्युलोक को ही ब्रह्मलोक या गोलोक या साकेत कहा गया है । क्योंकि ''गो'' शब्द का अर्थ प्रकाश भी है ।''[97]

पृथ्वी की पीठ पर आसीन जीवन का निवर्तित स्वरूप प्रथमत: प्राण में तदनन्तर मन में व अब विज्ञान में पुष्पित होना चाहता है ।

'विज्ञान' यह भगवान् का चतुर्थ धाम या चतुर्थ लोक है जिसे इस्लाम में चौथा आसमान कहा गया है ।

''ये सप्तधाम व सप्तलोक चेतना के सात सोपान हैं जो निम्नलिखित है :

भू – पृथ्वी

भुवः – अंतरिक्ष या प्राण

स्वः – मन या स्वर्ग

महः – विज्ञान

जनः – आनंद

तपः – अलौकिक शक्ति

सत्यम् – सत्''[98]

''वैदिक प्रतीकवाद का एक दूसरा आवश्यक अंग है, लोकों का संस्थान और देवताओं के व्यापार । लोकों के प्रतीकवाद का सूत्र मुझे व्याहृतियों के वैदिक विचार में, 'ॐ भूर्भवः स्वः' इस मंत्र के तीन प्रतीकात्मक शब्दों में और चौथी व्याहृति 'महः' का आध्यात्मिक अर्थ रखने वाले 'ऋतम्' शब्द के साथ जो संबंध है, उसमें मिल गया । ऋषि विश्व के तीन विभागों का वर्णन करते है पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यौ । 'महः' विज्ञान का लोक है । पौराणिक सूत्र में तीन अन्य 'जनः', 'तपः', 'सत्यम्' से मिलकर पूर्ण होते है । परन्तु वेदांतिक और पौराणिक सम्प्रदाय में ये सात लोक आध्यात्मिक तत्त्वों या सत्ता के सात रूपों–सत्, चित्, आनंद, विज्ञान, मनः, प्राण, अन्न या जड़ शरीर को सूचित करते है । इस सिद्धान्त पर मैं वैदिक लोगों की

तद्नुसारी चेतना के आध्यात्मिक स्तरों के साथ एकता स्थापित कर सका और तब सारा ही वैदिक संस्थान मेरे मन में स्पष्ट हो गया ।''

''वैदिक ऋषियों का केन्द्रभूत, विचार था कि मिथ्या का सत्य से, विभक्त तथा सीमाबद्ध जीवन का सम्पूर्णता तथा असीमता से परिवर्तन करके, मानवीय आत्मा को मृत्यु की अवस्था से निकालकर अमरता की अवस्था तक पहुँचा देना । मृत्यु है मन और प्राणसहित शरीर की मर्त्य अवस्था, अमरता है, असीम सत्ता, चेतना और आनंद की अवस्था । मनुष्य मन और शरीर से ऊपर उठकर सत्य की असीमता, 'महः' या 'विज्ञान' में या दिव्यसुख में पहुँचा जाता है । यही वह 'महापथ' है जिसे ऋषियों ने खोजा था ।''[99]

''चेतना के ये सप्तलोक या सप्तधाम पुराण-साहित्य में सप्त व्याहृतियों के रूप में वर्णित है । ये सप्तधाम ही वह सीढ़ी है जिस पर क्रमशः जीव चढ ़ता-चढ़ता परमात्मा के अनंतत्त्व में उठ जाता है ।''

अद्यावधि निवर्तित चेतना के तीन दल खिले हैं जो जड़, प्राण व मन रूप में प्रकट हुए है । मन ही क्रम विकास का अंतिम लक्ष्य नहीं है । श्री अरविन्द की मान्यता है कि चौथा स्तर जो विज्ञान कहलाता है वह पृथ्वी पर प्रकट होने के लिये तैयारी में है । यह चतुर्थ लोक जब प्रकट होगा तब धरती पर देवजाति का जन्म होगा या मानव में देवतत्त्व जागृत हो जाएगा या नर में नारायण प्रकट हो जाएँगे । मानव-जाति का स्वर्णिम भविष्य यही विज्ञानमय पुरूष का प्राकट्य है ।

श्री अरविन्द कहते हैं कि "वह चौथा स्तर पृथ्वी पर वे अपने तपोबल से ला चुके हैं व वह शक्ति धराचैतन्य में अवतरित होकर कार्य कर रही है । यही कारण है कि उस पवित्र व ज्योतिर्मय शक्ति के दबाव से सारा पृथ्वी का कूड़ा-करकट जो मानव चेतना में पड़ा है उभर गया है । पृथ्वी के पार्थिव धरातल को भी उस पवित्र शक्ति ने झकझोर दिया है । यही कारण है कि सारा भूमण्डल उठते हुए कचरे के विषाक्त धुएँ से भर गया है और इसी से सारा भौतिक जीवन आज विराट् अस्तव्यस्तता के पुलिन पर खड़ा है । परन्तु इस अस्तव्यस्तता एवं भयंकर ध्वंस व विनाश के बीच से नयी मानवता जन्म लेगी जो स्वर्णिम मानवता होगी जिसे देवजाति या भागवतजाति या भगवान की भूतिपाद जाति कहा जाना समीचीन होगा ।"[100]

श्री अरविन्द ने वैयक्तिक मुक्ति या सिद्धि के लिए प्रयत्न नहीं किया । समग्र विश्व एवं समग्र मानव जाति का उद्धार ही उनका अभिप्रेत था ।

योग ही वह जगत् राजमार्ग है जिसके प्रभाव से प्रकृति का रूपान्तरण होगा व पृथ्वी की माटी में नवचैतन्य का प्रादुर्भाव होगा । श्री अरविन्द की योग विषयक धारणा मात्र आसन या प्राणायाम न होकर सर्वांगीण योग या अध्यात्मक योग की महत्तर प्रणाली है । इस अध्यात्म योग में निष्कामकर्म व पूर्णरूप से आत्मसमर्पण की राह दिखायी गयी है । इस समर्पण व निष्काम कर्मयोग के साथ श्री अरविन्द ने समस्त योगमार्गों का समन्वय साधित कर उसे मानव-मात्र के लिए अनुकरणीय बना दिया है ।

श्री अरविन्द की मान्यता है कि "विश्व की अब तक की प्रचलित दार्शनिक प्रणालियाँ राजनीति के विविध प्रयोग एवं धर्म के विविध स्वरूप

मानव को चिरस्थायी आनन्द या शान्ति नहीं दे पाये हैं । राजनीति मानव को सुखी बनाने में असफल हुई है, धर्म पंगु व दर्शन निष्क्रिय । इस समय तो मानव को अध्यात्म का महत्तर प्रकाश ही राह दिखा सकता है ।

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योर्तिगमय
मृत्योर्मा अमृतंगमय ।''[101]

''धर्म ग्रन्थ, धर्म मन्दिर, धर्मसंघ, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र इत्यादि मनुष्य जाति की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध हुए हैं क्योंकि बाह्याचारों में संलग्न वे आत्मा की शुद्धि व शक्ति की अवहेलना कर बैठे हैं जो बात मानवजाति की रक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक है । धर्मांधता तथा बाह्याचारों का युग लद गया । अब तो आत्म-साक्षात्कार ही करना होगा । अध्यात्म के विकास द्वारा ही सद्वृत्तियों का विकास संभव है ।''

इन अध्यात्म के सिद्धान्तों व अनुभूतियों में ढ़ला मानव-समाज चिरस्थायी शान्ति लाभ करेगा । मनुष्य को सतत अन्तर्मुखी बनना होगा ।''

श्री अरविन्द अपने एक निबन्ध ''हमारा योग और उसका उद्देश्य'' में इन विचारों का सविस्तार प्रतिपादन करने के उपरान्त कहते हैं कि जब यह योग कुछ लोगों में सिद्ध हो जाएगा तो उनके संक्रमणशील प्रभाव से सारी मानव-जाति को लाभ होगा । मानों वह परमात्मा का भूमि पर क्रमवर्धमान अवतरण होगा ।

''हमें इस जगत् में इस दिव्य विद्युत शक्ति के एक डायनामो की तरह

कार्य करना होगा तथा उस विद्युत–शक्ति को थरथराहट और जगमगाहट के साथ सारी मनुष्य जाति के अंदर संचारित करना होगा, जिसमें जहाँ कहीं हम में से कोई भी एक आदमी खड़ा हो वहाँ उसके चारों ओर हजारों मनुष्य भगवान की ज्योति और शक्ति से भर जाएँ, भगवानमय और आनंदमय बन जाएँ ।''[102]

इस संसिद्धि के लिए जहाँ मानव को अपनी ओर से प्रयत्न करना है वहाँ भगवान् की कृपा शक्ति या माता की भी सहायता प्राप्त होनी चाहिए । श्री अरविन्द अपनी 'माता' पुस्तक में इस प्रक्रिया में मातृशक्ति की अपरिहार्य सहायता की चर्चा करते है व उनको पूर्णतया करने को कहते हैं । भगवती माता ही सारे विध्नों का उच्छेद कर मानव के पार्थिक मृत्तिकापात्र में स्वर्ग का ज्योतिर्मय अमृत उंड़ेलकर उसे दिव्यत्व में ढाल देगी ।

मानव का विज्ञानमय मानव के रूप में रूपान्तरित होना ईश्वरीय योजना है किन्तु इसके लिए यह प्रथम आवश्यकता है कि हमारे मन में तीव्र अभीप्सा उत्पन्न हो ।

मनुष्य को कमल के फूल की तरह कीचड़ से ऊपर उठना होगा । दिव्य रश्मियों से ऊर्जा तथा तेज प्राप्त करने के लिए अपनी सारी पंखुड़ियाँ खोलनी होगी । ऐसा करने पर ही आत्म–साक्षात्कार संभव है ।

महर्षि अरविन्द के अनुसार–मानव चेतना का विस्तार, ऊर्ध्वीकरण व उदात्तीकरण अपरिहार्य है । विश्वशांति की यही सच्ची नींव होगी ।

श्री अरविन्द के योग और दर्शन का सार है – वह गतिशील चेतना

जिसे अतिमनस् (सुप्रामेंटल) कहा जाता है ।

श्री अरविन्द का लक्ष्य यह था कि अतिमनस् को अवतरित कर ए क नयी मानवता की सृष्टि की जाये जो 'उच्च आत्मपूर्णता' का आनंद ले और प्रत्येक क्षेत्र में दिव्य-यापन करें । इसी लक्ष्य को लेकर उनहोंने अपने आप को तथा माताजी को 'अतिमानसिक' स्थिति तक उठाकर नयी मानव जाति के लिए आरंभिक केन्द्र तैयार करने का प्रयत्न किया । इसका कार्य मनुष्य की दिव्य अन्त:प्रकृति को मूर्त रूप देना है माताजी ने कहा है : ''हमारा साधारण लक्ष्य है विश्व में 'विकासशील समन्वय' लाना और परस्पर विरोधी तत्त्वों में 'समस्वरता' (Harmony) पैदा करना । धरती पर इसे प्राप्त करने के लिए मानव एकता की बहुत जरूरत है और इसके लिए जरूरी है कि सबके अंदर एक और अविभाज्य 'दैवी तत्त्व' जागृत हो उठे ।''

'सावित्री' महाकाव्य में अरविन्द दर्शन मूर्त हो उठा है । इसके अतिरिक्त अरविन्द जी ने समय-समय पर अनेक छोटी-बड़ी कविताएँ लिखीं, जो उनकी साधनात्मक अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करती है । उदाहरणार्थ :

''स्वर्गानुरक्त, सैकत-तट पर तरू खड़ा एक,
नभ ओर भुजाओं-सी शाखाएँ फैलाता ।
हो विफल किन्तु जड़ धरती के आकर्षण से,
ऊपर न मृत्तिका की माया से उठा पाता ।
यह है आत्मा, मानव स्वरूप जिसकी शाश्वत

– स्वर्गिक उड़ान

है नीचे रोके हुए खड़े, रजपाश-बद्ध मन, देह, प्राण ।

अनुवाद : नीरज

प्रस्तुत कविता में वृक्ष को प्रतीक बनाकर 'जड़-चेतन' के सम्बन्ध को व्यक्त किया गया है ।

ऑरोविल की स्थापना

'ऑरोविल' का अर्थ है : 'उषा नगरी' । 5 दिसम्बर, 1950 को श्री अरविन्द ने महासमाधि ले ली । पर उनका कार्य यथावत् जारी रहा । माताजी ने उसे पूर्ण करने का संकल्प लिया ।

विश्वभर में फैले अरविन्द के अनुयायियों ने महर्षि द्वारा प्रतितपादित मार्ग को प्रशस्त करने और विश्व-सभ्यता केन्द्र की स्थापना हेतु 1960 में "श्री अरविन्द सोसायटी" की स्थापना की । इस संस्था ने पोंडिचेरी के पास ऑरोविल नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय नगर बसाने की योजना बनाई जिसका शिलान्यास 28 फरवरी, 1968 को हुआ ।

'ऑरोविल' भावी विश्व का एक स्वप्न है जिसमें विश्व का कोई भी नागरिक रह सकता है और उच्च मानवीय मूल्यों का संधान कर सकता है । माता जी के शब्दों में, "ऑरोविल एक ऐसा सार्वभौम नगर होगा जहाँ सब देशों के नर-नारी शान्ति की ओर बढ़ते हुए सामंजस्य के साथ रह सकें । वह राष्ट्रीयता, जाति, धर्म, वर्ण, मत-मतांतर, राजनीति आदि से परे होगा । ऑरोविल का उद्देश्य है - मानव एकता को सिद्ध करना ।"

इस नगर की नींव में विश्वभर के देशों के प्रतिनिधियों ने अपने–अपने देश की मिट्‌टी और अपनी प्रमुख नदी का जल अर्पित किया । विश्व एकता का यह प्रतीक है ।

ऑरोविल एक आत्मनिर्भर नगर है जिसमें कृषि, डेयरी, बागबानी, पशु–चारण, शिक्षा से लेकर संस्कृति और आध्यात्म का कार्य सुचारू रूप से सहज की चलता रहता है । यहाँ कोई नागरिकता नहीं होती । सारे निवासी इस अध्यात्म नगरी के निवासी होते हैं । ऑरोविल मानों श्री अरविन्द के विश्व–संस्कृति के निर्माण का साकार रूप है ।

ऑरोविल वस्तुतः एक दार्शनिक कवि की कल्पना का साकार रूप है जहाँ सारा विश्व एक 'नीड़' बन जाता है और सारे मानव उसके पक्षी बन जाते हैं ।

संदर्भ संकेत

(1) श्री अरविन्द (जीवनी) लेख़क – नवजात पृ.1 नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया

(2) श्री अरविन्दो हिमसेल्फ़ एण्ड ऑन मधर पृ.8, अदिति कार्यालय, पॉंडिचेरी ।

(3) क्रांति योगी श्री अरविन्द लेख़क – श्यामशंकर वर्मा पृष्ठ–35 ।

(4) श्री अरविन्द प्रेरणा लेख़क – इन्द्रसेन पृष्ठ–10

(5) धी ड्राफिटन ऑफ़ पेसिव रेसिस्टेन्स श्री अरविन्द – पृष्ठ –38

(6) श्री अरविन्द जीवन एवं दर्शन भाग–1 पृष्ठ – 13
श्री अरविन्द सेन्टर मैसूर

(7) भारतीय राष्ट्रीयता का आग्रह डॉ. कर्णसिंह पृ.141

(8) श्री अरविन्द – एकलेख़ : 1907 श्री अरविन्द आश्रम पोंडिचेरी

(9) 'वन्देमातरम्' पत्रिका – 1908 पृष्ठ–161

(10) हिस्ट्री ऑफ़ फ्रिडम मुवमेन्ट इन इंडिया – मजमुदार & मजमुदार पृष्ठ – 72

(11) 'वन्देमातरम्' साप्ताहिक – 22 सितम्बर 1907

(12) बी. ए. स्मिथ - अर्ली हिस्ट्री ओफ़ इन्डिया - पृ.5

(13) श्री अरविन्द, अवतार, हिन्दी अनुवाद - अनुवादक - चन्द्रदीप पृ.75 श्री अरविंद आश्रम, अदिति कार्यालय - 1965

(14) ऋग्वेद - 10/81/1, तैतरीय उपनिषद - 3/1

(15) श्री अरविन्द के पत्र प्रथम भाग. अनु. चंद्रदीप त्रिपाठी, पृ.78

(16) श्रीमद् भगवत् गीता अध्याय - २ श्लोक - 19/20

(17) श्री अरविन्द के पत्र - हिन्दी अनुवाद - प्रथम भाग पृष्ठ 81

(18) श्री अरविन्द दर्शन - डॉ. ए.सी. भट्टाचार्य - पृष्ठ-43

(19) श्रीमद् भगवत गीता अध्याय-2 श्लोक - 22

(20) श्री अरविन्द के पत्र भाग-प्रथम पृष्ठ-28

(21) श्री अरविन्द के पत्र भाग-प्रथम पृष्ठ-83

(22) श्री अरविन्द के पत्र भाग-प्रथम पृष्ठ -234

(23) श्री अरविन्द 'अवतार' - हिन्दी अनुवादक चन्द्रदीप - पृ.10

(24) श्रीमद्द भगवत् गीता अध्याय - 4, श्लोक 7/8

(25) श्री अरविन्द 'दिव्यजीवन' भाग प्रथम - अनुवादक - केशवदेव आचार्य पृष्ठ–387

(26) श्री अरविन्द 'दिव्यजीवन' भाग प्रथम - अनुवादक - केशवदेव

(27) श्री अरविन्द - धी सिन्थेसिस ऑफ योग पृष्ठ - 283

(28) श्री अरविन्द के पत्र भाग–2, पृष्ठ - 78

(29) 'श्री अरविन्द महायोग' - 'श्री सुन्दरम्', पृष्ठ–52 गुजराती प्रकाशन

(30) 'श्री अरविन्द' सिन्थेसिस ऑफ योग - पृष्ठ –330

(31) इविनिंग टाक्स, प्रथम भाग, पृ.168

(32) वही, पृ.168

(33) इविनिंग टॉक्स, द्वितीय भाग, पृ.224

(34) श्री अरविन्द : अपने तथा श्री माता जी के विषय में, पृ.107 । वैष्णवीय असंतुलन पर इविनिंग टाक्स, भाग 2, पृ.227 पर भी विचार व्यक्त किये गये हैं ।

(35) श्री अरविन्द : अपने तथा श्रीमाता जी के विषय में, पृ.85-86

(36) सिन्थेसिस ऑफ योग, पृ.46

(37) माधव पंडित, साधना इन श्री अरविन्दोज योग, पृ.31-32

(38) माधव पंडित, साधना इन श्री अरविन्दोज योग, पृ.36-41

(39) श्री अरविन्द : अपने तथा श्रीमाता जी के विषय में, पृ.75

(40) श्री अरविन्द : अपने तथा श्रीमाता जी के विषय में, पृ.75

(41) ऑन योग, पार्ट 2, टोम बन पृ.615 ।

(42) टॉक्स विद श्री अरविन्दो, प्रथम भाग, पृ.146 ।

(43) वही, पृ.25 ।

(44) टॉक्स विद श्री अरविन्दो, प्रथम भाग, पृ.25

(45) वही, पृ.25 ।

(46) श्री अरविन्दो आर द एडवेंचर आफ कांशियसनेस, पृ.63

(47) वही, पृ.65

(48) लाइट्स ऑन योग, सरेण्डर एण्ड ओपेनिंग, पृ.46

(49) रेमिनिसैसेज एण्ड एनक्डोट्स, पृ.162

(50) लेटर्स, भाग 2, पृ. 8

(51) थोट्स एन्ड एफारिज्म्स

(52) वही, पृ.70

(53) श्री माँ, प्रश्न और उत्तर, भाग 3, पृ.1

(54) योग समन्वय, पृ.6

(55) थॉट्स एंड एफारिज्म्स, पृ.38

(56) टॉक्स विद श्री अरविन्दो, प्रथम भाग, पृ.55

(57) लेटर्स आन योग, सेण्टेनेरी वाल्यूम, पृ.693

(58) थाट्स एंड एफारिज्म्स, पृ.76

(59) वही, पृ.76

(60) टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम भाग, पृ.184-85

(61) श्री अरविन्द : अपने तथा श्रीमाताजी के विषय में, पृ.218

(62) करेस्पांडेंस विद श्री अरविन्दो, पृ.233

(63) टाक्स विद श्री अरविन्दो प्रथम गण, पृ.171

(64) 'गोड्स लेबर' कविता का अंश ।

(65) श्री अरविन्दो द होप आफ मैन में उद्धृत, पृ.466-467

(66) इण्टग्रल फिलोसाफी ऑफ श्री अरविन्दो, जार्ज एलन एंड अनविन, पृ.125

(67) फयूचर पोयट्री, पृ.400

(68) श्री अरविन्दो केम टु मी, पृ.114

(69) सावित्री, प्रथम खंड, पृ.301-306

(70) वही, पृ.311

(71) सावित्री, प्रथम खंड, पृ.311

(72) सावित्री, द्वितीय खंड, पृ.39-40

(73) सावित्री, द्वितीय खंड, पृ.222

(74) वही पृष्ठ–226

(75) सावित्री द्वितीय खंड, पृ.228

(76) वही, पृ.316

(77) लेटर्स ऑन सावित्री 1934 का पत्र

(78) श्री अरविन्द : सावित्री : एक आख्यान और प्रतीक भूमिका सं. : पृष्ठ 7

(79) डॉ. श्यामबहादुर वर्मा के ग्रन्थ 'श्री अरविन्द साहित्य दर्शन' से गृहित ।

(80) डॉ. श्यामबहादुर वर्मा के ग्रन्थ 'श्री अरविन्द साहित्य दर्शन' से गृहित । पृष्ठ – 64-65.

(81) डॉ. श्यामबहादुर वर्मा के ग्रन्थ 'श्री अरविन्द साहित्य दर्शन' से उद्धृत । पृष्ठ - 74.

(82) भावी कविता : श्री अरविंद (लय और गति) - पृष्ठ 17

(83) वही - पृष्ठ 23

(84) भावी कविता : श्री अरविंद - पृष्ठ 31.

(85) भावी कविता - पृष्ठ 126.

(86) भावी कविता - पृष्ठ 127.

(87) भावी कविता - पृष्ठ 129.

(88) भावी कविता - पृष्ठ 131.

(89) भावी कविता - पृष्ठ 133.

(90) मानव चक्र : श्री अरविन्द : पृष्ठ 2.

(91) वही, पृष्ठ 263.

(92) भगवत गीता

(93) मानव-चक्र, श्री अरविन्द (आध्यात्मिक उद्देश्य और जीवन), पृष्ठ संख्या - 263-264.

(94) वही, पृष्ठ संख्या 307.

(95) श्री अरविंद साहित्य दर्शन : डॉ. श्याम बहादुर वर्मा, पृष्ठ संख्या 62.

(96) दिव्य जीवन : विश्व में मानव – श्री अरविंद, पृष्ठ 62.

(97) वही, पृष्ठ 71.

(98) दिव्य जीवन – श्री अरविन्द – पृष्ठ 60.

(99) वही, पृष्ठ 60.

(100) वेद रहस्य – श्री अरविन्द – पृष्ठ 66.

(101) उपनिषद् – शान्तिपाठ (चाक्षुषपनिषद्)

(102) हमारा योग और उसका उद्देश्य : श्री अरविन्द : पृष्ठ 38.

द्वितीय अध्याय
'पंतजी' का व्यक्तित्त्व और कृतित्व
'सुन्दरम्' का व्यक्तित्व और कृत्तित्व

(अ) 'पंतजी' की जीवन–यात्रा और काव्य–साधना

(ब) 'सुन्दरम्' की जीवन–यात्रा और काव्य–साधना

द्वितीय अध्याय
पंतजी का व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि
तूने कैसे पहचाना
कहाँ कहाँ हे बाल विहंगिनि
पाया यह स्वर्गिक गाना ?

– 'प्रथम रश्मि'[1]

हिमालय की प्रकृति-रमणीय अधित्यका में अल्मोड़ा नगर से पच्चीस मील की दूरी पर कौसानी नामक एक नन्हा-सा ग्राम बसा हुआ है । इस प्रदेश की सौंदर्यस्थली को यदाकदा भारतीय स्विट्जरलैण्ड के नाम से पुकारा जाता है । उक्त कौसानी ग्राम से 20 मई, 1900 के दिन एक जमींदार के परिवार में श्री सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म हुआ । इन भावी कवि के पिता श्री गंगादत्त पंत एक सुशिक्षित व्यक्ति थे । उनका पालन-पोषण प्राचीन हिन्दू परंपरा के वातावरण में हुआ था । अपने सात बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में वह पर्याप्त समय लगाते थे । सुमित्रानंदन इन बच्चों में सबसे छोटे थे । प्रसव के समय ही सुमित्रानंदन की माता सरस्वती देवी का देहान्त हुआ और बच्चे का पालन-पोषण पूर्णतया उसकी दादी को सौंप दिया गया । पंतजी ने लिखा है : ''आँखें मूँदकर जब अपने किशोर जीवन की छायावीथी में प्रवेश करता हूँ, तो पहाड़ का घर ... छोटा-सा आँगन पलकों में नाचने लगता है ... चबूतरे पर बैठा मैं पढ़ता हूँ और ... गोरी बूढ़ी दादी की गोद में सिर रखकर,

साँझ के समय, दन्तकथाएँ और देवी-देवताओं की आरती के गीत सुनता हूँ । बड़ी परिहासप्रिय है मेरी दादी । उनकी क्षीण, दंतहीन कंठ-ध्वनि ... पहाड़ी झुटपुटे में अब भी.... गूँज रही हैं ।''[2] पंतजी की दादी ने ही इस संवेदनशील बालक के सम्मुख लोककथाओं, दन्तकथाओं एवं पौराणिक कथाओं का वह ऐन्द्रजालिक संसार उद्घाटित कर दिया, जिसकी सृष्टि अतिसमृद्ध लोक-कल्पना ने की थी । रामलक्ष्मण, कृष्णार्जुन तथा अन्य अनेक देवी-देवताओं एवं वीर-नायकों के आदर्शों, उनके पराक्रमों तथा जन-कल्याण के हेतु उनके द्वारा किए गए महान् संग्रामों और अद्‌भुत रमणीय काव्यपूर्ण आख्यानोपाख्यानों ने बालक पंत की कल्पनाशक्ति पर प्रभाव डाला, उसकी चेतना में भारतीय जनता की अतिसमृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति जीवंत रूचि को जाग्रत कर दिया । भावी कवि के लिए ग्रन्थ बचपन से ही चिर-सहचर और संगी-साथी बन गएँ ।

परन्तु जन्मभूमि की अतिमनोहारिणी प्रकृति ने बालक की कल्पना - शक्ति पर जो प्रभाव डाला, वह और किसी भी प्रकार से संभव था । स्वयं पन्तजी ने लिखा है : ''मेरे प्रबुद्ध होने से पहले ही प्राकृतिक सौन्दर्य की मौन रहस्यभरी अनेकानेक मोहक तहें, अनजाने ही एक के ऊपर एक अपने अनन्त वैचित्र्य में, मेरे मन के भीतर जमा होती गई ।''[3] जन्मभूमि के अनूठे प्राकृतिक सौन्दर्य की स्मृतियाँ युवक कवि ने 'आत्मिका' (1918) शीर्षक रचना में इन शब्दों में अंकित कर दी हैं :

हिमगिरि प्रान्तर था दिग् हर्षित, प्रकृति क्रोड़ ऋतु शोभा कल्पित,
गंध गुँथी रेशमी वायु थी, मुक्त नील गिरि पंखों पर स्थित !
आरोही हिमगिरि चरणों पर रहा ग्राम वह मरकत मणि कण,
श्रद्धानत, आरोहण के प्रति मुग्ध प्रकृति का आत्मसमर्पण !

पंतजी ने जन्मभूमि के विषय में लिखते समय कहा है कि ''मेरी माँ की मृत्यु मेरे जन्म के छः-सात घण्टे के भीतर ही हो गई थी, पर कौसानी की गोद मुझे माँ की गोद से भी अधिक प्यारी रही है ।''[4] उपरोक्त 'आत्मिका' शीर्षक कविता में निम्नलिखित पंक्तियाँ आती हैं :

प्रकृति क्रोड़ में छिप, क्रीड़ाप्रिय, तृण तरू की बातें सुनता मन,
विहगों के पंखों पर करता पार नीलिमा के छाया वन ।
रंगों के छींटों के नवदल गिरि क्षितिजों को रखते चित्रित,
नव मधु की फूलों की देही मुझे गोद भरती सुख विस्मृत !
कोयल आ, गाती, मेरा मन जाने कब उड़ जाता बन में,
षड् ऋतुओं की सुषमा अपलक तिरती रहती उर दर्पण में -
ऋषियों की एकाग्र भूमि में मैं किशोर रह सका न चंचल
उच्च प्रेरणाओं से अविरत आन्दोलित रहता अंतस्तल ![5]

पहाड़ी झरनों-स्रोतों की तेज दौड़, जल-प्रपातों की ध्वनि, पर्वतीय चरागाहों की रंगबिरंगी मनोहारिणी क्रीड़ा और आँखों को चौंधियाने

वाले दूरस्थ रजत हिमशिखरों के श्रवण-दर्शन से प्रभावित भावी कवि बचपन से ही अजरामर प्रकृति-सौन्दर्य के रहस्यों को समझने - बूझने और उनका उद्धाटन करने में प्रयत्नशील रहा ।

ग्रन्थ-पठन और प्रकृति की चिर सन्निधि के कारण पंतजी बचपन से ही एकांतवास के अभ्यस्त हो गए । उन्होंने लिखा है कि "मैं एकांतप्रिय और आत्मस्थ हो गया ।"[१] हाथ में प्रिय पुस्तक को लिए हुए वह दिनो-दिन कौसानी के चतुर्दिक स्थित पहाड़ियों एवं घाटियों में घूमते रहते और प्राकृतिक सौंदर्य के नये नये रूपों के दर्शन करते । 'कूमाँचल' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं :

छुटपन से विचरा हूँ मैं इन धूप-छाँह शिखरों पर

दूर, क्षितिज पर हिल्लोलित-सी दृश्यपटी पर निःस्वर

हल्की गहरी छायाओं के रेखांकित से पर्बत

नील, बैंगनी, रक्त, पीत, हरिताभ वर्ण श्री छहरा

मोहित अन्तर में भर देते आदिम विस्मय गहरा,

अन्तरिक्ष विस्फारित नयनों को अपलक रख तद्वत् ।[6]

शैशव से ही साथ देने वाले इस चतुर्दिक् सौंदर्य ने भावी कवि की प्रतिभा के विकास को प्रभावित किया, यह स्वाभाविक ही था ।

पिता के घर का वातावरण भी साहित्य एवं कला के प्रति पंतजी की प्रारम्भिक रूचि को जाग्रत कराने में सहायक रहा । भावी कवि अपने बड़े भाई के ग्रंथ-संग्रह में उपलब्ध ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ते न अघाता । पंतजी के यह भाई बड़े ही प्रतिभाशाली थे ।

पिता के घर में बराबर लोगों का ताँता बँधा रहता । अनेकानेक सगेसंबंधी और इष्ट-मित्र, साहित्यिक और संगीतज्ञ, विद्वान और धर्म-सेवक महीनों-महीने आतिथ्यशील एवं उदारचेता गंगादत्त पंत के यहाँ डेरा डाले रहते । घर में समय-समय पर विविध तीज-त्यौहार मनाए जाते । इन अवसरों पर पारिवारिक साहित्य-संगीत सभाओं, लोकनृत्यों, गीतपाठों आदि का आयोजन किया जाता । पंतजी के बड़े भाई कालिदास विरचित 'मेघदूत' एवं 'शाकुन्तल' का पाठ करते और स्वरचित कविताएँ भी सुनाते । पंतजी के पिता बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे । उनके घर में 'भगवद्‌गीता' तथा 'रामायण' का पाठ नित्यप्रति हुआ करता था । घरेलू उत्सव-त्यौहारों के दिन कौसानी-निवासी और आसपास के पहाड़ी युवक-युवतियाँ आकर समूहगीत, नाच-गान, खेलकूद आदि प्रस्तुत करते । पंतजी ने लिखा है : ''कौसानी में पिताजी के घर के वातावरण में भी मुझे .... एक संगति तथा लय मिलती रही हैं जिसने, सम्भवतः, मेरे भीतर उन संस्कारों का पोषण किया जो आगे चलकर मेरे कवि-जीवन में सहायक हुए ।''[7]

प्राय ग्यारह वर्ष की उम्र तक पंतजी की पढ़ाई ग्राम्य प्राथमिक पाठशाला में हुई । इसके उपरान्त पिता ने उन्हें आगे की शिक्षा के लिए अल्मोड़ा भेज दिया । हृदय-प्रिय ग्राम्य-जीवन के वियोग को निभाना

बालक पंत को बहुत कठिन अनुभव हुआ । वे लिखते हैं : 'कौसानी मेरे लिए स्वप्नों की रजत-हरित झील-सी थी, जिससे अलग होकर मेरे प्राण बालू में मछली की तरह छटपटाते रहते थे ।''[२] वह बड़ी उत्सकुता से जाड़ों की लम्बी छुट्टियों की प्रतीक्षा मे रहते और उनके आरम्भ होते ही ''पिंजरे से विमुक्त पंछी की भाँति गाँव की ओर झपट पड़ते ।''[8]

शैशव के पीछे यौवन का आगमन हुआ - पंतजी के जीवन में उनकी रूचियों तथा मनविन्यासों का उदय होने लगा । धीरे-धीरे वह नागरिक जीवन के अभ्यस्त होते गए । युवक पंतजी की रूचियों का क्षेत्र विस्तृत होता गया । वे लिखते हैं : ''सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव अल्मोड़े में मेरे मन में पहले-पहल श्री स्वामी सत्यदेव के विचारों तथा भाषणों का पड़ा, जो सप्ताह में दो-एक बार अवश्य ही सुनने को मिल जाते थे ।''[9] धार्मिक उद्‌बोधन संस्था 'आर्यसमाज' के मातृभूमि के पुनरूत्थान संबंधी विचार युवक पंत क बेचैन कर देते और उनकी संवेदनशील आत्मा में उनकी प्रतिध्वनियाँ उठतीं । अल्मोड़े में 'आर्यसमाज' द्वारा संचालित सार्वजनिक ग्रंथालय में नियमित रूप से वे जाते रहे ।

अल्मोड़े में पंतजी ने अपनी साहित्यिक शक्ति को प्रयोगान्वित करना आरम्भ किया । उनके शब्दों में ''कौसानी में मेरे मन में साहित्य-प्रेम के बीज पड़ ही चुके थे, अल्मोड़ा आकर वे पुष्पित-पल्लवित होने लगे ।''[10] सन् 1912 में जाड़ों की लम्बी छुट्टियों में उन्होंने 'हार' नामक एक खिलौना उपन्यास लिख डाला । इसका

शीर्षक दो अर्थ रखता है - 'पराजय' और 'पुष्पमाला' । राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के उभार के पूर्व का अर्थात् वर्तमान शती के दूसरे दशक का यह समय था ।

'हार' शीर्षक उपन्यास में, जो कि पंतजी की प्रथम और युवकोचित अपक्व कृति थी, उनके तत्कालीन विचारों, मन:स्थितियों एवं मानव-जीवन का अर्थ समझ लेने की दिशा में उनकी प्रयत्नशीलता का प्रतिबिम्ब अंकित हुआ है । भाग्यहीन तथा पीड़ित जनता की निष्कपट, नि:स्वार्थ सेवा-सहायता से महत्तर एवं सुन्दरतर और कुछ नहीं है - पंतजी की उक्त रचना का यही प्रधान स्वर है । उपन्यास का नायक असफल प्रेम की व्यथा अनुभव कर और जीवन के स्वप्न को टूटता हुआ देखकर साधु बन जाता है । पर संसार से वह मुँह नहीं मोड़ सकता । अपने चारों ओर दु:ख एवं पीड़ा का साम्राज्य देखकर वह भाग्यहीन जनता की सेवा पर अपना जीवन सर्वस्व निछावर कर देने की प्रतिज्ञा कर लेता है । दरिद्र एवं गृहहीन लोगों के लिए आश्रम चलाने और उनका दु:खभार हलका करने के प्रयत्नों में वह जीवन की सार्थकता एवं सुगमता देखता है ।

पंतजी ने अपनी पहली कृति की कथावस्तु के रूप में एक साधु के जीवन को चुना, यह कोई संयोग की बात नहीं थी । अपने शैशव-काल से ही पंतजी कौसानी में उन साधु-संन्यासियों से मिला करते थे, जो उनके आतिथ्यशील पिता के यहाँ पधारते थें । इनमें हृदयपूर्वक मानव-सेवा के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति भी हुआ करते थे । अल्मोड़े में

इन धर्मपरायण लोगों से मिलने-जुलने और उनके उपदेश सुनने के पंतजी के हृदय में एक विशेष प्रभाव पड़ा ।

प्राय: इसी काल में पंतजी ने अपनी काव्य-शक्ति को आज़माना आरम्भ किया । पहली कविता उन्होंने अपने भाई के नाम एक पत्र के रूप में सन् 1915 में लिखी । सगे संबंधियों से स्वीकृति और प्रशस्ति पाकर वे प्रोत्साहित हुए और उन्होंने काव्य-सृजन-क्षेत्र में अपने प्रयोग जारी रखे ।

उस समय के तरूण साहित्यिक श्री श्यामाचरण दत्त पंत और इलाचन्द्र जोशी के परिचय और सान्निध्य से पंतजी की काव्य-प्रतिभा के विकास में एक बड़ी सीमा तक सहायता मिली । उक्त साहित्यिकों के संपादन में उस समय अल्मोड़े में दो हस्तलिखित साहित्यिक पत्रिकाए ँ निकलती थीं, जिनमें पंतजी की रचनाएँ प्राय: नियमित रूप से देखने को मिल सकती थीं । पंतजी की उस समय की सफलतम् रचनाओंमें से एक छोटी-सी कविता थी -'शोकाग्नि और अश्रुजाल' जो 'सुधाकर' नामक पत्रिका के सन् 1917 के मई मास के अंक में प्रकाशित हुई थी । कवि के परिवर्तनशील मनोविन्यास, चारों ओर फैले हुए दु:ख एवं उत्पीड़न- जनित अस्पष्ट अनुभव और निराशा एवं उदासी के भाव इस रचना में कूट-कूटकर भरे हुए हैं ।

कविता का भाव इस प्रकार है -

जो शोक अग्नि से अति ज्वाला कराल उठती
वह अश्रु बिन्दु जल के क्यों रूप में बदलती ?
क्या वह नहीं बताती संबंध जल-अनल में
क्या ? वह तुम्हें जलाता औ' मैं तुम्हें डुबाता ।[11]

पर काव्य-साधना के आरम्भिक काल में, जैसा कि स्वयं पंतजी ने कहा हैं, सबसे बड़ा प्रभाव उन पर भारत में उस समय प्रसिद्ध हिन्दी कवि श्री मैथिली शरण गुप्त तथा श्री हरिऔध और बँगला गद्य-लेखक श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की रचनाओं का पड़ा ।

इन प्रारम्भिक कविताओं से ही विशिष्ट स्वच्छंदतावादी शैली ए वं मानवीकरण की ओर पंतजी का झुकाव दृष्टिगोचर होता है । आगे चलकर यही उनकी काव्य-शैली का व्यवच्छेदक लक्षण बन गया ।

इष्ट-मित्रों एवं सगे-सम्बन्धियों से प्रोत्साहन पाकर पंतजी ने 'गिरजे का घण्टा' शीर्षक कविता को मूल्यांकन के लिए 'जन-न्यायालय' में प्रस्तुत करने का निर्णय किया । रचना की पाण्डुलिपि उन्होंने श्री मैथिलीशरण गुप्त की सेवा में भेज दी । पंतजी के अपने शब्दों में ''उन्होंने (श्री मैथिलीशरण गुप्त ने) अपने स्वभावगत सौजन्य से मुझे कुछ प्रोत्साहनात्मक शब्द लिखे ।'' पर जब पंतजी ने यह कविता प्रकाशनार्थ 'सरस्वती' पत्रिका को भेजी, तो पत्रिका के संपादक श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ने, जो उस समय के एक कठोर आलोचक एवं गण्यमान्य विद्वान थे, उसे अस्वीकृत कर लौटा दिया ।

परन्तु इस 'प्रथम ग्रासे मक्षिकापात' से पंतजी निरूत्साहित नहीं हुए । उन्होंने सन् 1916-18 के कालखण्ड में लिखी हुई अपनी सारी कविताएँ एकत्रित कर उनके प्रकाशन की तैयारी की । पर इस कार्य में भी वह सफल न हो सके, क्योंकि छात्रावास में लगी आग में इन कविताओं की पाण्डुलिपियाँ जलकर भस्म हो गईं । फिर पंतजी को अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में से जो भी कंठस्थ थीं, वे आगे चलकर कुछ परिवर्तनों के साथ 'वीणा' (1927) 'गुंजन' (1932) शीर्षक संग्रहों में प्रकाशित हुईं ।

सन् 1917-18 में पंतजी की रचनाएँ प्रयाग की 'मर्यादा' और मेरठ की 'ललिता' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं ।

काव्य-साधना-पथ पर प्रथम चरण रखने के समय से ही पंतजी को साहित्य विषय में रूढ़िवादी दृष्टिकोण के पृष्ठपोषकों के खुले विरोध का सामना करना पड़ा । इसके प्रमुख कारण थे - पंतजी के नवाभिमुख मनोविन्यास और काव्यसृजन के धिसे-पिटे मानकों से दूर रहने की दिशा में उनके प्रयत्न । पंतजी ने लिखा हैं : ''अल्मोड़े में मुझे स्मरण है कुछ समवयस्क साहित्यिकों ने मेरे प्रच्छन्न विरोध में एक दल या गुट बना लिया था । मेरी अनेक आलोचनाएँ तब गुप्त नामों तथा उपनामों से हस्तलिखित पत्र-पत्रिकाओं में निकलती थीं ।''[12] पंतजी की संयमशीलता, संकोचशीलता, एकांतप्रियता, असाधारण वस्त्रपरिधान तथा सजधज का कई बार गलत मूल्यांकन किया जाता था और ये उनके घमण्ड तथा अहंमन्यता के लक्षण माने जाते थे ।

सन् 1918में पंतजी वाराणसी चले गये । हिन्दू संस्कृति के इस प्राचीन केन्द्र का साहित्यिक एवं सामाजिक जीवन उन दिनों उत्साह से ओतप्रोत था । कहना न होगा कि इस नगर में एक वर्ष के निवासकाल का उदयोन्मुख कवि पर बड़ा ही प्रभाव पड़ा ।

पंतजी और उनके भाई, जो उनसे साथ ही वाराणसी चले आए थे, हिन्दू कालेज के प्राध्यापक श्री शुकदेव पांडे के घर पर रहने लगे । प्राध्यापक महोदय ने युवा कवि की साहित्यिक रूचियों को हर प्रकार से विकसित करने के प्रयत्न किये । पंतजी श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्रीमती नायडू की रचनाएँ पढ़ने में मग्न रहने लगे ।

उन्होंने लिखा है : ''मिसेज नायडू का शब्द-संगीत मुझे तब बहुत अच्छा लगता था.... उनकी अनेक प्रकृति-सौंदर्य तथा प्रेम-संबंधी कविताएँ तब मुझे कंठाग्र थीं ।'' वाराणसी में प्रथम बार उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि', 'राजा', 'डाकघर', 'विसर्जन' आदि रचनाएँ अंग्रेजी में अनूदित रूप में पढ़ीं । हिन्दी साहित्य के उत्तर-मध्ययुगीन (रीतिकालीन) देव, केशवदास, मतिराम, पद्माकर, सेनापति, बिहारीलाल आदि कवियों की रचनाएँ भी उन्होंने तल्लीन होकर पढ़ीं । वह लिखते हैं : ''द्विवेदी-युग के कवियों की बोझिल कविताओं की तुलना में रीति-काव्य के लघु-पद-रचना माधुर्य ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया ।''[13]

पर इधर ऊषा का आगमन होता है सूर्य की प्रथम रश्मि के साथ-साथ धरती पर जैसे देवी-देवता उतर आते हैं । पुष्पों के अर्धस्फुट

अधरों को चूमकर वे उन्हें स्मित के पाठ पढ़ाते हैं । सबसे पहले जाग उठते हैं विहग-शिशु । अपनी आनन्दमयी चहक और मोह-भरे गीतों के साथ वे नवोदित दिवस का स्वागत करते हैं । उनके स्वरों से मंत्र-मुग्ध- सा होकर कवि पूछ बैठता है :

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि,
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनि !
पाया यह स्वर्गिक गाना ? (2-73)[14]

निंद्रा से जाग्रत हो रही प्रकृति, ऊषा नएं दिन के जन्म की जो प्रतिभाएँ इस कविता में अंकित हैं, वे पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट तथा विशिष्टता के साथ भले ही न हों, पर किसी एक सीमा तक अवश्य ही नए, वास्तविक जीवन के विषय में कवि के स्वप्नों का संकेत देती हैं ।

खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि,
खिली सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पंदन, कंपन औ' नव जीवन
सीखा जग ने अपनाना ।[15]

वाराणसी में कवि के परिचितों का मण्डल बहुत-कुछ विस्तृत हुआ । वह समय-समय पर विविध साहित्यिक तथा सामाजिक संस्थाओं की सभा-गोष्ठियों में उपस्थित रहने लगे । एक प्रसंग ने उनके मन में विशेष प्रभाव डाला । कवीन्द्र रवीन्द्र वाराणसी पधारे थे । उन्होंने

थियासाफिकल सोसाइटी में आयोजित एक छात्र-सभा में अपना 'शरदोत्सव' शीर्षक नाटक पढ़ सुनाया । पंतजी बड़े ही मुग्ध होकर रवीन्द्र का मधुर स्वर सुनते रहे और उनके मुखमण्डल को निहारते रहे - वह हमारे युवक कवि के स्वप्न-मंदिर की मूर्ति जो थे । बचपन से ही पंतजी की तीव्र इच्छा थी कि स्वयं कवीन्द्र रवीन्द्र के समान बन जाएँ ।

''रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व का प्रभाव तो मन में पड़ा ही, काले चोगे में उनकी लम्बी गौरवपूर्ण आकृति, बड़ी-बड़ी आँखें, सुनहली कमानी का चश्मा, सुन्दर लम्बी दाढ़ी, सिर पर ऊँची मखमली टोपी सब-कुछ बड़े आकर्षक तथा अद्भुत प्रतीत हुए । पर इससे भी अधिक प्रभाव मेरे मन में उन भाषणों का पड़ा, जो उस अवसर पर उनकी प्रतिभा, प्रसिद्धि तथा विद्वत्ता के बारे में इधर-उधर सुनने को मिले थे । कवि इतना महान् व्यक्ति हो सकता है और उसे विश्‍व में इतना बड़ा सम्मान मिल सकता है, इन बातों से कवि-कर्म के प्रति मन में अधिक महान् धारणा एवं गंभीर आस्था पैदा हुई । उनकी पुस्तकों से भी अधिक तब उनकी कीर्ति तथा व्यक्तित्व की गरिमा ने मेरे भीतर कविता के प्रति अनुराग के मूलों को सींचकर दृढ़ बनाया ।[५]

वाराणसी में पंतजी ने प्रथम बार युवकों की काव्य प्रतियोगिता में भाग लिया । यह प्रतियोगिता हिन्दू विश्‍वविद्यालय में आयोजित हुई थी । प्रतियोगिता के लिए विषय दिया गया था - 'हिन्दू विश्‍वविद्यालय ।' संभवतः दो घंटे का समय और कम-से-कम बीस पंक्तियाँ लिखने

का आदेश था । प्रतियोगिता में पंतजी की रचना सर्वश्रेष्ठ सिद्ध और 'जय-नारायण हाईस्कूल' में चाँदी का कप गया ।

सन् 1916 में माध्यमिक पाठशाला की परीक्षा देकर पंतजी अपने हृदयप्रिय कौसानी ग्राम को लौट आए । यहाँ छुट्टियों के काल में उन्होंने कई कविताओं की रचना की । ये कविताएँ आगे चलकर (सन् 1927 में) 'वीणा' शीर्षक संग्रह में प्रकाशित हुईं । कौसानी के इस निवास-काल में पंतजी ने 'ग्रंथि' नामक एक प्रगीत-मुक्तक की भी रचना की । इन रचनाओं में हमें कवि के उन भावों एवं मनोविन्यासों की प्रतिध्वनियाँ सुनाई देती हैं, जिनका उद्भव एवं विकास उनके वाराणसी के निवास-काल में हुआ था । पंतजी स्वयं स्वीकार करते है कि' 'विणा' में संगृहीत रचनाओं में संभवत: रवीन्द्र के भावलोक की अस्पष्ट छाया हो .... जबकि 'ग्रंथि' की शैली में संभवत: हिन्दी रीतिकाव्य तथा संस्कृत कवियों की शब्द-योजना का आभास हो ।''[16]

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि पंत-काव्य के कुछ अन्वेषक बहुत बार उन विभिन्न प्रभावों पर अत्यधिक बल देते हैं, जो उनके मतानुसार पंतजी की काव्य-साधना के विकास का स्वरूप-निर्धारण करते हैं । परन्तु पंतजी के काव्य-साधना-पथ के प्रारंभिक चरणों अर्थात् उनके अध्ययन-काल के वर्षों तक में ये प्रभाव न उतने निर्णयकारी थे और न नि:संदिग्ध ही । इस संदर्भ में स्वयं पंतजी के शब्दों का उल्लेख करना अनुचित न होगा : ''अब मैं निष्पक्ष दृष्टि से कह सकता हूँ कि मेरे उपर्युक्त अध्ययन के प्रभाव के अतिरिक्त भी 'वीणा', 'ग्रंथि'

आदि रचनाओं में और भी बहुत-कुछ मिलता हैं, और पर्याप्त मात्रा में मिलता है, जो केवल मेरा अपना हैं ।''[17]

सन् 1919 की जुलाई में पंतजी पहली बार प्रयाग आए । पंतजी को यह नगर बड़ा ही प्रिय रहा । उन्हीं के शब्दों में वह उनके लिए अपना घर या गृह-नगर और कौसानी के बाद सबसे हृदयप्रिय स्थान बन गया । यहीं उन्होंने देखा कि भारत के अतीत और वर्तमान जैसे घुल-मिलकर एकाकार हो गए हैं । उनके सम्मुख सहस्रों वर्ष पुराना भारत खड़ा हो गया । अज्ञात काल के देश के कोने से पवित्र प्रयाग पहुँचनेवाले लाखों यात्रिकों का अनवरत प्रवाह उनहोंने देखा । धार्मिक जनता के मन में 'प्रयाग' का नाम शताब्दियों से बना हुआ है और साथ-साथ गंगा-यमुना के पावन जल की अद्‌भुत शक्ति के विषय में कट्‌टर विश्वास भी । इन्हीं नदियों के तटवर्ती टीलेदार प्रकृति रमणीय समतल पर प्रयाग नगर बसा हुआ है । संवेदनशील युवक, गंगा-तट पर एकत्रित सहस्र-सहस्र यात्रिकों के कंठों से घंटों प्रार्थनाएँ एवं स्तोत्रादि सुनता रहता और देखता रहता गंगा-स्नान करते हुए यात्रिकों के समूह- के-समूह । फिर वह अध्ययन के लिए जल्दी-जल्दी कालेज में वह दर्शन एवं इतिहास के विषय में व्याख्यान सुनता, संस्कृत एवं अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन करता और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ा करता । उन दिनों पत्र-पित्रकाओं में उपनिवेशवादी दमनचक्र, अत्याचार और भारतीय जनता की अधिकारहीनता के विरूद्ध निषेध का स्वर अधिकाधिक बल तथा निश्चय के साथ गूँज रहा था ।

प्रयाग में कालेज के अध्ययन-काल के विषय में पंतजी लिखते हैं :

''प्रयाग आने के पश्चात् मेरे संस्कृत साहित्य के ज्ञान में अधिक अभिवृद्धि हुई । कालिदास की कविताओं का मुझ पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा । कालिदास की उपमाओं में तो एक विशिष्टता तथा पूर्णता मिली ही, उसकी सौंदर्य-दृष्टि ने मुझे विशेष रूप से आकृष्ट किया । कालिदास के सौंदर्यबोध की चिर-नवीनता को मैं अपनी कल्पना का अंग बनाने के लिए लालायित हो उठा । उन्नीसवीं शती के कवियों में कीट्स, शैली, वर्ड्सवर्थ तथा टैनिसन ने मुझे गंभीर रूप से आकृष्ट किया । कीट्स के शिल्प-वैचित्र्य, शैली की सशक्त कल्पना, वर्ड्सवर्थ के प्रांजल प्रकृति-प्रेम, कालरिज की असाधारणता तथा टैनिसन के ध्वनिबोध ने मेरे कविता संबंधी रूप-विधान के ज्ञान को अधिक पुष्ट, व्यापक तथा सूक्ष्म बनाया । इन कवियों की विशेषताओं को हिन्दी काव्य में उतारने के लिए मेरा कलाकार भीतर-ही-भीतर प्रयत्न करता रहा ।''[18]

प्रयाग उन दिनों भारतीय साहित्यिक जीवन का एक प्रधान केंद्र बना हुआ था । युवक कवि पंतजी यहाँ साहित्यिकों की सभा-गोष्ठियों में उपस्थित रहते और नगर के प्रतिष्ठित साहित्यिकों के भाषण एवं कविताएँ सुनते । सन् 1916 के नवम्बर मास में पंतजी ने प्रथम बार कवि-सम्मेलन में भाग लिया । सम्मेलन में एकत्रित कवियों को कविता के लिए जो विषय दिया गया था, वह था - 'स्वप्न' । इस विषय पर पंतजी की लिखी कविता का श्रोताओं पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा ।

'सरस्वती' पत्रिका के दिसम्बर मास के अंक में यह 'स्वप्न' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई । 'सरस्वती' में कविता के प्रकाशित होने का अर्थ यह था कि भारत के प्रमुख कवियों में हमारे कवि की गणना होने लगी ।

कुछ मासों के पश्चात् प्रयाग में एक और बड़ा कवि–सम्मेलन हुआ, जिसमें पंतजी ने अपनी 'छाया' शीर्षक कविता प्रस्तुत की । हिन्दी के वयोवृद्ध कवि श्री हरिऔध ने सम्मेलन का सभापतित्व किया था । सम्मान्य अतिथि और श्रेष्ठ कवि के नाते उनके गले में भारतीय परंपरा के अनुसार फूलों का गजरा डाला गया था । पंतजी लिखते हैं : ''मेरा कविता–पाठ सुनकर श्री हरिऔधजी अपनी सहृदयता के कारण इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने बीच ही में उठकर अपने गले से लम्बा फूलों का गजरा उतारकर मेरे गले में डाल दिया । श्रोताओं ने करतलध्वनि से उसका समर्थन कर मुझे उत्साहित किया था । उन दिनों की ऐसी अनेक घटनाएँ मन में अपनी कृतियों के प्रति आत्मविश्वास जगाकर मुझे आशा और बल प्रदान करती रहीं ।''[19]

सन् 1916-1922 में भारत भर में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम की लहर दौड़ पड़ी । सन् 1916 की वसंत में अमृतसर में अंग्रेज उपनिवेशवादियों की गोलियों की बौछार हुई, शांतिपूर्ण प्रदर्शन में भाग लेने वाले कई देशभक्तों के लहू से भारत की भूमि रक्तरंजित हो उठी । सारा देश आंदोलन की रौ में आ गया । राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष में दिन–प्रति–दिन विशाल जनसमुदाय सक्रिय रूप से सम्मिलित होता गया । भारत में उस समय गांधीजी के विचारों का अधिकाधिक प्रभाव

पड़ता जा रहा था । सन् 1920 में उन्होंने असहयोग आंदोलन आरम्भ किया । इन्हीं वर्षों में अनेकानेक अग्रगामी भारतीय लेखक जनकार्य के लिए संघर्ष पथ पर अग्रसर हुए ।

अमृतसर में निःशस्त्र प्रदर्शनकारियों पर किए गए पाशविक अत्याचारों के विरूद्ध अपना निषेध व्यक्त करने के लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अंग्रेजों द्वारा उन्हें दी गई नाइट की उपाधि का प्रकट रूप में त्याग कर दिया और प्रेमचन्दजी ने सरकारी नौकरी छोड़ दी । देशभक्ति की भावना से प्रेरित नवयुवकों ने उपनिवेशवादी शासन की यंत्रणाओं तथा मनमानी के निषेधस्वरूप गांधीजी की पुकार पर सरकारी शिक्षालयों में पढ़ना बन्द कर दिया ।

सामाजिक जीवन से एक प्रकार से दूर, प्रेरणादायी प्रकृति-जगत् में मग्न रहने वाले पंतजी जैसे कवि के लिए भी उन दिनों बढ़ती हुई तूफ़ानी घटनाओं के वातावरण से अलिप्त रहना असंभव था । सन् 1921 में गाँधीजी के आह्वान पर पंतजी ने अपने अनेक सहपाठियों के साथ कालेज छोड़ दिया ।

परन्तु राजनीतिक कार्य में अपना जीवन लगाने के विचार से वह दूर ही रहे । उन्होंने लिखा है : ''राजनीति के लिए मेरी कभी भी अभिरूचि नहीं रही । कालेज के बंधन से मुक्त हो जाने पर भी मैंने अपना समय पूर्ववत् अध्ययन-मनन में ही व्यतीत किया ।''[20] हाँ, यह सही हैं कि कुछ समय तक वह अपने भाई के साथ 'इंडिपेंडेन्स' पत्र का प्रतिलेखन करते रहे । श्री मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रकाशित यह समाचारपत्र

उन दिनों अवैध घोषित कर दिया गया था ।

कालेज छोड़ देने के उपरान्त पंतजी को अपना सारा समय अपने प्रिय कार्य, अर्थात् काव्य-सृजन में लगाने का अवसर मिला । सन् 1922 में अजमेर में उनकी रचनाओं का पहला छोटा-सा संग्रह 'उच्छ्वास' प्रकाशित हुआ । तब इसकी 500 प्रतियाँ निकली थीं । पंतजी की इस प्रथम पुस्तिका को रूढ़िप्रिय आलोचकों के कठोर प्रहर सहने पड़े थे । उसे किसी ने 'प्रेटी नानसेंस' बताया, तो किसी ने 'बीसवीं सदी का महाकाव्य !' पर श्रीधर पाठक जैसे सचमुच महान् साहित्यिकों से हमारे निर्भय और नवप्रयोगकारी कवि की निरंतर प्रोत्साहन ही मिलता रहा ।

असहयोग आन्दोलन

अभी परीक्षा भी न होने पायी थी कि गाँधी जी के आह्वान पर 1921 के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने हेतु उन्हें मेयो सैन्ट्रल कालेज छोड़ना पड़ा । यह वह समय था जबकि प्रयाग का वातावरण राजनीति से आन्दोलित था ।

गाँधीजी के दर्शन

पंत झमेलों से दूर रहते थे परन्तु महान् व्यक्तियों से वे सदैव प्रभावित रहे । प्रयाग के आनंद भवन में गाँधीजी से भेंट के सम्बन्ध में स्वयं पंत ने लिखा है -

"जिस भव्य आकृति को सामने उच्च मंच पर बैठे हुए देखा उससे मेरे मन में एक अज्ञात प्रकार का संतोष प्रवाहित हुआ । जैसे अपने देश के किसी चिर-परिचित सत्य को या प्राचीन कथाओं में वर्णित उदात्त जीवन-आदर्श को आँखें मूर्तिमान रूप में, अपने सामने शान्त मौन एकाग्र भाव में प्रतिष्ठित देख रही हो । स्वच्छ खादी से विमंडित एक दुबली-पतली, दीर्घ, ताम्रवर्ण तपः क्लिष्टमूर्ति - जैसे शरद् ऋतु के शुभ्र मेघों से घिरा हुआ युग संध्या का स्वर्ण शुभ्र सूर्य-बिम्ब-वह इन समस्त दृष्टियों और हृदय की भावनाओं का लक्ष्य बन गये थे ।"[21]

जीवन संघर्ष :

सन् 1922 से 26 का समय पंत के लिए विचार एवं संघर्ष का समय था । इसके अतिरिक्त पंत के घर 'देवीभवन' के बिक जाने तथा दो वर्ष के भीतर भीतर परिवार के एक दर्जन से अधिक सदस्यों की मृत्यु ने पंत पर जो प्रभाव डाला उसका सहज अनुमान लगाया जा सकता हैं । इस सम्बन्ध में शान्ति जोशी लिखती हैं -

"जून सन् 1926 में देवी भवन के तीन भाग छत्तीस हजार रूपये में बिक गये फिर साल भर के अन्दर ही चौथा व पाँचवाँ भाग एवं बैठक और बैठक के कमरे छब्बीस हजार में बिक गये । खरीदने वालों में तीन वे लोग थे जिनसे कर्ज लिया गया था और चौथे फुफेरे भाई शिवदत्त जी थे । देवी भवन बिकने की निर्मम घटना सम्भवतः अनजाने ही पंत के मन में घर कर गयी ... पंत के भाई रघुवरदत्त जी, बहन माधवी और रूक्मिणी तथा रघुवर जी और हरदत्त जी की बड़ी

लड़कियाँ तथा दो चचरे भाइयों आदि को मिलकर दो साल के अन्दर लगभग एक दर्जन से अधिक परिवारजनों की मृत्यु हो गयी ।''[22] यही नहीं सन् 1928 ईस्वी. में पंतजी के पिता का भी स्वर्गवास हो गया ।

''वस्तुतः सन् 1922 ईस्वीं तक का काल पंतजी के अन्तर्जीवन का काल है । वह वैचारिक संघर्ष, व्यापक गहन अध्ययन और आंतरिक अनुभूतियों का काल है । इस काल में सन् 1926 तक वैचारिक संघर्ष की प्रमुखता रहीं और सन् 1926 से सन् 1931 ईस्वी तक सूक्ष्म अनुभूतियों की । सन् 1926 ईस्वी से अनेक प्रकार के आंतरिक अनुभव अपने आप ही ज्ञान के विभिन्न स्तरों को पुस्तकों के पृष्ठों की भाँति पंत की आँखों के सामने खोलने लगे ।''[23]

कालकांकर नरेश के भाई सुरेश सिंह से भेंट :

कवि पंत कालाकांकर के राजा के भाई कुँवर सुरेश सिंह के सम्पर्क में आए । यहाँ वे 'रूपाभ' के सम्पादक हुए तथा वे सात- आठ वर्ष ऐसे वातावरण में रहे जिसने हिन्दी पत्रकारिता में विशेष भूमिका का अवसर प्रदान किया । संक्षिप्त में हम स्वीकार कर सकते हैं कि -

''सन् 1926 से 28 का पारिवारिक संकट तथा कालाकांकर निवास पंतजी के कवि हृदय को यथार्थ से अवगत कराने के लिए निमित्त रहे हैं । वास्तव में सन् 1926 से 1940 ईस्वी तक का काल उनके जीवन का वह महत्त्वपूर्ण काल है, जिसने उन्हें ठोस धरती पर चलना सिखाया, उनकी सुकुमार कल्पनाओं, आदर्शों को ऊबड़-खाबड़ राहों, कंटकाकीर्ण मार्गों एवं जीवन की विषमताओं का अनुभव करा

उनकी काव्य चेतना को मानवीय संवेदनाओं के संस्पर्श से अनुप्राणित किया । जीवन की असह्य वेदना तथा ग्रामीण दु:ख दारिद्र के गहनतम अनुभव ने उन्हें बताया कि पल्लवकालीन मृदु–मर्मरपूर्ण जीवन का सौंदर्य काव्य सत्य नहीं है ।''[24]

ग्रामीणों से सम्पर्क व जीवन यथार्थ से परिचय

कालाकांकर में उन्हें ग्रामीणों के साथ रहने और उनके जीवन को निकट से देखने तथा अनुभव करने का अवसर प्राप्त हुआ । इसी जीवन ने पंत को नया जीवन दर्शन दिया होगा तथा उनके यथार्थ बोध का कारण कालाकांकर की भूमि ही रही होगी । जन सामान्य की दैन्यता का यथाथ बोध पंत जी को यहीं प्राप्त हुआ ।

कालाकांकर और नक्षत्र

कालाकांकर में गंगा तट पर स्थित छोटी सी कुटीर 'नक्षत्र' पंत का आवास था । उन्होंने गांव से मिले हुए पलाश वन के बीच एक टीले पर बने हुए छोटे बंगले को अपने रहने के मिमित्त चुना और उसका नाम नक्षत्र रखा । पंत से कालाकांकर आकर मिलने वाले मित्रों में नरेन्द्र शर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, शांतिप्रिय द्विवेदी, निर्मल जी, श्री भुवनेश्वर, निराला, रामनरेश त्रिपाठी, भगवतीचरण वर्मा, हितैषी जी, रामचन्द्र टण्डन, सियाराम शरण गुप्त, महादेवी वर्मा, जैनेन्द्रकुमार जैन, मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. नगेन्द्र, सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनन्द तथा मि. ऐरनसन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । अपने मिलने वालों से पंत जी बड़ी आत्मीयता से मिलते थे । कालाकांकर नरेश के भाई सुरेश

सिंह के अनुसार – "श्री पंत जी थोड़े ही दिनों में इस प्रकार हमसे घुल–मिलकर हमारे परिवार के एक अभिन्न प्राणी हो गये कि उनकी दो–चार दिनों की अनुपस्थिति भी हम लोगों को खलने लगती । शिकार तथा नौका विहार से लेकर राजनीतिक सभाओं और एलेक्शन तक में हम लोगों का साथ न छूटता । वे गर्मियों में कुछ दिनों के लिए अलमोड़ा चले जाते थे । अतः मैंने भी हर साल अलमोड़ा जाने का नियम–सा बना लिया था । हम लोग कभी पन्ना की ओर चले जाते और कभी रीवां की ओर । ग्वालियर के साहित्य में भाग लेने के लिए भी हम दोनों साथ ही गये थे । इस प्रकार उनके साथ मेरे जीवन के इस वर्ष कितने आनन्द से बीते हैं उसकी तुलना हमारे जीवन के सारे सुखों से भी नहीं हो सकेगी ।"[25] सन् 1934 ईस्वी की ग्रीष्म में राजा साहब कालाकांकर का स्वर्गवास हो गया । फलस्वरूप कालाकांकर का वातावरण अस्त–व्यस्त हो गया । पंत पुनः अलमोड़ा चले आए । किन्तु सन् 1936 ई. में सुरेश सिंह के अनुरोध पर वे अलमोड़ा से पुनः कालाकांकर चले आए और एक लम्बे समय तक यहीं रहे ।

नाट्यकार उदयशंकर से भेंट, श्री अरविन्द आश्रम की यात्रा

सन् 1942 ई. में पंत जी की भेंट नाट्यकार उदयशंकर से हुई एवं वे उनके साथ कानपुर, लखनऊ, आगरा तथा बम्बई हो आए । इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ दिन अरविन्द आश्रम में रहने का अवसर भी मिला ।

बच्चन के साथ 'राडेलकी' में आवास

सन् 1947 ई. में वे प्रयाग में 'राडेलकी' में कवि हरिवंश राय बच्चन के साथ रहने लगे ।

आल इंडिया रेडियो (आकाशवाणी) से सम्बद्ध

पंत जी क्रमशः सन् 1950 ई. से सन् 57 ईस्वी तक प्रत्यक्ष रूप से आल इंडिया रेडियो से सम्बद्ध रहे एव इस अवधि में आकाशवाणी ने उनसे पूरा-पूरा लाभ उठाया । पंत जी ने आकाशवाणी को निखारा ।

अब वे प्रयाग में रहने लगे थे और प्रयाग की भूमि मानो उनके लिए स्थायी निवास स्थान सिद्ध हुई ।

पुरस्कार और उपाधियाँ

अपने जीवन काल में पंत जी अनेक पुरस्कारों एवं उपाधियों द्वारा सम्मानित हुए थे, यथा –

1. साहित्य अकादमी पुरस्कार; सन् 1961 ईस्वी में ।

2. सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार; सन् 1962 ईस्वी में ।

3. हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा ''साहित्य वाचस्पति'' उपाधि;

   सन् 1964 में ।

4. विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट्. उपाधि; सन् 1965 ई.
में ।

5. गोरखपुर विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट्. उपाधि; सन् 1969 में ।

6. 'देव पुरस्कार' तथा 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार;' सन् 1969
में ।

इसके अतिरिक्त पंत जी को नागरी प्रचारिणी सभा तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विभिन्न पुरस्कारों से विभूषित किया गया ।

स्वर्गवास

29 दिसम्बर 1976 ईस्वी को, प्रकृति का अद्वितीय चितेरा नवचेतना का महान् गायक और श्री अरविन्द दर्शन के अमृत गीत को गानेवाला कवि विपुल साहित्य को छोड़कर चला गया ।

कविवर पंत जी का कृतित्व

प्रथम उत्थान काल

ग्रन्थ **वर्ष**

वीणा	–	1918-19
ग्रंथि	–	1920
पल्लव	–	1926
गुंजन	–	1932
ज्योत्सना (रूपक)	–	1932

द्वितीय उत्थान

युगांत	–	1936
युगवाणी	–	1937
ग्राम्या	–	1940

तृतीय उत्थान

स्वर्ण किरण	–	1945
स्वर्ण धूलि	–	1946
युग पथ	–	1948
उत्तरा	–	1949
रजत–शिखर	–	1949

शिल्पी	–	1951
सौवर्ण	–	1954
अतिमा	–	1955
वाणी	–	1957
कला और बूढ़ा चाँद	–	1959
लोकायतन (प्रबंध काव्य)	–	1964
किरण वीणा	–	1966
पौ फटने से पहले	–	1967
पतझर : एक भावक्रांति	–	1967
चिदम्बरा	–	1967

गद्यपथ

पुरूषोत्तम राम	–	1970
शशि की तरी	–	1970
आस्था	–	1970
समाधिता	–	1972

सत्यकाम – 1974

सम्मान एवं पुरस्कार

राष्ट्रपति द्वारा इन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि से सम्मानित किया गया । सन् 1961 में 'कला और बूढ़ा चाँद' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया 1964 में लोकायतन महाकाव्य पर सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार प्रदान किया गया । सन् 1968 में इन्हें भारतीय ज्ञान पीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

श्री सुमित्रानंदन पंत का काव्य जगत् विराट है । आपका काव्य–जगत् एक पुष्प की तरह प्रकृति की सुरम्य घाटी कूर्मांचल में मुकुलित होता है, गांधी व मार्क्स की हवा से प्रस्फुटित होता है और अंतत: श्री अरविन्द दर्शन को समर्पित हो जाता हैं । इसी क्रमिक विकास को छायावाद, प्रगतिवाद एवं अन्तश्चेतनावाद से अभिहित करना समीचीन होगा । सन् 1918 से सन् 1978 की करीब छ: दशकों की अवधि का पंत साहित्य विशाल कलेवर लिये हैं । इस साठ वर्ष की महायात्रा के पदचिह्न की वीणा (1918-19). ग्रंथि (1920), पल्लव (1918-26), गुंजन (1919-32), युगांत (1934-36), युगवाणी (1936-39), ग्राम्या (1940), स्वर्ण किरण (1947), स्वर्णधूलि (1947), युगपथ (1948), उत्तरा (1949), अतिमा वाणी कला और बूढ़ा चाँद (1954-58), लोकायतन (1959-63), किरणवीणा, पुरूषोत्तम राम, पौ पटने से पहले, पतझर, शंखध्वनि, शशि की तरी, समाधिता एवं आस्था (1966-1972) हैं ।

पंत जी प्रकृति के सुकुमार कवि है और मूलतः वे प्रेम व सौन्दर्य के कवि हैं । पंत जी का आरंभिक काव्य इसी को लेकर चला है और अपनी अंतिम रचनाओं में भी वे प्रकृति की गोदी में ही बैठकर विश्व मंगल का स्वर साधते और सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की साधना में निरत दिखलाई पड़ते हैं ।

पंत जी केवल कवि ही नहीं अपितु कुशल गद्य लेखक भी हैं । हार कवि का प्रथम उपन्यास है जो सन् 1916-17 के आसपास लिखा गया था । उदीयमान कवि की अरूणिमा लिए यह उपन्यास कवि की प्रथम परिपूर्ण रचना कहलाएगा । जिसकी भूमिका में पंत जी ने स्वयं लिखा है – ''संभवतः अपने किशोर मन की कुछ अस्फुट भावनाओं ए वं अस्पष्ट विचारों को कथा के रूप में गूंथने के लिए ही मैंने इस लघु उपन्यास की कागज की नाव को साहित्य के सिन्धु में प्रथम प्रयास के रूप में छोड़ने का दुस्साहस किया हो ।''[26]

गद्यकार के रूप में पंतजी की सुप्रसिद्धि कृति ''पांच कहानियाँ'', नामक कहानी संग्रह है जिसमें क्रमशः ''पानवाला'', ''उस पार'', ''दम्पत्ति'', ''बन्नू'' और ''अवगुंठन'', नामक कहानियाँ संग्रहित है ।

ये कहानियाँ कहानी से अधिक शब्दचित्र हैं तथा इनमें लेखक का कवि–हृदय ही अधिक मुखर हुआ है ।

कुशल नाटककार एवं रूपक निर्माता के रूप में पंतजी की प्रसिद्ध कृतियाँ 'ज्योत्स्ना', 'शिल्पी', और 'सौवर्ण' हैं इनमें कवि का नाटककार स्वरूप उजागर हुआ है । ये सारी कृतियाँ प्रतीकात्मक हैं ऐसा कहा जा

सकता है । पंतजी की उत्तम काव्य कृतियाँ नाट्य कृतियाँ काव्यमयी हो गई है ।

महाकवि पंत अपने जीवन की विविध अवस्थाओं में विभिन्न विचारधाराओं के सम्पर्क में आये अतएव उन्हें विविध-विचारधाराओं, मार्गों तथा भावधाराओं का परिस्रवण करते हुए हम देखते हैं । साथ ही आपने अपनी प्रायः हर कृति का आमुख लिखकर अपने विचारों व भावों से पाठकों को परिचित कराया है । यही कारण हैं कि पल्लव से आस्था तक की प्रायः सभी कृतियों में आपके गद्यलेख विद्यमान हैं जो उत्कृष्ट कला के आदर्श मानदण्ड हैं । 'पल्लव' की भूमिका में जहाँ आपने स्वस्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी की स्थापना की है वहाँ 'उत्तरा' की भूमिका में श्री अरविन्द दर्शन की स्थापना करते हुए मार्क्सवाद की सीमाएँ बता दी हैं व मार्क्सवाद को नवचेतना के युग के लिए अपर्याप्त घोषित कर दिया है । आपके इन सारे आमुखों की मञ्जूषा गद्यपथ है । इन सभी लेखों में पंतजी का सशक्त गद्यलेखक रूप उजागर हुआ है । पल्लव की भूमिका को ''छायावाद का घोषणा पत्र'' कहा गया है ।

पंत जी अत्यंत संवेदनशील व विचारशील कवि रहे । जीवनभर वे वैचारिक दृष्टि से चेतना का एक-एक सोपान चढ़ते गये तथा मानव श्रेयस् के विषय में निरंतर चिंतन-मनन करते रहे । उनकी भावनात्मक विचार-यात्रा प्रकृति के सहज साहचर्य से आरंभ होकर अरविन्द दर्शन के आत्म-साक्षात्कार में परिणति पाती है - मानों गंगा की छोटी-सी धारा हिमालय की उपत्यकाओं से निकलकर चेतना के महासमुद्र में

मिल जाती है । चेतना के ये सोपान निम्न हैं :-

1. प्रकृति 2. गाँधीवाद

3. मार्क्सवाद 4. श्री अरविन्द दर्शन

श्री सुमित्रानंदन पन्त का जीवन एक महाकाव्य जैसा वैविध्यपूर्ण है । आपका शैशव हिमगिरि की प्रोज्जवल-धवल शिखरावलियों में उदित व संवर्धित हुआ । यही कारण है कि आपकी कविता में हिमगिरी के शिखरों जैसी भव्यता है जो अन्य छायावादी कवियों में विरल है । फिर भी आपके चरण पृथ्वी पर टिके हैं जबकि आपका अन्त:करण किसी दीप्त स्वर्ग में खोया है । पंत जी उदात्त सौन्दर्य के अप्रतिम शब्द शिल्पी है । उनका काव्य वेणुवादन जैसा नाद स्वर पूरित है ।

हिमालय की सुरम्य छवि ने आपके अन्त:करण में विराजमान कवि को जागृत कर दिया और आप सहज ही प्रकृति के कवि बन गये । बालक पंत के मानसिक, भाविक, बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन का संरक्षण और पौषण प्रकृति ने स्वयं किया है । प्रकृति से ही उन्हें काव्य प्रेरणा मिलती रही हैं । पंत का संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व उसी का प्रतिरूप और अनुगंज मात्र है । आयु की प्रौढ़ता के साथ इस अनुभूति को उन्होंने विभिन्न भावों, विचारों और दृष्टिकोणों में प्रस्तुत किया है । पंत, यदि आज कुछ हैं तो प्रकृति के-प्रकृति में छिपी गुह्य चेतना के गायक है । उनका जीवन और काव्य उस चेतना का जीवन और काव्य है जो प्रकृति की शोभा से व्याप्त भगवत तत्त्व को

समझाने के प्रयास में अनवरत संलग्न है । प्रकृति के सुमधुर संगीत और अप्रतिम दिव्य बहुरूपी सौन्दर्य से कवि का समग्र अनुप्राणित व आप्लावित है ।

इन तथ्य को पंत जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया है –

''कविता करने की प्रेरणा मुझे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूमाँचल प्रदेश को है । कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है मैं घंटों एकांत में बैठा प्राकृकि दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था । जब कभी मैं आँखें मूंदकर लेटता था तो वह दृश्यपट चुपचाप मेरी आंखों के सामने घूमा करता था । अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में दूर तक

फैली, एक से ऊपर एक उठी ये हरित नील धूमिल, कूमाँचल की छायांकित पर्वत श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमालय को धारण की हुई है और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी गहन की हुई है, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव सम्मोहन के आश्चर्य में डुबाकर कुछ काल के लिए भुला सकती हैं । नैसर्गिक सौन्दर्य की प्रेरणा ही मेरी दृष्टि में वह मूल शक्ति थी जिसने मेरे एकान्तप्रिय मन को काव्य-सृजन की ओर उन्मुख किया और आज भी मेरे शब्दों के कुंजों से प्राकृतिक सौन्दर्य का मर्मर फूट पड़ता है ।[27]

'सुन्दरम्' का व्यक्तितत्व और कृतित्त्व

1908 : 22वीं मार्च जन्म

भरूच जिले के अंतर्गत आमोद तहसील के मियांमातर गाँव में

जन्म नाम : त्रिभुवनदास

माँ का नाम : उजमबेन

पिता का नाम : पुरूषोतमदास केशवदास लुहार

1917 : शादी मंगलागौरी के साथ

पढ़ाई : अपने गाँव में 7वीं कक्षा तक

आमोद में अंग्रेजी की पाँच कक्षा तक

भरूच की छोटुभाई पुराणी की 'राष्ट्रीय'

न्यू इंग्लीश स्कूल में एक साल तक

1925-27 : भरूच में विनीत हुए,

गूजरात विद्यापीठ के द्विमासिक – 'साबरमती'

में उत्तम 'लेख' के लिए 'तारागौरी चंद्रक' प्राप्त हुआ

श्रेष्ठ निबंधलेखन के लिए 'अखिल भारत विद्यार्थी परिषद' का पुरस्कार मिला ।

1926 : 'साबरमती' पत्रिका में 'मरीचि' उपनाम से 'एकांश दे' प्रथम काव्य प्रकाशित

1928 : 'साबरमती' पत्रिका में 'बारड़ोली ने 'सुन्दरम्' उपनाम से प्रकाशित, 'साबरमती' के संपादक बने ।

1929 : संस्कृत और अंग्रेजी विषय के साथ 'भाषाविशारद' की उपाधि प्राप्त की ।

'सोनगढ़' गुरूकुल में अध्यापन कार्य

1930 : श्री उमाशंकर जोशी के साथ मैत्री

– भारत के स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय हिस्सेदारी

– उसी समय के दौरान 'बुद्धना चक्षु' काव्य की रचना

1934 : ज्योतिसंघ में अध्यापक बने

– 'काव्य मंगला' संग्रह को 'रणजितराम सुवर्णचंद्रक' प्राप्त हुआ ।

1935 : वर्ष के अंतिम चरण में 'दक्षिण भारत' की यात्रा

1937 : 3–अप्रैल सुपुत्री 'सुधा' का जन्म

1940 : पोंडिचेरी में 'श्री अरविन्द' के दर्शन किए

1943 : फिर एकबार पोंडिचेरी में 'श्री अरविन्द' के दर्शन

1945 : इस समय तक अहमदावाद के निवास के दौरान 'बुधसभा' –'मिजलस'–'प्रगतिशील साहित्यमंडल' लेखक– मिलन–जैसी संस्थाओं का संस्थापन–संचालन किया ।

1945 : 'श्री अरविन्द आश्रम' पोंडिचेरी में सपरिवार स्थायी निवास

1946 : 'अर्वाचीन कविता' के लिए 'महीडा पुरस्कार'

1947 : 15 अगस्त से 'श्री अरविन्द' के जीवन–दर्शन पर 'दक्षिणा' त्रै–मासिक पत्रिका शुरू की ।

1952 : 'यात्रा'–काव्यसंग्रह को 'नर्मद स्वर्णपदक' प्राप्त हुआ ।

1954 : पी.इ.एन द्वारा प्रायोजित 'अख़िलभारत लेख़क परिषद में चिदम्बरम्' में हिस्सा लिया ।

1959 : 'अमदाबाद' के 'गुजराती साहित्य परिषद' के 20वें अधिवेशन में 'प्रमुख़पद' पर नियुक्ति ।

1967 : 'वनसजी ठक्कर' व्याख्यान श्रृंखला अंतर्गत मुंबई

युनिवर्सिटी में व्याख्यान

1968 : 'अवलोकना' को 'दिल्ली साहित्य अकादमी एवोर्ड' 2-सितम्बर को 'मंगलागौरी' का निधन ।

- दिसम्बर में जूनागढ़ में गुजराती साहित्य परिषद के 25वें अधिवेशन में अध्ययन के रूप में नियुक्ति

- 'तपोवन' ग्रंथ का मुंबई में लोकार्पण

- 'वल्लभ विद्यानगर' में 'श्री अरविन्द' पर व्याख़्यान

1971 : 'ॐपुरि' नगर रचना के लिए जमीन खोज प्रक्रिया

1974 : 'अफ्रिका', 'झांबिया' में 'श्री अरविन्द शिबिर' का संचालन

1975 : सरदार पटेल युनिवर्सिटी - विद्यानगर की ओर से दिनांक : 15-12-1975 को 'डी.लिट्' की मानद् उपाधि से सम्मानित ।

1979 : 'दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी सुरत' में 'श्री अरविन्द दर्शन' पर पाँच व्याख़्यान दिए ।

1983 : 11-11-83 को 'ॐपुरि' नगर की रचना के लिए 'मातर' के पास 'वात्रकनदी' के तीर पर मुहूर्त किया गया ।

1984 : 'अंबाजी' और 'मियां-मातर' में अमृतमहोत्सव मनाया गया ।

1985 : 16 मार्च को भारत के तत्कालिन 'राष्ट्रपति श्री झैलसिंह' के करकमलों से 'पद्मभूषण' से सम्मानित

1987 : 'दिल्ली साहित्य अकादमी' में नियुक्ति

– 'फ्रान्स' के 'तपोवन केन्द्र' में 'श्री अरविन्द शिबिर'

– 23 सितम्बर को 'लंडन' में 'श्री अरविन्द हाउस' का निर्माण

1989 : 'लंडन' में 'श्री अरविन्द हाउस' में 'श्री माताजी' तथा 'श्री अरविन्द' फोटो की स्थापना

1990 : गुजरात सरकार ने 'शिक्षा और साहित्य' में विशेष योगदान के लिए 25 जनवरी को – एक लाख रूपये का पुरस्कार ।

1991 : 13 जनवरी देहावसान

साहित्यिक यात्रा

कविता

1933 : 'कोयाभगतनी कडवी वाणी' और 'गरीबोनां गीत'

1933 : काव्य मंगला

1939 : रंग-रंग वादळियां (बालकाव्य)

1939 : वसुधा

1951 : 'यात्रा'

1995 : 'लोकलीला', 'इश'

1995 : पल्लविता

1995 : महानद

1995 : 'सावित्री' के काव्यसंग्रह

1997 : 'प्रभुपद'

1997 : अगम-निगम

1997 : प्रियांका

1997 : नित्यश्लोक

1998 : नया पैसा

1998 : वरदा

1999 : 'चक्रदुत'

1999 : लोकलीला

2000 : लोकलीला

2002 : दक्षिणा-1

- दक्षिणा-2

2003 : समग्र बालकाव्य प्रकाशन

(1) रंग-रंग वादळियां

(2) चक-चक-चकलां

(3) आ-आव्यां पतंगियां

(4) गातो-गातो जाय कनैयो

2003 : मननी मर्मर

2003 : ध्रुवयात्रा

2004 : 'ध्रुवचित्त'

2004 : 'ध्रवपदे'

कहानियाँ

1938 : हीराकणी अने बीजी वातो ।

1939 : ख़ोलकी अने नागरिका

1940 : पियासी

1945 : उन्नयन

1977 : तारिणी

1977 : पावकना पंथे

1989 : 'सुन्दरम्' नी प्रतिनिधि वार्ताओ
संपादक : रमणलाल जोशी

2002 : 'सुन्दरम्' श्रेष्ठवार्ताओं
संपादक – चन्द्रकांत शेठ

नाट्य साहित्य

1977 : वासंती पूर्णिमा (अनुवाद)

1940 : भगवद्जजुकीय (संस्कृत)

1944 : मृच्छकटिकम् (संस्कृत)

1961 : कायापलट

1965 : जनता अने जन

1974 : ऐसी है जिन्दगी (जर्मन–अंग्रेजी)

चिंतनात्मक

1941 : दक्षिणायन (यात्रावर्णन)

1946 : अर्वाचीन कविता (आलोचना)

गद्य

1941 : 'श्री अरविन्द महायोगी' (योग)

1965 : अवलोकना (आलोचना)

1968 : 'चिदबंरा'

वैचारिक गद्य

1978 : (1) साहित्य चिंतन

(2) समर्चना

(3) सा विद्या (तत्त्वचिंतन)

'कविश्री सुन्दरम्' का जन्म 22 मार्च 1908 (22/3/1908) गुजरात के 'भरूच' जिले के 'आमोद' तहसील के छोटे से गाँव 'मातर' में हुआ । उनके जन्म के समय उनका समग्र परिवार संयुक्त परिवार के रूप में साथ में ही रहता था । जब 'सुन्दरम' का जन्म हुआ तब उनके परिवार में उनके 'दादाजी' की 'मातृश्री' भी जीवित थी । समग्र परिवार उन्हें 'घरडी बा' (सबसे बडी माँ) के नाम से बुलाता था । 'कवि के संयुक्त परिवार में उनके माता-पिता का स्थान गौण था । कवि का बचपन 'माँ-बाप' से ज्यादा दादा-दादी की गोद में ही बिता । उनके 'दादाजी' श्यामवर्ण के थे, उनको सारा गाँव प्यार से 'केशुकाका' (केशवचाचा) नाम से जानता था । 'कवि सुन्दरम्' के 'पिताजी : उनके परिवार के लिए काफ़ी महत्त्वपूर्ण थे । दादा-दादी उन्हें 'माँ अंबाजी' की प्रसादी मानते थे । इतने आस्थामय परिवार में कविश्री का बचपन बड़े ही लाड़ और प्यार से गुज़रा ।

बाद में 'सुन्दरम ्' ने एक साक्षातकार में बताया है कि मेरा

चेहरा मेरी 'पूजन्य माताश्री' की 'मुखाकृति' से मिलता है ।

'सुन्दरम्' की प्रारंभिक शिक्षा 'मातर' गाँव में ही हुई । उन्होंने गुजराती स्कूल में 1 से 7 कक्षा तक की शिक्षा वहीं पर ली । उसके बाद 'अंग्रेजी' की शिक्षा के लिए वे '12' वर्ष की आयु में 'आमोद' गये । उसी अध्ययन के दौरान ही 'भारत अपनी आज़ादी की आख़री लड़ाई लड़ रहा था । उसी समय '1920' का 'असहयोग आंदोलन' शुरू हो गया था । उस समय कविने काफी बढ़-चढ़कर उसमें हिस्सा लिया । उस समय 'कवि सुन्दरम्' 'आमोद' के छात्रालय में रहते थे और वहीं से सभाओं की तैयारी, ख़ददर की बिक्री, जूलुस निकालना आदि की संपूर्ण तैयारियाँ होती थीं ।

'बचपन' में स्कूल की पढ़ाई के दौरान कुछ 'शिक्षकों' ने उन पर विशेष प्रभाव डाला, जिनमें सायन्स के शिक्षक 'श्री व्यास साहब', श्री प्रभाशंकर भट्ट' प्रमुख़ हैं । 'श्री प्रभाशंकर भट्ट' ने कवि के व्यक्तित्व पर काफी प्रभाव छोड़ा था उन्होंने ही 'भरूच' के 'श्री छोटुभाई पुराणी' को पत्र लिख़कर उनकी - 'न्यू इंग्लिस स्कूल' में दाख़िले के लिए कहा था - 'Promising Boy' जो कवि को अंतिम समय तक याद रहा ।

'भरूच' की 'न्यू इंग्लिस स्कूल' 'अहमदाबाद' की 'गुजरात विद्यापीठ' से जुड़ा हुआ था, इसलिए 'विनीत' की परीक्षा प्रथम क्रमांक से उत्तीर्ण करने के बाद वे सीधे ही 'विद्यापीठ' में आगे की पढ़ाई के लिए रहने लगे ।

'सुन्दरम्' ने 1924 से 1929 दौरान 'गाँधीजी' से प्रेरित गुजरात विद्यापीठ में शिक्षा प्राप्त की । यह वह समय था, जिसने 'कवि सुन्दरम्

की प्रतिभा को विशेष निख़ार दिया । 'गूजरात विद्यापीठ' में उस समय राष्ट्रीयता की विशेष लहर चल रही थी, मानो समग्र गुजरात की चेतना वहाँ मुख़रित हो रही थी । उस समय 'गाँधीजी' से मिलने के लिए सारी दुनिया के लोग आते थे, जिनमें से प्राय: सभी विद्यापीठ को देख़ने के लिए भी जरूर आते थे । उस समय विद्यापीठ का माहौल 'वैश्विक माहौल' बन गया था ।

चार वर्ष के विद्यापीठ के निवास के दौरान ही कई बार 'गाँधीजी' स्वयं 'शनिवार' को आ कर विशेष पुस्तकों से पढ़कर हमें महत्त्वपूर्ण बातें समझाते थे । ये दिन 'कविश्री' के जीवन के काफ़ी महत्त्वपूर्ण दिन थे । कई बार 'गाँधीजी' 1 माह के लिए सबके साथ ही विद्यापीठ में निवास करते थे ।

गूजरात विद्यापीठ़ के अध्ययन के दौरान कविश्री सुन्दरम् पर विशेष प्रभाव छोड़नेवाले अध्यापक इस प्रकार थे - 'आचार्य गिदवाणी' - आचार्य कृपलानी, काका साहब कालेलकर, - आचार्य रा. ब. आठ़वले, श्री हरिनारायण आचार्य, श्री रसिकलाल परीख - और पंडित सुखलालजी ।

'गुजराती भाषा' के प्राध्यापक थे श्री रा. वि. पाठक और 'श्री नरहरि परीख़' लेकिन हमारे 'कवि सुन्दरम्', 'काकासाहब' से विशेष प्रभावित थे ।

सन् 1929 में कवि ने 'विद्यापीठ' में अपना अध्ययनकार्य पूर्ण किया । विद्यापीठ़ को जब छोड़कर सुन्दरम् वहाँ से निकले तो बुद्धि, हृदय और शरीर से सशक्त होकर जीवन संग्राम के लिए तत्पर हो

गये । उसी समय के दौरान 'सुन्दरम्' की 'कवियात्रा' भी प्रारंभ होती है । उनकी प्रथम महत्त्वपूर्ण मानी जानेवाली कविता - 'वडलानी डाळनो हींचको' सामने आई, उसके बाद कवि अपने 'तख़ल्लुस' के लिए सोचने लगे । सबसे पहले उन्होंने - 'विश्वकर्मा' - और 'मरीचि', 'तख़ल्लुस' रख़ा लेकिन उसके तुरन्त बाद उनके हाथमें 'सुन्दरम्' तख़ल्लुस आ गया, जिसे उन्होंने सदा के लिए अपना लिया ।

'कविश्री सुन्दरम्' 1935 से 'अहमदाबाद' में निवास करने लगे । अहमदाबाद में ही कवि विशेष रूपसे 'कविश्री न्हानालाल' के परिचय में आये । और कविश्री उमाशंकर जोशी' का परिचय सन् 1930 में स्वातंत्र्य संग्राम में हुआ । दोनों वीजापुर की जेल में एक साथ बंद थे । वहीं से दोनों कवि की मैत्री होती है । बाद में गुजराती काव्य साहित्य में दोनों को एक दूसरे के प्रेरक-साथी माना गया ।

'कविश्री सुन्दम्' पर विशेष रूपसे प्रभाव डालने वाले पाश्चात्य और भारतीय साहित्यकारों और उनकी कृतियाँ निम्नलिखित हैं... 'गोल्ड़न ट्रेझरी' गोल्ड़न बुक ऑफ सॉनेट, कविश्री 'बायरन' का चाईल्ड हेरॉल्ड, मिलटन का पेरेडाइस लॉस्ट, 'विक्टर ह्युगो' का 'ला मिज़रेबल' 'कविश्री गोल्डस्मिथ' का 'डेज़र्टेड विलेज' - शेक्सपीअर के मॅकवेथ - हॅम्लेट, नाटककार ब्राउनिंग, टॉमसहार्डी और टेनीसन की कविता । महाकवि शेली, कीट्स, ज्योर्ज मेरेडिथ, ज्होन गॉल्सवर्धी, रॉमेंरोलां, इब्सन और आइ.ए.रिचार्डस' आदि ।

भारतीय साहित्य में रामायण, महाभारत, गीत गोविंद - 'महाकवि बाण' की 'कादम्बरी' सभी उपनिषद, उसके बाद रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरदबाबू, गाँधीजी और उनकी आश्रमभजनावलि और अंतमें जीवन

का सबसे महत्त्वपूर्ण सर्जक श्री अरविन्द । 'श्री अरविन्द' के प्राय: सभी ग्रंथोंने 'सुन्दरम्' पर प्रभाव छोड़ा । लेकिन 'सुन्दरम्' के लिए सबसे महान दो कृतियाँ थीं, श्री अरविन्द का ग्रंथ 'फयूचर पोएट्री' और 'सावित्री' महाकाव्य ।

'श्री अरविन्द' के विशेष प्रभाव में 'सुन्दरम्' 1930-31 में ही आ गये थे । स्वातंत्र्यसंग्राम के दौरान 'श्री अरविन्द' ने कहा था कि ''स्वातंत्र्यसंग्राम के पीछे मैं प्रेरणा के रूपमें कार्य कर रहा हूँ'' - इसको सुनकर कवि 'सुन्दरम्' के अभिमान को चोट लगी थी । लेकिन बाद में जब उनके विचारों और 'दर्शन' को पढ़ा तो उनके मन में शांति होती गई । स्वातंत्र्य संग्राम की समाप्ति से पहले ही 'सुन्दरम्' सन् 1935 में 'दक्षिणभारत' की 'यात्रा' के दौरान 'यात्रा' के एक भाग के रूपमें 'पोंडिचेरी' गये । उस समय उन्हें वहाँ पर अद्‌भूत अनुभूति हुई । इसके बाद 'सुन्दरम्' सन् 1940 में 21 फरवरी के दिन 'श्री अरविन्द' के दर्शन के लिए फिर से पोंडिचेरी गए । वहाँ पर 'माताजी' और 'श्री अरविन्द' के 'साक्षातदर्शन' से 'कवि' को 'आनंद', 'प्रेम', सघनशक्ति और प्रचंड ज्ञान की अनुभूति हुई । और उसी दिन से 'कविश्री सुन्दरम्' 'श्री अरविन्द' की भागवत् चेतना के साथ सदा के लिए जुड़ गए । और उनकी चेतना में 'लीन' होते गए ।

सन् 1945 के अप्रैल माह से ही 'सुन्दरम्' सहपरिवार पोंडिचेरी में स्थायी निवास के लिए 'श्री अरविन्द आश्रम' में आ गये । 'आश्रम' में आने के बाद 'सुन्दरम्' आश्रम के भोजनालय, सुबह-शाम व्यायाम आदि कार्यों में हिस्सा लेने लगे । अब उनका 'जीवन' 'आश्रममय' हो

गया था । यहाँ से साधना-यात्रा और काव्य-यात्रा का निरंतर विकास होता गया ।

सन् 1951 में 'यात्रा' काव्यसंग्रह का प्रकाशन हुआ । इसी 'काव्यसंग्रह' से 'श्री अरविन्द दर्शन' की पावन गंगाधारा की पुनीत 'यात्रा' की शुरूआत हुई । पांडिचेरी में रहते हुए भी 'सुन्दरम्' ने 'दक्षिणा' पत्रिका को निरंतर प्रकाशित किया । इसी पत्रिका के द्वारा उन्होंने गुजराती साहित्य के पाठकों के साथ रिश्ता बनाए रख़ा । इस पत्रिका में उन्होंने साहित्य के साथ-साथ अपने जीवन के विभिन्न अनुभवों को भी पाठकों के साथ साँझा किया है ।

'सुन्दरम्' एक श्रेष्ठ अनुवादक भी थे । उन्होंने निम्न लिख़ित रूप से 'श्री अरविन्द' के साहित्य का गुजराती में अनुवाद भी किया है ।

- उत्तरपाडा व्याख्यान (1944)
- श्री अरविन्दनां चार पत्रो (1947)
- जगन्नाथ नो रथ (1948)
- योग अने तेनां लक्ष्य (1949)
- श्री माताजी दिव्य स्वरूप (1953)
- आध्यात्मिक समाज (1956)
- विदेहिओ ना वार्तालापो (1954)
- पत्रावली (1964)
- पूर्णयोगनुं तत्त्वज्ञान (1966)

संदर्भ संकेत

1. प्रथम रश्मि, 'वीणा' काव्य-संग्रह सुमित्रानंदन पंत
2. श्री सुमित्रानंदन पंत, साठ वर्ष : एक रेख़ांकन पृष्ठ-10
3. श्री सुमित्रानंदन पंत, साठ वर्ष : एक रेख़ांकन पृष्ठ-10
4. श्री सुमित्रानंदन पंत, साठ वर्ष : एक रेख़ांकन पृष्ठ-12
5. 'आत्मिका' - वीणा काव्यसंग्रह
6. 'कूमाँचल' - वीणा काव्यसंग्रह
7. साठ वर्ष : एक रेख़ांकन - पृष्ठ - 13
8. साठ वर्ष : एक रेख़ांकन - पृष्ठ - 13
9. साठ वर्ष : एक रेख़ांकन - पृष्ठ - 17
10. साठ वर्ष : एक रेख़ांकन - पृष्ठ - 7
11. शोकाग्नि और अश्रुजल. 'सुधाकरपत्रिका' - मई-1917
12. साठ वर्ष : एक रेख़ांकन पृ.21
13. साठ वर्ष : एक रेख़ांकन पृ.26
14. प्रथम रश्मि - वीणा काव्य संग्रह
15. प्रथम रश्मि - वीणा काव्य संग्रह

16. साठ वर्ष : एक रेखांकन पृ.28

17. साठ वर्ष : एक रेखांकन पृ.28

18. साठ वर्ष : एक रेखांकन पृ.32-33

19. साठ वर्ष : एक रेखांकन पृ.32

20. साठ वर्ष : एक रेखांकन पृ.36

21. सुमित्रानंदन पंत, शिल्प और दर्शन – पृष्ठ – 338

22. शान्तिदेवी जोशी सु.पंत : जीवन और साहित्य पृ.216-17

23. शान्तिदेवी जोशी सु.पंत : जीवन और साहित्य पृ.230

24. शान्तिदेवी जोशी सु.पंत : जीवन और साहित्य पृ.261

25. शान्तिदेवी जोशी सु.पंत : जीवन और साहित्य पृ.260

26. सुरेशसिंह स्मृतिचित्र पृ.28

27. हार : भूमिकासे सुमित्रानंदन पंत पृष्ठ–5

28. सुन्दरम् एटले सुन्दरम् पृष्ठ–2

29. ध्रुवचित – भूमिका 2

30. वही – भूमिका 2.

– स्वप्न अने छाया घड़ी (1967)

इसके अलावा 'सुन्दरम्' ने 'श्री अरविन्द' के जीवन चरित्र को गद्यरूप में लिख़ा है जिसका नाम है : 'श्री अरविन्द महायोगी' ।

इस प्रकार 'सुन्दरम्' निरंतर साधनारत रहे । कविता लिख़ते रहे लेकिन बाद में उन्होंने काव्यसंग्रह को प्रकाशित करना काफ़ी कम कर दिया । साथ में वे व्यक्तिगत साधना के मार्ग में भी आगे बढ़ते गये । 13 जनवरी 1991 के दिन '83' वर्ष की आयु में सुन्दरम् इस संसार को छोड़कर 'श्री अरविन्द' की चेतना में समाहित हो गये । 'श्री अरविन्द आश्रम' के 'नर्सिंग होम' में उनका अवसान हो गया ।

स्वर्गवास – 13/1/1991

'सुन्दरम्' की मृत्यु के पश्चात उनकी पुत्री 'श्री सुधाबहन' ने विशेष परिश्रम करके 'सुन्दरम्' की कविताओं के अनेक संग्रहों को लगातार प्रकाशित किया है । इन सभी काव्यसंग्रहों की कविताओं का मूलस्वर 'श्री अरविन्द दर्शन' ही है ।

तृतीय अध्याय

'सुमित्रानंदन पंत' के काव्य में 'श्री अरविन्द दर्शन'

(1) 'स्वर्ण किरण' काव्य-संग्रह में श्री अरविन्द दर्शन

(2) 'स्वर्णधूलि' काव्य-संग्रह में श्री अरविन्द दर्शन

☼ निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

''सुमित्रानंदन पंत के काव्य में श्री अरविन्द दर्शन''

1. ''स्वर्णकिरण' काव्यसंग्रह में श्री अरविन्द दर्शन''

स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह से 'पंतजी' के जीवनमें नूतनजीवन दर्शन का प्रारंभ होता है । इस काव्यसंग्रह के लिखने से पूर्व ही कवि पंतजी 'श्री अरविन्द दर्शन' के सिद्धांतों के अनुगामी बन चुके थे इस काव्य संग्रह से पूर्व पंतजी लम्बे समय तक बीमार रहे थे । स्वास्थ्य की दृष्टि से यह समय अच्छा नहीं था । लेकिन फिर भी 'पंतजी' इस दु:ख को सहते रहे, और काव्य-साधना भी करते रहे ।

इस काव्य-संग्रह का रचनाकाल सन् 1940 से संभवत: सन् 1946 तक का है । जब 'भारत देश' अपनी स्वतंत्रता के लिए 'महात्मा गाँधी' के नेतृत्व में अंतिम लड़ाई लड़ रहा था ।

'कविश्री सुमित्रानंदन पंत' इस काव्य-संग्रह के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि 'जग-जीवन' को देखने के लिए मनुष्य के पास 'बुद्धि' के साधन से भी आगे एक मार्ग है, जिसे सहज स्फुरण का मार्ग, सूक्ष्म प्रेरणा का मार्ग, दिव्यचेतना का मार्ग कह सकते हैं । इस 'काव्यसंग्रह' के बारे में 'पंतजी' ने लिखा है कि 'आत्मतत्त्व को पहचानना तथा उसके कल्याण के लिए आगे बढ़ना, एवं मानसिक शांति से व्यक्ति, व्यक्ति को समृद्ध बताने की बात हमारे उपनिषदों ने बताई है, उसी बात को 'श्री अरविन्द' ने अपनी नूतन दृष्टि से तथा संपूर्ण

विश्वकल्याण की भावना के साथ ऊभारा है । जो एक नवीन दृष्टिकोण इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि उसमें एक नई दृष्टि समाई है ।''[1]

इस काव्यसंग्रह की प्रथमकविता में 'पंतजी' नये उमंग और आशा से स्वागत करते हुए लिख़ते हैं ...

''हँसी, लो, स्वर्णकिरण,
शिख़र आलोक वरण !
विचरती स्वर्ण-किरण
धरा पर ज्योतिचरण !''[2]

देख़ो धरती पर 'स्वर्णकिरण' का आगमन हो चुका है । सारा जगत जिसकी प्रतीक्षा में था, वह समय आ चुका है ।

''खुला अब ज्योतिद्वार,
उठा नव प्रीति ज्वार,
सृजन शोभा अपार !
कौन करता अभिसार,
धरा पर ज्योतिभरण,
हँसी लो, स्वर्ण-किरण !''[3]

उस 'चेतना' के प्रति समर्पण का भाव व्यक्त किया गाय है । 'अभिसार' शब्द से उसके साथ मिलन की बात कही गई है ।

'सम्मोहन' कविता में अध्यात्म की झलक देख़ने को मिलती है । यहाँ पर 'अभीप्सा' की बात कही गई है ।

''जादू बिछा दिया जन भू पर !
तुमने सोने की किरणों की
जीवन हरियाली बो-बो कर !''[4]

यहाँ पर 'जादू' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिससे 'कवि' के आकर्षण का अंदाज़ लगाया जा सकता है ।

'श्री अरविन्द दर्शन' की मुख्य विशेषता है जन-जन का कल्याण करना । इसी बात को कविने यहाँ प्रस्तुत किया है ।

''प्रणय दृष्टि की मुग्ध दृगों को,
प्राणों में संगीत दिया भर,
स्वर्ण कामना का नव घूँघट
डाल धरा के मुख़ पर सुन्दर !''[5]

यहाँ पर प्रणय की अपारशक्ति की बात कही गई है । 'धरती' के कल्याण से तात्पर्य है सारे 'मानव जगत' का कल्याण ।

''निज जीवन का कटु संघर्षण
भूल गया अब मानव अन्तर,
जग-जीवन के नव स्वप्नो की,
ज्योतिवृष्टि में अमर स्नान कर !''

अब मानव अपने समस्त दुःख़ों और संतापों को भूल चुका है । व्यक्तिगत संघर्षो को एक तरफ रखकर अब मानव विश्वकल्याण के

मार्ग में आगे बढ़ रहा है । और उस 'परम चेतना' की 'ज्योतिवृष्टि' में स्नान कर रहा है ।

इस दृष्टि से 'सम्मोहन' कविता में विश्वकल्याण, और 'विश्वपरिवार' की भावना को बल मिला है ।

'रजतापत' कविता में 'पन्तजी' ने उस 'आत्म भावना' को प्रकट किया है । जहाँ पर हमें विश्वकल्याण की नींव डालनी है । इस कविता में 'श्री अरविन्द' दर्शन को प्रस्तुत किया गया है । 'श्री अरविन्द' की यह दृढ़ मान्यता थी कि मानव को पहले अपने आप का, 'अपनी आत्मा' का चिंतन करना चाहिए उसके बाद ही विश्व कल्याण संभव है ।

''लौट मुग्ध विस्मित लोचन मन
अन्तर्मुख़ करते अवलोकन,
निभृत स्पर्श पा कर निसर्ग का
आत्मा गोपन करती चिन्तन....''[6]

यहाँ पर 'ध्यान' की अवस्था की ओर इशारा किया गया है । विस्मित 'मन' के साथ आगे बढ़ते हुए 'अतिमनस' की ओर आगे बढ़ना है ।

''संयम तप की सुन्दरता से
जग-जीवन शतदल दिक् प्रहसित !''[7]

यहाँ पर त्याग, तप, और 'संयम' पर बल दिया गया है । 'निरंतर साधना' से ही जगका जीवन 'कमल' की तरह सुरभित, और सुव्यवस्थित हो सकता है ।

''करे आत्मनिर्माण लोकगण
आत्मोज्वल, भू मंगल के हित
बहिरन्तर जड़चेतन वैभव
संस्कृति में कर निखिल समन्वित !
सहृदयता का सागर हो मन
हृदयशील हो प्रेरणा सरित
भू जीवन के प्रति रूचि जनमें
मानव के प्रति मानव प्रेरित ।'' [8]

यहाँ पर कविने 'मन' की सहज व्याख्या प्रस्तुत की है, जो 'मन' सबके साथ 'समभाव' रख़नेवाला है । 'मानव' के साथ कविने यहाँ 'संस्कृति' को भी जोड़ा है । हमारी 'संस्कृति' की महानता यही है कि हमारी संस्कृति समन्वय की संस्कृति है । इसी 'संस्कृति' में सारे विश्व का कल्याण करने की अपारक्षमता है । यहाँ पर 'समन्वय' पर बल दिया गया है ।

'इन्द्रधनुष' कविता सच्चे जीवन निर्माण की कविता है । यहाँ पर 'पंतजी' ने विश्व कल्याण की भावना को व्यक्त किया है 'उपनिषद्' की 'अमरवाणी' को फिर से स्वर दिया है ।

"असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय !"

आर्ष मंग के ज्योति तरंगित ये उदात्त स्वर
ध्वनित आज भी अन्तर्नभ में दिव्य स्फुरणभर,
असत् तमस के मृत्यु सलिल में हमें पारकर,
सत्य, ज्योति, अमृततत्त्व धाम दो जीवन ईश्वर"[9]

यहाँ पर 'पंतजी' असत्य के अंधकार से सत्य के परम उजाले की ओर जाने का संदेश देते हैं । उपर परमचेतना से प्रार्थना करते हैं हमें अमरत्व का वरदान मिले । 'अमृतत्त्व' साधना मार्ग का शब्द है । हमारा जीवन मृत्यु के उस पार जा सके । जहाँ आत्मा का कल्याण है, वहीं पर हमें जाना है ।

इस कविता में 'पन्तजी' ने व्यक्तितत्त्व के निर्माण को महत्त्व दिया है । सामाजिक जीवन की सभी समस्याओं को मिलकर मिटाने की बात कही है ।

"लोक समस्याओं पर आओ, मिलकर करें विवेचन,
विश्व सभयता के मुख पर से हटा मृत्युं अवगुन्ठन !"[10]

'विश्व' को एक बनाने के लिए सबसे पहले हमारी समस्याओं को समाप्त करने का आह्वान किया गया है ।

'अरूणज्वाल' कविता में कवि ने सारे विश्व के मानव–जीवन में नव–चेतना के संचार की बात कही है ।

''जग की डाली–डाली में तुम
सुलगाती नव जीवन प्रवाल !''[11]

'नवचेतना' के आगमन से जीवन में नया रंग भर गया है । तुम्हारा नशा 'हाला' के नशे से भी बढ़कर है । तुमको पीकर जड़ भी चेतन बन जाता है ।

'भू–प्रेमी' कविता 'श्री अरविन्द' के रूपांतर सिद्धांत को व्यक्त करती है । इसमें आंतरिक रूपांतर की बात प्रस्तुत की गई है ।

''अन्तर का रूपांतर हो औ बाह्यविश्व का रूपांतर,
नवचेतना विकासधरा को स्वर्ग बना दे चिर सुन्दर !''[12]

आंतरिक रूपांतर के साथ ही विश्व का बाह्य रूपांतरण भी होगा, इसी प्रक्रिया में धरती स्वर्ग बन सकती है ।

''जन मन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित,
संस्कृति का भू स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलंबित ''[13]

'मनुष्य' के मानसिक विकास के साथ ही सामाजिक जीवन में बदलाव देखने को मिल सकता है । जब 'आत्मा' के स्तर पर 'मानव' का विकास होगा, तब जाकर इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग छा जाएगा । और आत्मा के विकास के लिए 'साधनापथ' पर चलना बहुत ही जरूरी है ।

श्री अरविन्द दर्शन' के महत्त्वपूर्ण प्रभाव को स्वीकार करते हुए 'पंतजी' ने कहा था कि ''अपनी नवीन अनुभूतियों के लिए जिन्हें मैं अपनी सृजन–चेतना का स्वप्न संचरण या काल्पनिक आरोहण समझता था, मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक अवलम्बन की आवश्यकता थी । इन्हीं दिनों मेरा परिचय 'श्री अरविन्द' के 'भागवत् जीवन' से हो गया । उसके प्रथम खण्ड को पढ़ते समय मुझे ऐसा लगा, जैसे मेरे अस्पष्ट स्वप्न चिंतन को अत्यंत सुस्पष्ट, सुगठित और पूर्ण दर्शन के रूप में रख़ दिया गया है । 'स्वर्णकिरण' और उसके बाद की रचनाओं में यह प्रभाव देख़ा जा सकता है ।''[14]

'स्वर्णिम पराग' कविता में कविने 'मन' के विकास के लिए 'स्वर्णिम पराग' शब्द का प्रयोग किया है ।

''स्वर्णिम पराग, स्वर्णिम पराग !

यह उड़ता सुमनों से 'मन' के,
जीवन का स्वर्ण हास्य बन के,
छा जाता भू–नभ पर छन के,
रँग–रँग भावों का मधुर राग ।[15]

'सुमन' और 'मन' की तुलना कितनी मोहक बन गई है । जिस प्रकार खुश्बू से भरे मुस्कुराते हुए 'सुमन' का विकास सुन्दर दिख़ाई देता है, ठीक उसी प्रकार 'मानवमन' को भी हमें विकसित करना है । यही विकास जीवन को हास्य से तरबतर कर देगा ।

'ऊषा' शीर्षक से लिख़ी गई कविता एक लम्बी कविता है जिसमें 'प्रकृति वर्णन' का सहारा लेते हुए 'ऊषा' के आगमन की घोषणा कवि के द्वारा की गई है ।

''आयी अरूणोदय मंदिर में
पथ-प्रकाश का करने विस्तृत !...
दिव्य चेतना की ऊष वह,
अधर पल्लवों में प्रभात स्मित !''(16)

आज की 'ऊषा' विशेष है, क्योंकि यह ऊषा 'दिव्यचेतना' की ऊषा है । इस निराली ऊषाने सब पर नूतन प्रभाव डाला है ।

ज्योति नीड़ के विहग जगे, गाते नवजीवन मंगल,
रजत घंटियाँ बजीं अनिल में, ताली देते तरूदल !''(17)

'चंद्रोदय' कविता में 'पंतजी'ने 'अनसचाँद' के उदय को प्रस्तुत किया है ।

वह सोने का चाँद उठा ज्योतित अधिमन-सा, (18)

यहाँ पर 'सुवर्णचाँद' को कवि ने 'अधिमानस चेतना' बताते हुए उसके उदित होने की बात कही है । यहाँ पर सामान्य बुद्धि की बात नहीं है । उससे आगे की बात व्यक्त की गई है । 'चंद्र' का एक अर्थ शीतलता भी है । क्योंकि 'अधिमानस चेतना' के अवतरण से 'मन' शांत और स्थिर हो जाता है ।

'द्वा सुपर्णा' अद्वैतवाद की भावना को व्यक्त करने वाली कविता है । यह कविता भारतीय दर्शन के प्राणतत्त्व को प्रकट करनेवाली कविता है ।

''दो पक्षी हैः सहजसखा, संयुंक्त निरंतर,
दोनों ही बैठे आज़ादी से उसी वृक्ष पर''[19]

यहाँ पर आत्मा और परमात्मा तथा 'जीव' और 'शिव' के ऐक्य की बात कही है ।

इस कविता की अंतिम पंक्तियों में मानवजीवन में आंतरिक और बाह्यजीवन के संतुलन पर विशेष बल दिया है ।

''भीतर बाहर एक सत्य के रे सुपर्णद्वय,
जीवन-सफल उड़ान, पक्ष संतुलन जो विजय !''[20]

'व्यक्ति और विश्व' में 'पंतजी' ने 'श्री अरविन्द' की महत्त्वपूर्ण अवधारणा को व्यक्त किया है । 'श्री अरविन्द' 'व्यक्ति' के विकास में ही 'विश्व' के कल्याण की कामना करत है ।

''मैं इस जग में नहीं अकेला
मुझको तनिक न संशय
वही चाह है कण-कण में
जो मेरे उरमें निश्चय !''[21]

मैं इस 'जगत' में तनिक भी अकेला नहीं हूँ मैं समग्र विश्व का ही प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ । सारे विश्व के कल्याण में ही मेरा कल्याण समाया हुआ है । समग्र मानव समाज जब इसी प्रकार की एकता और सामूहिक जीवन की बात करेगा । उसी समय समग्र विश्व में मंगलमय वातावरण खड़ा हो जाएगा ।

''मेरे भीतर परिभ्रमित ग्रह,
उदित अस्त शशि दिनकर,
मैं हूं सबसे एक, एक रे
मुझसे निखिल चराचर ।
कबसे हो जगसे वियुक्त
मेरा अन्तर था पीड़ित
आज खड़ा भाई बहिनों के
सँग में चिर आनन्दित ।''[22]

''आवाहन'' कविता में 'पंतजी' उस परमचेतना का आह्वान करते हुए नजर आते हैं । इस कविता में कवि सच्ची अभीप्सा से 'परमचेतना' की प्रार्थना करते हैं, साथ ही साथ 'नूतनविश्व' के संकल्प को भी प्रस्तुत करते हैं ।

''सृजन करो नूतन मन !
ख़ोल सके जो ग्रन्थि हृदय की
उठा सके जो संशय गुण्ठन''[23]

'हे प्रभु' हमारे सब के अंदर 'नूतनमन' की स्थापना कीजिए । हृदय-हृदय के बीच की ग्रंथियों को ख़ोल दीजिए ।

कविता में आगे कविने मानव के व्यक्तिगत जीवन में स्वार्थ-भावना की बात को कहा है कि मानव व्यक्तिगत दृष्टि से स्वर्ग की कामना करता है, धनकी संपत्ति की कामना करता है, लेकिन अब समग्र मानव जाति को संपन्न बनाने की प्रार्थना करने की आवश्यकता है ।

''प्रार्थी आज निखिल मानवता,
उठे मृत्यु से वह ऊपर ।''[24]

आज 'समग्र मानवता' प्रार्थना करती है कि हम सबको मृत्यु से ऊपर ऊठाकर 'अमृत' की ओर ले चलो । इसी प्रकार के सामूहिक प्रयत्न से विश्व का कल्याण निश्चित हो सकता है ।

'निवेदन' कविता में भी कविने इसी विनम्रता के साथ 'आत्मनिवेदन' किया है ।

''रँग दो मेरे उर का अंचल !
युग-युग के आँसू से गिला
मेरा स्नेही का अन्तस्तल ।''[25]

मैं उस रंग में रंग जाना चाहता हूँ । युगों की मेरी प्यास अब पूरी करना चाहता हूँ ।

''जीवन का चिर भरा कल्पना,
सुख़ का तपना, दुःख का तपना
भँग करो मत सपना अपना
केवल मन को दो अदम्य बल !''[26]

सुख-दुःख से भरे इस जीवन को अब उससे पार ले चलो, मेरे 'मन' को अब एक महान बल चाहिए ।

''मैं न थकूँगा हो अनन्त पथ,
जरा-मृत्यु से तन-मन लथ-पथ,
ज्ञात न हो जीवन का इति-अथ,
चिर प्रतीति का दो पथ-सम्बल !''[27]

यहाँ पर 'पंतजी' का साहस देखते ही बनता है । वे प्रार्थना के स्वरमें कहते है कि मेरा 'पथ' भले ही अनन्त पथ हो, मैं कभी - भी नहीं थकूँगा । अब मुझे तुम्हारी 'चिर प्रतीति' हो गई है, इसलिए मैं तुम्हारा आधार ग्रहण करके आगे बढ़ता रहूँगा ।

''श्री अरविन्द दर्शन'' कविता एक महत्त्वपूर्ण कविता है, जिसमें 'पंतजी', 'श्री अरविन्द' के प्रति अपने-आपको समर्पित कर देते हैं ।

कविता की शुरूआत में कविने प्रणाम करते हुए लिख़ा है,

''ज्योति श्री अरविन्द, चेतना के दिव्योत्पल,
पूर्ण सच्चिदानंद, रूप सोभित स्वर्णोज्वल !'

अतिमानस में विकसित तुम आलोकहसित दल,
ओतप्रोत जिसमें असीम आनंद, रजत-जल ।''[28]

यहाँ पर 'अतिमनस' चेतना के ज्योतिर्धर श्री अरविन्द को प्रणाम करते हुए उस स्वरूप को 'पूर्ण सच्चिदानंद' कहा है । आपकी चेतना में समग्ररूप से असीम आनंद भरा है ।

इसके बाद की पंक्तियों में कविने गुरूभक्ति की दृढ़ महिमा का गान गाया है ।

''स्तर पर स्तर कर पार चेतना के, योगेश्वर,
स्वर्णारूण-से नव्योदित तुम चिदाकाश पर !
मानव से ईश्वर, ईश्वर से मानव बनकर,
आये लौट धरा पर, ले नवजीवन का वर !''[29]

हे चेतना के योगेश्वर आपने 'मन' के गहनतम स्तरों को पार कर लिया है । चिदाकाश में 'स्वर्णअरूण' का नव उदय हो । 'ईश्वर' से 'मानव' बनकर इस धरा पर लौटे हो, हमारे लिए नवजीवन का वरदान लेकर आपका 'आगमन' हुआ है ।

''दूत दिव्य-जीवन के, दिव्य तुम्हारा दर्शन,
अति मानस का स्पर्श, प्राण मन करता चेतन !
मानव कर प्रच्छन्न तुम्हारा नव पद्मासन,
तन मन प्राण हृदय ये तुमको देव समर्पण !''[30]

तुम्हारा दर्शन दिव्य है । तुम्हारा जीवन भी दिव्य है । 'अतिमानस' की 'चेतना' का स्पर्श मात्र हमारे प्राण और 'मन' को चेतनवंत बना देते है । मानव के हृदय पर ही आपने पद्मासन लगा रख़ा है । आज मैं अपना सबकुछ तन, मन, प्राण, हृदय सब तुमको समर्पित करता हूँ ।

2. ''स्वर्ण धूलि' काव्य-संग्रह में श्री अरविन्द-दर्शन''

'स्वर्णधूलि' काव्यसंग्रह 'पंतजी' की काव्य-यात्रा का एक महत्त्व-पूर्ण पड़ाव है । इस काव्य-संग्रह में 'कवि' का समर्पण अपने चरम लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता है । यह 'काव्य-संग्रह' विषय-वैविध्य से भी भरा हुआ है ।

सन् 1940 से सन् 1947 तक 'पंतजी' ने गंभीर चिंतन-मनन किया, उसी चिंतन के फलस्वरूप 'स्वर्णधूलि' का प्रकाशन हुआ । यह रचना 'स्वर्णकिरण' के बाद की रचना है । इसमें भी वही चिंतनधारा प्रवाहित है, जो 'स्वर्णकिरण' में थी ।

इस काव्य-संग्रहमें कल्पना और अनुभूति की मात्रा समान रूप से प्रस्तुत हुई है । यहाँ पर वेदों और उपनिषदों की 'आर्षवाणी' को 'पंतजी'ने अपने स्वर से मुखरित किया है ।

इस काव्य-संग्रह की शुरूआत में ही कविने उस अविनाशी परात्पर ब्रह्म को आर्तभाव से पूकारा है । प्रेमभाव से प्रार्थना के साथ कविने कहा है कि 'हे परमात्मा' तुम मुझे उस 'ज्योतिछोर' की ओर ले चलो

''मुझे असत् से ले जाओ तुम सत्य ओर,
मुझे तमस् से उठ़ा, दिख़ाओ ज्योतिछोर
मुझे मृत्यु से बचा, बनाओ अमृत भोर !
बार-बार आ-कर अन्तरमें हे चिर परिचित,
दक्षिण मुख से, रूद्र करो मेरी रक्षा नित्त !''[31]

यहाँ पर 'पंतजी' ने 'ऋषियों' की वाणी को अपना स्वर दिया है ।

इस संग्रह की प्रथम कविता का शीर्षक है 'स्वर्णधूलि' । इस कविता में मानव की युगों की प्यास को व्यक्त किया गया है ।

''स्वर्णबालुका किसने बरसादी रे जगती के मरूस्थल में, [32]

यहाँ पर विष्मय के साथ कविने पूछा है कि इस जगत में मरूस्थल में किसने 'स्वर्णधूलि' को बरसाया है । इसके बरसने से 'मर्त्य धरती' पर अमृत की वर्षा हो गई है । और मानव-मानव, एक-दूसरे का सहायक हो गया है । नाम, रूप के सभी भेद मिट गये हैं । सबके हृदय में 'नव अंकूरण' हो गया है । 'स्वर्ण धूलि' के बरसने से 'मानव' मंगलमय बन गया है ।

'आर्षवाणी' शीर्षक कविता में कविने अन्न, प्राण और मन तीनों के महत्त्व को प्रस्थापित किया है ।

''सत् रज तम से त्रिधा बद्ध, पद अन्न, प्राण, मन ।''[33]

'मानव प्रकृति' तीन गुणों से बंधी है, वे गुण है सत्त्व गुण, रजोगुण, तमोगुण । इसके साथ-साथ, अन्न, प्राण और मन का सीधा सम्बन्ध है । जब 'प्राण' और 'मन' शुद्धता ग्रहण करते हैं, तो वह 'सत्य' की और मुक्ति की ओर आगे बढ़ सकता है ।

'अग्नि' कविता में 'पंतजी' ने योगवाणी को स्वर दिया है । कवि 'अग्निदेव' से प्रार्थना करता है -

''दीप्त अभीप्से, मुझको तू ले जा सत्यपथ पर,
यज्ञकुण्ड हो, अग्नि, हृदय मेरा अति भास्वर ! ।[34]

'हे अग्निदेव' मेरी 'दीप्त अभीप्सा' को सत्य के पथ पर अग्रेसर करो । मैं अपने प्राण, बुनि और 'मन' की आहुति देना चाहता हूँ ।

''यदि तू मैं, तू बन जाऊँ शिख़े ज्योतिमय,
तो तेरे आशिष सत्य हों, जीवन सुखमय ।''[35]

'हे अग्नि शिखा' मुझे ज्योतिमय कर दो । मेरे अंदर रहे सारे कलेश को शांत कर दीजिए । तुम्हारे आशीर्वाद को पाकर मैं सुखमय जीवन को जीना चाहता हूँ ।

हम तुम्हे प्रसन्न करना चाहते हैं लेकिन हमे मालूम नहीं है कि हम तप-बलका सहारा ले या अन्य कोई रास्ता । हम किस 'स्तवन' से तुम्हारी आराधना करें जिससे हमारा 'मन' पावन बन जाए ।

'काल अश्व' कविता में कविने इस सृष्टि पर घूम रहे समय के चक्र को सम्बोधित किया है । 'समय' को बलवान माना गया है । 'समय' अनश्वर है ।

''काल अश्व यह तपः शक्ति का रूप अनश्वर,
दिशा पृष्ठ पर धावमान, अति दिव्य वेगभर !''

'समयरूपी अश्व' में अपार शक्ति है, जो अत्यंत वेग के साथ 'दिशारूपी' पृष्ठ पर दौड़ रहा है । इसको कविने 'महावीर्य' भी कहा है, जो 'सप्त रश्मियों' से शोभित है ।

इस 'विश्वरथ' को 'समय अश्व' खींच रहा है । इसकी गति भी अविरत चल रही है । इस समय का फायदा कौन उठाता है ?

अन्तर्द्रष्टाऋषि, त्रिकालदर्शी जो कविगण,
इस पर करते धीर विपश्चित ही आरोहण ।''[37]

जो ऋषि अंतर दृष्टि से भरा है जो त्रिकालदर्शन को जानने वाले है, और कविगुण इस पर सवार होकर धीरता के साथ आरोहण करते हैं ।

इस समय को वे जीत सकते हैं जो

''बहिरन्तर जो निज को कर सकते संयोजित,
नहीं व्यापती काल अश्वगति उनको निश्चित ।
अथवा जो निर्द्वन्द्व, शुद्ध, निर्लिप्त, ऊर्ध्वचित्
दिव्य तुरंग पर चढ़ वे पार आत्माजित् ।''[38]

जो र्निद्वन्द्व है, जो शुद्धचित्त होता है, जो योगी सबसे निर्लेप होता है, वह समयरूपी 'दिव्य अश्व' को अपने 'वश' में कर विजेता बन सकता है ।

'देव' कविता में 'पंतजी' ने मानव को 'देव' बनने का आह्वान किया है । 'हे मानव' तुम अपने अंदर 'देवत्व' को जागृत करो । तुम नम्र बनकर उसकी 'कृपा' को ग्रहण करो और 'मानवता' के लिए उसे समर्पित भी करते रहो । मानव-मानव के साथ चलें, सबके हित के लिए बोलें, मानव संगठित भी बने । साथ मिलकर 'सत्य' का मनन करके समान गुणो को अर्जित करते रहो । सहयोग से तुम देवों के तुल्य बन जाओ ।

''व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा ग्रहण कर,
उससे श्रद्धा, श्रद्धा से कर प्राप्त सत्यवर
ऋतंभरा प्रज्ञा से भर निज ज्योतित अन्तर
तुम देवो के योग्य बनो, बन मर्त्य से अमर ।''[39]

हे मानव तुम व्रत का पालन करके दीक्षा को ग्रहण करे । दीक्षा के बाद उसकी कृपा को ग्रहण करो । उससे श्रद्धा प्राप्त करो, श्रद्धा से वरदान प्राप्त करो । बादमें उस 'चेतना' को ग्रहण कर, देवों के योग्य बनजाओ । और मृत्यु से ऊपर उठकर अमर बन जाओ ।

'पुरूषार्थ' कविता में कविने पुरूषार्थ पर विशेष बल दिया है । 'मानव' स्वयं अपने प्रयत्न से ऊपर उठकर मंगलमय बन सकता है ।

''कभी न पीछे हटने वाले ही पाते जय,
बहिरन्तर के ऐश्वर्यों का करते संचय ।''[40]

कवि कहता है कि जो अपने मार्ग पर चलते रहते हैं, जो पीछे नहीं हटते वे ही विजय को प्राप्त करते हैं । ऐसे लोग ही 'ऐश्वर्य' को प्राप्त कर सकते हैं ।

कवि कहता है कि हमें चाहिए कि हम 'शुद्धचित्त' बनकर अपनी व्यक्तिगत लालसाओं को छोड़कर इस विश्वयज्ञ में सम्मिलित हो जाए दुर्बल और पीड़ित व्यक्ति की हम सहायता करें । जिसके पास सत्ता है, वे लोग विनीतभाव से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें ।

'प्रच्छन्न मन' कविता में 'पंतजी' ने 'मन' के विविध व्यापारों को प्रस्तुत किया है ।

''एक अंश-भर मात्र बहिर्मुख इन्द्रिय जीवन,
शेष अंश प्रच्छन्न मनस् में रहते गोपन ।''[41]

'मन' के एक अंश को ही हम जान पाते हैं, जिसे हम थोड़ा सा समझ पाते हैं । उसका बहुत बड़ा हिस्सा छुपा हुआ रहता है । जो मानव 'अंतरजीवन' की यात्रा करता है, वह उसे समझ पाता है ।

''वाणी के रे तीन अंश उर गुहा मध्यस्थित,
अधिमनस से दिव्यज्ञान हो उनका प्रेरित ।
बहिरन्तर मानवजीवन हो सत्य समन्वित,
अन्तरवैभव से हो ! भौतिक वैभव दीपित ।''[42]

'अधिमानस' के दिव्यज्ञान की प्राप्ति से हम उस 'मन' से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं । इसके साथ आने से मानवजीवन 'सत्य' के साथ संतुलन स्थापित करता है । इसके बाद ही आंतरिक वैभव की प्राप्ति होती है जिससे भौतिक जीवन भी वैभव से भर जाता है ।

'मंगल स्तवन' कविता में 'पंतजी' ने हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों की आर्षवाणी को सरल भाषा में प्रस्तुत किया है ।

''अमित तेज तुम, तेज पूर्ण हो जनगण जीवन,
दिव्य वीर्यतुम, वीर्य युक्त हों सबके तन-मन ।''[43]

'जनगण' के जीवन को तेजमय बनाने की बात कही है । 'मानव' उस दिव्यचेतना की दिव्य संतान है, इसलिए तुम दिव्य ही हो ।

इस कविता की अंतिम पंक्तियों में 'महाशांति' की स्थापना के लिए आह्वान किया है ...

''स्वर्गशान्ति दे, अन्तरिक्ष दे शांति निरंतर,
पृथ्वीशान्ति, शान्तिजल, औषधि शान्ति दे अजर ।...
शांति, शांति दे हमें, शांति हो व्यापक उज्जवल,
शान्धिाम यह धरा बने, हो चिर जन-मंगल ।''[44]

यहाँ पर कविने सृष्टि के कण-कण में शांति के लिए परमात्मा को प्रार्थना की है ।

"जीवन की साधना
असफल जो सफल बना
सिद्धि सही चिर तपना ।
जीवन की साधना
विपदाएँ
दुराशाएँ
नष्ट मुझे कर जायें
भ्रष्ट न हो पथ अपना ।"[45]

जीवन की साधना निरंतर चलती रहे । असफलता में भी चलते रहेंगे । तपते रहेंगे, सिद्धि को प्राप्त करते रहेंगे । जीवन में चाहे कितनी ही विपदाएँ आती रहे, लेकिन फिरभी साधना-पथ पर चलते रहेंगे ।

'प्रेम मुक्ति' कविता में कविने 'प्रेम' का गीत गाया है ।

"एक धार बहता जगजीवन
एक धार बहता मेरा मन ।
आसपास कुछ नहीं कहीं रे
इस धारा का आदि न उद्‌गम ।"[46]

'प्रेम' की 'धारा' जीवन को भर देती है । 'मन' को तरबतर कर देती है । यह प्रेमधारा का न कोई उद्‌गम है, न कोई अंत ।

'सार्थकता' कविता में 'पंतजी' ने जीवन की सार्थकता की बात कही है ।

''तूने जो दिया मुझे
अमर चेतना का दान
तेरी ओर मेरा प्यार
होता न धावमान
सार्थक होता ? [47]

यहाँ पर कविने ऋणस्वीकार किया है । तूने मुझ 'अमरचेतना' का दान दिया है । इसीलिए मैं तेरी ओर आकर्षित हुआ हूँ । यदि मैं तुम्हारी ओर नहीं आता तो मेरी क्या सार्थकता होती ?

'प्रणाम' कविता में पंतजीने गुरूदेव श्री अरविन्द को प्रणाम किया है ।

''श्री अरविन्द, सभक्ति प्रणाम । ....
दिव्य जगत जीवन के वर द्विज
चिदानंद के स्वर्णिम मनसिज,
ज्योति धाम,
सज्ञान प्रणाम ।''[48]

'हे गुरूदेव' मैं भक्ति के साथ प्रणाम करता हूँ । 'विश्वात्मा' के नवविकास के जनक तुम्हे प्रणाम । ज्ञान, भक्ति, श्री और परमचेतना के प्रकाश तुम्हें प्रणाम । दिव्य तपोबल से इस धरती को अमृत बनाने वाले 'श्री ललाम' तुम्हे बाब-बार प्रणाम ।

अंततः

'पंतजी'ने यह स्वीकार किया है कि आजके आधुनिक युगकी विभिन्न समस्याओं का समाधान 'श्री अरविन्द' के दर्शन द्वारा संभव है ।

''मेरा दृढ़ विश्वास है कि केवल राजनीतिक, आर्थिक हलचलों की बाह्य सफलताओं के द्वारा ही मानवजाति के भाग्य का निर्माण नहीं किया जा सकता । इस प्रकार के सभी आंदोलनों को परिपूर्णता प्रदान करने के लिए, संसार में, एक व्यापक सांस्कृतिक आंदोलन को जन्म लेना होगा, जो मानव चेतना के राजनीतिक, आथिर्क, मानसिक तथा आध्यात्मिक - संपूर्ण धरातलों में मानवीय सन्तुलन तथा सामंजस्य स्थापित कर आज के जनवादको विकसित मानववाद का स्वरूप दे सकेगा । भविष्य में मनुष्य के आध्यात्मिक तथा राजनीतिक संचरण प्रचलित शब्दों में धर्म-अर्थ-काम अधिक समन्वित हो जायेंगे और उनके बीच का व्यवधान मिट जाएगा । अथवा राजनीतिक आंदोलन, सांस्कृतिक आंदोलनों में बदल जायेंगे, जिसका पूर्वाभाष इस युगकी सीमाओं के भीतर 'श्री अरविन्द और 'महात्माजी' के व्यक्तितत्व में मिलता है ।[49]

'युगवाणी' की भूमिका में मैं लिख़ चुका हूँ भविष्यमें जब-तक मानवजीवन विद्युत तथा अणुशक्ति की प्रबल टाँगोंपर प्रलय वेग से आगे बढ़ने लगेगा, तब आज के मनुष्य की टिमटिमाती हुई चेतना उसका संचालन करने में समर्थ नहीं हो सकेगी । बाह्यजीवन के साथ ही

उसकी अन्तचेतना में भी युगान्तर होना अवश्यम्भावी है । इसी नवीन चेतना की मनःक्रीडा उसके आनंद और सौंदर्य, उसकी आशा, विश्वासप्रद प्रेरणाओं के उद्बोधन गान मेरी इधर की (स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण, उत्तरा) रचनाओं के विषय हैं । जो जनयुग के संघर्ष में मानव युग के उद्भव की स्वप्न-सूचनाएँ भर हैं । ''[50]

वास्तव में हमारी कठिनाइयों का कारण है, हमारी एकांगी शिक्षा तथा सदियों की राजनीतिक पराधीनता के कारण पश्चिमी विचार, दर्शन तथा साहित्य की दासता । साधारणतः हमारा बुद्धिजीवी युवक-जो विदेशी सभ्यता या संस्कृति से बाहर ही बाहर प्रभावित है । और अपने देश के विराट ज्ञान भंडार से प्रायः अपरिचित । यह समझता है कि भारत वर्ष की समस्त आध्यात्मिकता तथा दर्शन, पिछली सामन्ती परिस्थितियों का प्रकाश मात्र है, जिसकी इस युग में कोई उपयोगिता नहीं रह गई है ।''

श्री अरविन्द के प्रति श्रद्धाभाव :

''अपनी अस्वस्थता के बाद मुझे 'कल्पना' चित्रपट के संबंध में 'मद्रास' जाना पड़ा और मुझे पांडिचेरी में 'श्री अरविन्द' के दर्शन करने तथा 'श्री अरविन्द आश्रम' के निकट सम्पर्क में आनेका सौभाग्य भी प्राप्त हो सका । इसमें संदेह नहीं कि 'श्री अरविन्द' के दिव्यजीवन - दर्शन से मैं स्वभावतः प्रभावित हुआ हूँ । श्री अरविन्द आश्रम के योगयुक्त (अन्तः संगठित) वातावरण के प्रभाव से, ऊर्ध्व मान्यताओं संबंधी मेरी अनेक शंकाएँ दूर हुई हैं । 'स्वर्णकिरण' और उसके बाद की

रचनाओं में यह प्रभाव मेरी सीमाओं के भीतर किसी-न-किसी रूप में प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होता है ।

'श्री अरविन्द' को मैं इस युगकी अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ । उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ, उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अवलस्पर्शी व्यक्तित्व जिनके जीवनदर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धिग्राह्य, सत्य, नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है । मुझे दूसरा कहीं देखने को नहीं मिला । विश्वकल्याण के लिए मैं 'श्री अरविन्द' की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ । उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणुशक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है । उनके दान के बिना शायद भूत-विज्ञान का बड़े से बड़ा दान भी जीवन-मृत मानवजाति के भविष्य के लिए आत्मपराजय तथा अशांति का वाहक बन जाता । मैं नहीं कह सकता कि संसारके मनीषी तथा लोक-नायक 'श्री अरविन्द' की इस विशाल 'आध्यात्मिक जीवन दृष्टि का उपयोग किस प्रकार करेंगे अथवा भगवान उसके लिए कब क्षेत्र बनायेंगे ।[51]

निष्कर्ष :

'श्री अरविन्द दर्शन' के आधार पर 'पंतजी' की कविता का अध्ययन करने से पत्ता चलता है कि पंतजी की कविता में 'श्री अरविन्द' के दर्शन का विशद् प्रभाव देख़ने को मिलता है उनकी विभिन्न कविताओं का अध्ययन करने के पश्चात कह सकते हैं कि 'पंतजी' की कविता में 'श्री अरविन्द दर्शन' का प्रभाव व्यापक और सर्वग्राही रूपमें पड़ा है ।

संदर्भ संकेत

1. स्वर्णकिरण प्रस्तावना, पृष्ठ–1
2. स्वर्णकिरण पृष्ठ–1
3. वही
4. 'सम्मोहन' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
5. वही – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
6. 'रणतापत' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
7. 'वही' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
8. 'रजतापत' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
9. 'इन्द्रधनुष' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
10. 'वही' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
11. 'अरूणज्वाल' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
12. 'भू–प्रेमी' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
13. 'वही' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
14. 'भूमिका' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
15. 'स्वर्णिमपराग' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
16. 'ऊषा' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
17. 'वही' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
18. 'चन्द्रोदय' – स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

19. 'द्वा सुपर्णा' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

20. 'वही' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

21. 'व्यक्ति और विश्व' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

22. 'वही' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

23. 'आवाह्न' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

24. 'वही' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

25. 'निवेदन' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

26. 'वही' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

27. 'वही' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

28. 'श्री अरविन्द दर्शन' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

29. 'श्री अरविन्द दर्शन' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

30. 'श्री अरविन्द दर्शन' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह

31. 'भूमिका में' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

32. 'स्वर्ण धूलि' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

33. 'आर्षवाणी' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

34. 'अग्नि' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

35. 'अग्नि' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

36. 'कालअश्व' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

37. 'कालअश्व' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

38. 'कालअश्व' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

39. 'देव' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

40. 'पुरूषार्थ' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

41. 'प्रच्छन्नमन' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

42. 'प्रच्छन्नमन' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

43. 'मंगल स्तवन' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

44. 'मंगल स्तवन' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

45. 'साधना' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

46. 'प्रेममुक्ति' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

47. 'सार्थकता' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

48. 'प्रणाम' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

49. 'भूमिका से' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

50. 'भूमिका से' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

51. 'भूमिका से' स्वर्ण धूलि काव्यसंग्रह

चतुर्थ अध्याय
'सुन्दरम्' के काव्य में 'श्री अरविन्द–दर्शन'

(1) 'ध्रुवचित्त' काव्य–संग्रह में 'श्री अरविन्द–दर्शन

(2) 'ध्रुवपदे' काव्य–संग्रह में श्री अरविन्द दर्शन

☼ निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय
"सुंदरम् के काव्य में श्री अरविन्द दर्शन"

1. "ध्रुवचित्त" काव्यसंग्रह में "श्री अरविन्द दर्शन"

ध्रुवचित' 'सुन्दरम्' का महत्त्वपूर्ण काव्यसंग्रह है । इस काव्यसंग्रह में '210' कविताएँ संगृहीत की गई हैं । ये सारी कविताएँ उन्होंने 1984 से लेकर 1987 तक लिख़ी हैं ।

काव्यसंग्रह की प्रथम कविता 'ते... विषे' में 'सुन्दरम्' ने रहस्यवादी विचारधारा को प्रस्तुत करते हुए पूछा है –

"ते
एक
एकल
अजोङड अबोट
एकोङहम् ।"[1]

यहाँ पर उस 'परात्पर पुरूष' की शाश्वती चेतना की बात करते हुए कहा है –

पेलो ते एक
जोतो सर्वत्र
अत्र ने तत्र ।[2]

जीवन दु:ख से भरा है सारे अवतार यही कह गए है लेकिन जगत का मानवसमाज उससे कुछ भी सीख प्राप्त नहीं कर रहा है ।

'न कदी–सदा' कविता में 'सुन्दरम्'ने प्रार्थना के महत्त्व को प्रस्तुत किया है –

"करी आपणी कोई प्रार्थना
निष्फळ कदी न थई छे ।
अंतर मां जे धबक ऊठी ते
कदी न व्यर्थ गई छे ।"[3]

'प्रार्थना' का महत्त्व काफ़ी है, क्योंकि परात्पर पिता कभी भी हमारे हृदय की प्रार्थना को अस्वीकार करते नहीं । इस कविता के अंत में कवि को पूर्ण विश्वास केवल 'प्रभु' के चरण में ही मिलता है ।

'जन्मोजन्म' कविता में सुन्दरम् ने श्रीकृष्ण की व्यापक चेतना को प्रणाम करते हुए लिखा है

"श्री कृष्णः शरणं मम्
कोण आम वदशे अही खरे ?
कोण
कृष्णरूप बनशे कहो खरे ?
कोण कृष्ण शकशे बनीं खरे ?
कोण अेनी करूणा पिछानशे ?"[4]

इस कविता की अंतिम पंक्तियों में कवि ने 'कृष्ण' 'चेतना के नित्यनर्तन को 'बंसरी के स्वर के माध्यम से पहचानने की बात कही है ।

'आपणां तो' कविता में 'कवि सुन्दरम्' ने विश्वास के साथ 'श्री अरविन्द' और 'माताजी' के चरणों में प्रणाम करते हुए लिखा है –

आपणे ते कोण ?
आपणा शां नाम ?
आपणा सा काम ?
आपणे तो बालक
– माताजीनां
– श्री अरविन्दनां
– राम अने कृष्णनां
– परमात्मानां ।''[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में अपने अहंकार की समाप्ति की घोषणा करते हुए कवि अपने आप को कुछ भी नहीं मानते । यहीं से समर्पण की शुरूआत होती है । यहाँ पर कविने अपने आप को 'श्री अरविन्द' के एक 'बालक' के रूप में प्रस्तुत किया है । कविता की अंतिम पंक्तियों में लिख़ा है ...

'समाधिए जई
धूपसळी करी
वंदन करी
घेर आवी
ध्यान धरी
पोढ़ी जवुं । ''[6]

यहाँ पर 'सुन्दरम्' अपने 'दिन' की समाप्ति की बात करते हैं । वे कहते हैं कि दिनभर के अपने कार्य के उपरान्त शाम को 'श्री अरविन्द' की समाधि पर जाकर प्रणाम के साथ सबकुछ समर्पित करने का भाव व्यक्त करना है । और बाद में घर आकर 'ध्यान' में बैठना, और बाद में उनके पुनीत स्मरण के साथ ही निद्राधीन हो जाना यही जीवन का क्रम है ।

'नियमने नमो' नामक कविता में सुन्दरम् व्यक्तिगत साधना के जीवन में अनुशासन की बात करते हुए कहते हैं कि ...

नियम ने नमवुं सदा
पण थवुं पर सर्व थकी रह्युं
चरण केवल इश तणां ग्रही
प्रभुनुं करवुं ज रह्युं कह्युं । [7]

इस छोटी-सी कविता में कविने बहुत बड़ी बात कह दी है, वे कहते हैं कि सबसे 'अलग' होकर ही जीवन में साधना के मार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है । 'प्रभु' के चरणों की वंदना करते-करते ही हम इस भवसागर को पार कर सकते हैं ।

'माताजीनो वीर' कविता में अपने आप को 'श्री अरविन्द' के चरणों में खेलता हुआ वीर बालक कहा है ....

'हुं बाळ छुं भगवाननो
हुं वीर माताजी तणो
मुजने तमारो तो गणो ।[8]

'मटी जईश कल्पांत' में 'सुन्दरम्' ने जीवन के रागद्वेष से उत्पन्न होनेवाली दुःखद् यातना का वर्णन किया है, सुख और दुःख, राग और द्वेष के बारे में इस कविता में 'कविने कहा है कि साधना के द्वारा हमें इस 'कल्पांत' को समाप्त करना ही होगा । क्योंकि इसके बाद ही शांति की स्थापना संभव है ।

'माताजीनो महामाळी' कविता में 'मातृशक्ति' की 'परमकृपा' की बात कही गई है । इस कविता में कवि ने उस 'परम अनुभूति' की बात को व्यक्त किया है ।

'पूर्ण प्रार्थना' शीर्षक कविता में 'सुन्दरम्' हृदय के तीव्र भावों के साथ प्रार्थना के स्वर में कहते हैं –

धन्य धन्य प्रभु, अमे तमारा बाळक प्रणाम लेजो,
अमने उत्तम जीवन देजो, कृपा तमारी रहेजो ... [9]

हे परमपिता ! हम आपकी संतान हैं ! हमारा प्रणाम स्वीकार कीजिए । हमारे जीवन को उत्तम बनाइएगा, हमारे जीवन में सदा ही आप की कृपा बरसती रहे ।

अम हृदये वसजो, अम वचन कर्मे सदा प्रगटजो,
अम जीवनमां प्रतिपद तम करूणा–जल अवतरजो ।[10]

हे परम पिता ! हमारे हृदयमें सदा ही आपका निवास रहें, हमारे वचन में और हमारे कर्म में भी सदाही आपका प्राकटय हो । हमारे जीवन में नित्य ही भागवतीचेतना की करूणा का जल बरसता रहे !

'ज्यहीं तमे छो' – कविता में 'सूक्ष्मसृष्टि' के महानतत्त्व की बात करते हुए 'सुन्दरम्' ने इच्छा व्यक्त की है –

''हुं त्यां जवा प्रार्थुं
हुं पूर्ण भावे
आमंत्रुं ये घणां
जे आपनी दिव्य चित्ति स्फूरी रहे,
जे आपनो पूर्ण संकल्प गोठवे
समस्त तेमां मुज सर्व स्थापवा
प्रार्थुं तमोने, ... [11]

मैं उस परमचेतना के स्पर्श को पाना चाहता हूँ, मैं उस 'परम चेतना' को प्रणाम करते हुए 'पूर्ण संकल्प' करना चाहता हूँ । मुज में आपकी स्थापना के लिए मैं आपको प्रार्थना करता हूँ !

'चरणमुद्रा' कविता में 'सुन्दरम्' उन चरणों की आहट को सुनना चाहते हैं, जिससे 'मधुरिमामयी' 'मातृचेतना' को प्राप्त कर सकें ।

'भीतरमां' कविता में 'कवि सुन्दरम्' उत्साह के साथ अपने आपको आह्वान करते हैं ।

कूदी पड़ो, कूदी पड़ो, कूदी पड़ो,
मननी किनार मूकी भैया
तम आत्मा भीतरमां, [12]

कवि किनारे को पीछे छोड़कर उस धारा में बह जाने को कहते हैं । क्योंकि उसमें एक अजायब सृष्टि है, जिसको 'मन' की आँख से देख़ना है । 'अमरता' के इस महासागर में उसकी गहराईमें 'डूबकी' लगाने की 'मस्ती' को महसूस करना है ।

'परम रसवते !' कविता में 'सुन्दरम्' की कविता प्रार्थना के स्वरमें शुरू होती है –

ऊँ नमो भगवते,
नमो भगवते,
महा भगवते !
मधुर मधुर आ साद [13]

प्रार्थना के मधुर स्वर में कवि कहता है कि तुम्हारी 'कृपा' में ही मधुरता है । तुम्हारी कृपा होने के साथ ही मेरा सर्वस्व सुगंध से भर जाता है । तुम्हारे 'परम रस' में ही मेरा कल्याण है ।

'मंगलाष्टक' कविता में मंगल की कामना के साथ ही कविने 'श्री अरविन्द' को 'सूर्य' मंत्र के साथ पूकारा है यह 'श्री अरविन्द गायत्री' मंत्र से भी जाना जाता है –

ऊँ नमो भगवते
ऊँ तत् सवितुर्वरं रूपं
ज्योतिः परस्य धीमहि ।
यन्नः सत्येन दीपयेत् ॥
श्री अरविन्दः[14]

उस परमात्मा की ज्योति के दर्शन करते हुए साक्षात दर्शन की कामना की गई है । आगे की पंक्ति में कवि कहता है कि हम केवल वंदन ही नहीं करेंगे, केवल स्मरण ही नहीं करेंगे, लेकिन 'सतत' तुम्हारा ध्यान भी करते रहेंगे । इस मानव जीवन को धन्य बनाने के लिए प्रयत्न करेंगे । नित्य तुम्हारे स्मरण के साथ हम सब 'सदा ही मंगलम् की भावना' को हमारे अंदर जागृत करेंगे । परमचेतना की कृपा स हमारा संसार, हमारा जीवन सब ''श्री सुन्दरम् - मंगलम्'' हो जाएगा, यही हमारी भावना है ।

''प्रभु अने माणसो'' कविता में 'कविश्री सुन्दरम्' कहते हैं कि मैं पीड़ में और दुःखी में भी तुम्हारा स्मरण भूलना नहीं चाहता ।

'तुं ज्या ज्यां त्यां हुं तुज संगे,
वचन प्रभुनां आवे,
ऊँचा ऊँचा पर्वत पर ने
ज्यां झरणां कलकलक गावे ।[15]

मैं प्रकृति के हर रूप में उस चेतना का दर्शन करता हूँ, जो वैश्विक चेतना इस दुनिया को संचालित करती है । प्रकृति के हर कण-कण में मैं तुम्हारा 'स्तवन' निरंतर गाता रहूंगा ।

'तेज-पांदडी पद्म' कविता में कविने 'श्री अरविन्द' के दिव्य महाकाव्य 'सावित्री' का आश्रय लिया है । 'सावित्री' के पृष्ठ संख्या 679 से ये पंक्तियाँ लेकर उस चेतना का आह्वान किया है ।

As if the choric calyx of a flower
Aerial, Visible on music's waves,

A lotus of light-petalled ecstasy

took shape out of the tremulous heart of things.

'Savitri' P.679 - Sri Aurobindo [16]

उपर्युक्त पंक्तियों का सुन्दर भावानुवाद इस कविता में किया गया है ।

जाणे के गीतनां पर्ण-पुंज मध्ये मुकायेलुं,
हवाइ पुष्प, संगीत-तरंगो पर दृश्य हा
थाय ते विविध सृष्टिना प्रकंपे भर हार्दनी,
भीतरे थकी को तीव्र रसनी तेज-पांदडी
धरतुं पद्म त्यां एक आकार लईने खडुं ।[17]

यहाँ इस कविता में कविने साधना पथ की बात कही है । साधना के दौरान ध्यान मार्ग की गहन यात्रा के दौरान साधक को ह्रदय के आसन पर एक शतदल कमल के दर्शन होते हैं । जिसकी सुगंध साधक को तरबतर कर देती है । यह 'ह्रदयगूफ़ा' ही उस 'परमचेतन्य' की पर पहचान की जगह है । जहाँ वह स्थित है, जहाँ पर वह निरंतर है । उससे तादात्म्य करना ही साधना का परम लक्ष्य है ।

'आजे कृष्ण' कविता में 'श्रीकृष्ण' के जन्म का वर्णन किया गया है । 'श्रीकृष्ण' के 'अवतरण' के साथ ही समस्त जीवों के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है । लेकिन आज के इस आधुनिक युग में, आधुनिक भारत के लोगों के सामने कितने ही प्रलोभन आ गए हैं, जिससे 'समाजजीवन'

चिंतित है । लेकिन इस दुःखद घड़ी में भी, इस जगत को बचाने का सामर्थ्य केवल कृष्णचेतना में ही है । ऐसा विश्वास इस कविता में व्यक्त किया गया है ।

'तारा पदरव' कविता में कवि को उस परमतत्त्व की पगध्वनि निरंतर सुनाई देती है ।

आ पळ-पळ मां पदरव तारा
स्पर्शी जता अम भीतर ! [18]

हम निरंतर तेरा गुणगान गाते रहेंगे । हम तुम्हारी दिशा में आगे ही आगे बढ़ते रहेंगे । क्योंकि इस अख़िल विश्‍व में हे परमपिता ! तुम्हारा स्मरण मेरे लिए 'मिस्टान मेवा' है ! तुम्हारा ही नमन हो । बारबार नमन हो !

'अण पूज्या प्रभु' कविता में 'श्री अरविन्द' की काव्यपंक्ति का सुन्दर भावानुवाद किया गया है ।

in my heart's chamber lives the unworshipped God.[19]

इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया।

'हृदय तणा मंदिर मां मारा
वसी रह्या प्रभु
अणपूज्या''[20]

कवि कहता है कि मेरे हृदय के मंदिर में हे 'प्रभु' ! – तुम निरंतर रहते

है !, तुम्हारा प्रणाम करता हूँ । इस काव्य पंक्ति में दृढ़ता का भाव देख़ने को मिलता है ।

'तुं आवी' कविता में उस परमचेतना के आगमन को कवि 'हृदय' के आनंद के साथ स्वीकार करते है ।

'ले अम वंदन, अम हृदय ताहरां शरण सुभग प्रार्थतुं,
अम जीवन तुं करमां ले, तव अमरत जगत ने मळतां,
तुं आवी, तुं..... आवी.... ।[21]

कवि हृदय से वंदन करते हुए उस चेतना की शरण चाहता है, क्योंकि जब वह चेतना हमारा संपूर्ण जीवन ही अमृत बन जाता है ।

'जगत् अने जगदीश्वर' कविता में सुन्दरम् साधनापथ पर चलने वाले जीवन की महत्त्वपूर्ण बातों का उद्धाटन प्रस्तुत करते हैं

स्वीकारता - जाय - रहे - जवादे,
ईच्छ्युं - अनिच्छ्युं बनतुं घणुं रहे,
बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा .... [22]
आवुंज आ जीवनः आज सृष्टि
आ छे जगत् ने जगदीश्वरः त्यां
आनंद-शक्ति-शुभ-सत्य पुंजः [23]

'साधक' के जीवन में हर घटना का पूर्ण स्वीकार होता है । इच्छा के विरूद्ध की घटना से भी साधक विचलित नहीं होता, क्योंकि ईश्वर की

ईच्छा ही सबसे बलवान होती है ।

सब ईश्वर को सोंपने के बाद जीवन में 'जगदीश्वर' का प्राकट्य होता है, और हमारा जीवन आनंद शक्ति और शुभ सत्य से भर जाता है ।

2. 'ध्रुवपदे' काव्यसंग्रह में 'श्री अरविन्द दर्शन'

'ध्रुवपदे' काव्यसंग्रह 'श्री अरविन्द दर्शन' को समर्पित काव्यसंग्रह है, जिसमें 'सुन्दरम्' द्वारा सन् 1988 से लेकर सन् 1990 तक लिख़ी गई कुल 188 कविताओं को शामिल किया गया है ।

इस 'काव्यसंग्रह' की प्रस्तावना में 'सुधा सुन्दरम्' ने बड़ी सहजता के साथ लिखा है ।

''इससे पूर्व को पुस्तक 'ध्रुवचित' की प्रस्तावना में ही 'श्री अरविन्द' के 'पूर्णयोग' को सहजता के साथ प्रस्तुत किया है । अब इस पुस्तक के लिए विशेष कुछ कहने को 'मन' नहीं करता । क्योंकि 'कवि' की योगयात्रा चलती रही और उस साधना के दौरान साधना के विविध पहलू विविध अनुभूतियाँ और विविध अवस्थाओं का आविष्कार होता रहा और 'कवि सुन्दरम' अपनी 'कलम' के माध्यम से मित्रों के द्वारा सप्रेम मिली डायरियों में उसे लिखते रहें ।''

(सुधासुन्दरम – 'घ्रुवपदेंकी भूमिका में' पृष्ठ–6)

इस प्रकार इस काव्यसंग्रह की भूमिका में ही स्पष्टता हो गई है कि यह काव्यसंग्रह भी उसी साधना–यात्रा की एक कड़ी है जो यात्रा कवि द्वारा

निरंतर चलती रही । इस काव्यसंग्रह का मूल स्वर भी उसी 'यात्रा' का वर्णन है, जो 'श्री अरविन्द' के दर्शन की महत्त्वपूर्ण स्थापना है ।

'सत्यने कारण' कविता में 'आत्मा' की निरंतर 'यात्रा' का वर्णन करते हुए कवि ने लिख़ा है ।

रात्रि आम वही जती

रभसथी – दिन नवो उगे –

वळी आथमे

आत्मा आ जगनां जलो थी लघु हैयुं भरी आचमें''[25]

यहाँ पर 'प्रकृति' के नित्यक्रम का उल्लेख करते हुए 'रात–दिन' के इस चक्र का वर्णन करते हुए 'सुन्दरम्' कहते हैं कि जीवन इसी प्रकार एक के बाद एक दिन में गुजरता रहता है, और

हमारी 'शुद्धआत्मा' इस जगत के विभिन्न अनुभवों से गुज़रती हुई, एक 'लघु अंजली' से 'आचमन' करती है । और उस 'सत्य' की ओर अपनी यात्रा बढ़ाती है ।

इस काव्यसंग्रह की एक महत्त्वपूर्ण कविता है – Thinkings – जो अंग्रेजी में लिख़ी गई कविता है – यह कविता 20/1/1988 को रात्रि के 3.15 A.M. को 'सुन्दरम्' ने लिख़ी है ।

Do not be afraid of struggle - remember ME.

:

Disease -

Strengthen the subtle physical.

:

See Divine in things.

:

Move fast.

:

Face ME

: Straight to me

relay all to me

No self - centering. Be happy

Tamas -

Nursing the opposing,

act from above.[26]

यहाँ पर कवि कहता है कि, हमें जीवन के संघर्षों से कभी भी नहीं डरना चाहिए । इस दु:खद बेला में तुम निरंतर 'मेरा स्मरण' करते रहो ।

किसीभी 'रोग' से मत डरो क्योंकि यह शारीरिक तकलीफ़ तुम्हे जीवन के गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए शक्तिमान बनाती है : जिससे तुम शरीर से मजबूत होकर आगे बढ़ सकते हैं ।

तुम निरंतर 'दिव्यप्रभु' और 'दिव्यचेतना को देख़ते रहो, देख़ते रहो और तेज़ी से आगे बढ़ते रहो ।

सीधे ही तुम मेरी चेतना से एकाकार हो जाओ और दिव्यचेतना पर संपूर्ण विश्वास रख़के सबकुछ मुझ पर छोड़ दो । तुम कभी भी 'स्वकेन्द्री' मत बनो, तुम केवल आनंद में रहो, आनंद ही तुम्हारे मानवजीवन का लक्ष्य है ।

तुम तत्परता से अपने जीवन से 'तमस्' । आलस्य को फेंक दो उस 'तमस्' का विरोध करो । उपर्युक्त बात को ही 'जीवन' में 'अमल' में लाकर तुम आगे बढ़ते रहो ।

उपर्युक्त कविता में उसी 'परमप्रभु' की दिव्य प्रेरणा की बात कही गई है, जो केवल सत्य है । क्योंकि 'साधना' के इसी जीवन में आध्यात्मिक चेतना निरंतर मार्गदर्शन करती है, और समय-समय पर हमें सूचित भी करती है कि शरीर के किसी भी 'रोग' से मत डरो । तुम केवल मुझ में सपूंर्ण विश्वास रख़कर सबकुछ मुझे सोंप दो । तुम केवल 'आनंद' में रहो । तुम्हें केवल अपने जीवन से 'तमस्' को बाहर फेंक देना है । किसी भी समय तुम्हें आलस्य नहीं करना है ।

'तुं केवी ' कविता में उस 'मातृचेतना' की संमोहिनी शक्ति का वर्णन किया गया है ।

तुं केवी टपकी पडती, मा !

को प्रेमाश्रु समी ।[27]

तुम मेरे जीवन में निरंतर 'प्रेमाश्रु' की तरह रहती हो तुम मेरी मातृशक्ति है ।

'थाकेलां गात्रो पर,
शक्ति शातादायक
शक्ति–स्पर्श शी ।''[28]

थकान से भरे हुए मेरे शरीर में तुम शीतलता के साथ एक नवीन शक्ति के साथ प्रवाहित होती हो ।

तुं केवी –
अविरत, सक्रिय,
शांत, अगाध ।[29]

अंतिम पंक्तियों मे कविने उस परम चैतन्यमयी परमसत्ता को 'बालसहज' भाव से पुकारकर कहा है कि तुम्हारी कृपा अविरत बरसती है । तुम सदा ही सक्रिय हो, तुम शांत हो, तुम्हारी असर अगाध है । हे परमचेतना ! तुम्हारा स्वरूप ही मातृस्वरूप है ! इस लिए मैं तुम्हारी 'चैतन्य गोद' में अपने इस मानवजीवन को धन्य बनाना चाहता हूँ !

'मनुष्यः प्रभु–वृक्ष' कविता भी इस संग्रह की महत्त्वपूर्ण कविता है । इसकी विशेषता यह है कि स्वयं कवि द्वारा हस्तलिखित रूप में इसको यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है ।

इस कविता में 'सुन्दरम्' मानव की महत्ता का 'दिव्यगान' गाते हुए नज़र आते हैं । वे कहते हैं कि इस 'महान सृष्टि' में केवल 'मानव' ही 'परमप्रभु' का 'प्रभुवृक्ष' है, जिसे परमचेतना निरंतर 'नावीन्य' के साथ सिंचित कर रही है ।

'मनुष्य छे, पृथ्वीनी उपर
प्रभुनुं खील्युं उत्तम फूल,''[30]

'मानव' इस पृथ्वी की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है । क्योंकि मानव इस पृथ्वी पर प्रसन्नता के साथ खिला हुआ फूल है, जो सबसे उत्तम है । इसलिए वह 'प्रभुका' सुगंधित पुष्प है ।

''अेने एक महान वृक्ष शुं, वधवुं मूलमां जोरावर,
शाखाओमां महामुक्त रही करवो निज सघळो व्यवहार । ''[31]

उपर्युक्त पंक्तियोंमे 'सुन्दरम्', 'मानव' को परमात्मा के 'श्रेष्ठ वृक्ष' के रूप में देख़ते हैं । और इस 'मानव वृक्ष' के 'विकास' की महान संभावनाओं की ओर इंगित करते हैं ।

आगे कविने जीवन की विपरित स्थितियों की ओर इशारा करते हुए कहा है ....

''पवनो सखत वहे प्रकृतिनां,
खडो रहे ए दृढ़ भय-मुक्त,

प्रभुनी वृष्टि प्रतीक्षतो ए,

उर्ध्वतणां आकाश थकी, [32]

'प्रकृति' के द्वारा 'मानव' की कसौटी ली जाती है । भयंकर तूफान के बीच भी वह दृढ़ता के साथ भय–मुकत होकर खड़ा रहता है । असह्य तूफान के बीच में भी मानव 'प्रभु' कृपा की प्रतीक्षा में प्रार्थनारत रहता है, यह मानववृक्ष निरंतर 'उर्ध्व आकाश' की ओर अपना ध्यान लगाए रहता है । यह 'मानववृक्ष' कभी भी अपने कार्य–मार्ग से चलित नहीं होता, वह डटा रहता है । और एक दिन ऐसा आता है जब...

एक दिवस आवे निजने ए

प्रभु–सुथार ने अर्पे ख़ास बनवा थाळ,

अेनुं जीवन अर्पित बनशे,

निज–पूजानी सामग्री लई पूर्ण रसाळ [33]

वह अपने आपको उस 'प्रभुसुथार' (प्रभुरूपी बढ़ई) को समर्पित कर देता है । जैसे ही वह अपने आपको विशेष बनाने के लिए प्रभु को समर्पित करता है, और उसके साथ ही उसका धन्यजीवन 'प्रभु' की आराधना के लिए सामग्री से भरा हुआ, 'स्व' के पूर्ण प्रेम को लेकर वह उसकी 'पूजा' करते – करते 'स्व' को उस पूर्णता में 'लीन' कर देता है ।

इस प्रकार इस कविता में मानव जीवन की महानता का गौरव प्रस्तुत किया गया है ।

'ए ओश दिये' कविता मे 'सुन्दरम्' वास्तविकता के धरातल पर आकर उसके आदेश को ही जीवन का सबकुछ मानते है ।

''हुं निस्फलता अने सफलता
शा आधारे मापुं ?
हुं तो केवल तुज शरणे
मुज जीवनने संस्थापुं ?''[34]

मैं अपने जीवन की सफलता का आधार केवल तुम्हारी कृपा और करूणा को ही मानता हूँ । मुझे जीवन की सफलता - असफलता में कोई रूचि नहीं है । मैं तो केवल तुम्हारी शरण में अपना जीवन स्थापित कर देना चाहता हूँ ।

इश-हृदय थी जे वही आवे
परमेश्वरी थकी ह्यां,
अे आदेश दिये, शिर धरी
एक-ज कर्म रह्यां त्यां -'' [35]

मैं अपने हृदयमें उस परमात्म चेतना को संस्थापित पाता हूँ, इसलिए मेरे निर्मल हृदय में उस 'परमेश्वरी चेतना' का 'वास' है । जब उसका 'आदेश' मुझे मिलता है, तो उसे मैं अपने शिरोधार्य समजता हूँ । और उसका पालन करना ही मेरे जीवन का परकर्म, कर्तव्य है ।

'Love Ocean' कविता एक छोटी-सी कविता है, जो सिर्फ पाँच पंक्तियों की कविता है । साथ ही साथ यह कविता अंग्रेजी में लिख़ी हुई है

। यहाँ पर कविने 'प्रेम' दिव्यप्रेम की महिमा का गान गाया है । कवि कहते है कि प्रेम तो एक महासागर है, जो अपनी गहराई में, अपनी विशालता में सबका स्वीकार करता है । हमें सच्चा प्रेम थोड़ा थोड़ा करके बढ़ाना चाहिए । उस 'प्रेम' के दिव्यप्रवाह को बढ़ाते हुए उसे सबके प्रति बहाना चाहिए । हमें अपने 'स्वसागर' को विकसित करके 'प्रेम का महासागर' बनाना है ।

Pour a little love.
Over every thing -
The flow should grow
More and More.
into an ocean-self. [36]

इस काव्य-संग्रह की सबसे छोटी कविता का शीर्षक है - 'A Presence' । इस कविता में 'साधनापथ' के साधकजीवन में वर्तमान के महत्त्व को स्थापित किया है । 'साधना' का अर्थ ही है 'वर्तमान' में रहना । जब मानव भूतकाल और भविष्यकाल के व्यापारों से अपने आपको अलग करके अपने आपको वर्तमान के साथ जोड़ता है - उसी समय ध्यान घटता है । 'सुन्दरम्' ने लिख़ा है ।

I am nothing
if not a presence.[37]

इसी प्रकार की एक महत्त्वपूर्ण कविता का शीर्षक है Face things इसमें कवि कहता है कि,

Do not dodge.

anything

face things squarely

with love -

with courage

confidence

The Force will come.

*

*

*

Things happen

like

"Hit and run." [38]

हमे किसी भी स्थिति का सामना करना चाहिए उस स्थिति से पलायन नहीं करना है, वरन् उसका सामने से मुकाबला करना है । उसका सामना करने के लिए हमारे पास अपार प्रेम चाहिए, अपार साहस चाहिए, और हमें अपने आप पर संपूर्ण विश्वास होना चाहिए । जब हम ये तीनों ही गुणों से युक्त होकर उसका मुकाबला करेंगे तब हमे उस 'परमचेतना' से सहायता मिलेगी । और उस पर हम सरलता के साथ विजय प्राप्त कर लेंगे ।

'वादळथी परमात्म लगी' कविता में प्रकृति से परमात्मा को देख़ने का चिंतन प्रस्तुत किया गया है । इस कविता में कवि 'प्रकृति' के विभिन्न दृश्यों को हमारे सामने प्रस्तुत करते है । और उसके बाद कवि यह अभिलाषा व्यक्त करता है कि

"प्रभु खरे शुं दर्शन देशे,
आ जगत तणा परिभ्रमणे ।"[39]

इस जगत में व्यवहार करते करते क्या 'प्रभु' के दर्शन हो सकते हैं ? यह प्रश्न इस कविता के माध्यम से उठाया गया है ।

'सुफल–सफरजन !' कवितामें 'माताजी' के साथ के एक प्रसंग को याद करते हुए 'सुन्दरम्' ने लिख़ा है –

"माताजी बेठां
महानसजर्न –
सौ पर अेनुं
चाली रह्युं छे ऑपरेशन !"

'माताजी' की मौजूदगी से सारे माहौल में नयापन आ गया है । उनकी 'चेतना' सभी पर असर कर रही है । वहाँ पर मौजूद 'जनसमूह' स्वतः शांत हो जाता है । लगता है, कि सारा 'गुलशन' सज गया है । फूलों की सुगंध से वातावरण 'वृंदावन' जैसा हो गया है । आज का दिन सबके जीवन का 'सिद्धिदिन' हो गया ।

'कृपा–छत्र' कविता में व्यक्तिगत जीवन में आत्मशुद्धि पर विशेष बल दिया गया है । कवि कहता है कि 'जगत' के सारे व्यापार निरर्थक है, जिसको लेकर हम सब बैठे हैं । 'सत्य' के मार्ग पर चलने के लिए इस

व्यवहार जगत की झुठी शान को छोड़ना पड़ेगा ।

''आ बधां धंधा
लई बेठो छूं हुं
बेठां लई सौ आपणे
सत्य तेनुं परखीए –
आगे गति ने लाधीए
ईशनी करूणा कृपाना छत्र हेठळ
चालीए
जीवीए
खाली ठठारा टाळवा ।'' [41]

यहाँ पर 'प्रभुकृपा' पर विशेष बल दिया गया है । कवि कहता है कि उस 'परम चेतना' की कृपा में (छत्रछाया में) ही हमारा जीवन चलना चाहिए । साधना के इस मार्गमें चलने के लिए हमें 'दिखावे' की प्रवृत्ति से बचकर चलना चाहिए ।

'PRESENCE SPEAKS' कविता केवल एक पंक्ति की सबसे लधु रचना है, जिसमें कवि को उस परम चेतना पर परम विश्वास है जो चेतना अंतरात्मा के माध्यम से कहती है कि तुम श्रद्धा के साथ आगे बढ़ते ही रहो मैं तुम्हारे साथ हूँ ।

''I will come, you go ahead''[42]

'अभरख़ो' कविता में सब कुछ छूटने की बात कवि ने कही है ।

'थोडुं थोडुं बधुं

करवुं खरे ।''[43]

और सबकुछ मैं ही करता रहूँ यह भी अभिमान अब मुझे नहीं करना है ।

निष्कर्ष :

'सुन्दरम्' की कविता की विशेषता है, विषय वैविध्य । फिर भी प्रस्तुत दोनों काव्यसंग्रह (ध्रुवचित, ध्रुवपदे) में 'श्री अरविन्द दर्शन' संबंधी कविता विशेष रूप से प्रस्तुत हुई है । 'सुन्दरम्' की कविता में स्वयं की साधना की आहट भी सुनने को मिलती है ।

प्रस्तुत दोनों काव्य-संग्रहों की कविताओं को 'श्री अरविन्द दर्शन' के आलोक को प्रतिबिंबित करनेवाली कविताएँ भी कह सकते हैं ।

'सुन्दरम्' की कविता की विशेषता है, अंग्रेजी में लिख़ी हुई महत्त्वपूर्ण कविताएँ । उनकी अंग्रेजी कविताएँ छोटी-सी रत्नकणिकाओं जैसी काफ़ी अर्थ सभर और मार्मिक हैं ।

संदर्भ संकेत

1.	ते... विषे	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.3
2.	ते... विषे	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.3
3.	न कदी–सदा	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.8
4.	जन्मोजन्म	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.16
5.	आपणां तो	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.19
6.	वही	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.19
7.	नियमनने नमो	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.37
8.	माताजीनो वीर	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.42
9.	पूर्ण प्रार्थना	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.42
10.	हे परमात्मा !	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.56
11.	ज्यंही तमे छो	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.72
12.	भीतरमां	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.89
13.	परम रसवते !	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.108
14.	मंगलाष्टक	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.111
15.	प्रभु अने माणसो	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.121
16.	सावित्री	सावित्री श्री अरविन्द पृष्ठ 679
17.	तेज–पांदडी पद्म	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.122
18.	तारा पदरव	ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.184

19. अण पूज्या प्रभु — ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.194
20. वही — ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.194
21. तुं आवी — ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.228
22. जगत अने जगदीश्वर — ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.236
23. वही — ध्रुवचित्त काव्यसंग्रह पृ.236
24. भूमिका से — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.6
25. सत्यने कारण — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.7
26. Thinkings — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.10
27. तुं केवी — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.26
28. वही — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.26
29. वही — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.26
30. मनुष्यः प्रभु–वृक्ष — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.27
31. वही — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.27
32. वही — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.27
33. वही — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.27
34. ए आदेश दिये — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.36
35. वही — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.36
36. Love Ocean — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.43
37. A Presence — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.52
38. Face things — ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.52

39.	बादल थी परमात्मा लगी	ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.56
40.	सुफल - सफरजन	ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.58
41.	कृपा-छत्र	ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.63
42.	Presence Speaks	ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.65
43.	अभरखो	ध्रुवपदे काव्यसंग्रह पृ.83

पंचम अध्याय

'श्री अरविन्द दर्शन' के आधार पर 'पंत' और 'सुन्दरम्' के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

☼ श्री अरविन्ददर्शन की महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ

(1) ज्ञान और सत्य-संबंधी अवधारणा

(2) जीव और जगत्-संबंधी अवधारणा

(3) 'आत्मा' और चैत्यपुरुष-संबंधी अवधारणा

(4) मानव के महत्त्व की अवधारणा

(5) भारतीय संस्कृति की महानता की अवधारणा

(6) जीवन में 'योग' के महत्त्व की अवधारणा

(7) 'अतिमनस' चेतना की अवधारणा

☼ निष्कर्ष

पंचम अध्याय
'श्री अरविन्द दर्शन के आधार पर 'पंत' और 'सुन्दरम्' के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन'

'श्री अरविन्द' आधुनिक युग में उपनिषदों के द्रष्टा माने जाते हैं । उन्होंने 'शंकराचार्य' और 'रामानुजाचार्य' की तरह इसका भाष्य भी प्रस्तुत किया है, और अपने योग अनुभवों के आधार पर विभिन्न प्रश्नों का समाधान भी प्रस्तुत किया है । 'श्री अरविन्द' की दार्शनिक मान्यताएँ स्वानुभव प्रसूत हैं । उन्हों ने स्वतंत्र साधना के बल पर 'सत्य' का उद्‌धाटन किया है । कहीं - कहीं पर 'विश्वरूप' 'दर्शन' की व्याख्या में वे उपनिषदों से भी आगे निकल पाए हैं । क्योंकि उन्होंने इन तमाम पहलुओं को गहरे चिन्तन-मनन एवम् स्वानुभव के आधार पर उजागर कर दिया । जिसे 'श्री अरविन्द'ने कृष्ण चेतना की करूणा के रूप में अभिहित किया है ।

'श्री अरविन्द' ने भारतीय और पाश्चात्य दर्शन का गहन अध्ययन करने के पश्चात् दोनों के 'सारतत्व' को ग्रहण करते हुए दुनिया को समन्वय योग का, 'पूर्णयोग' का मार्ग प्रदान किया है जिस पर चलकर समस्त मानव जाति स्वयं का कल्याण कर सकती है ।

भौतिकता के अतिरेक और कृत्रिम सभयता के भार से लड़खडाती 'मानवजाति' को 'अतिमनस के विज्ञानमय लोक की बहुमूल्य खोज

समर्पित कर दी है । यह घटना पृथ्वी के निवासियों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है । इसीलिए 'श्री अरविन्द' विश्वजन-मानस को स्पंदित कर रहे हैं ।

स्वतंत्र और मौलिक चिंतन होनेके कारण उनका दर्शन समग्र विश्व के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण आधार बन गया है । उनके चिंतन का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने किसी भी दर्शन को ऊँचा-या नीचा न बताकर सभी दर्शनों की मान्यताओं के महत्त्व को स्वीकार किया है ।

'लाइफ डिवाइन' ग्रंथ सर्वदर्शन का सार नहीं है, अपितु सच्चिदानंद सता के रहस्य के साक्षात्कार का मानव सुलभ भाषा में वर्णन है । इसमें 'श्री अरविन्द' के 'पूर्णयोग' की 'सर्वस्वीकृत' अवधारणाओं का स्थापन है, जिसमें कहा गया है कि 'दिव्यजीवन' प्राप्ति के लिए अर्न्तजीवन का रूपांतरण प्रथम शर्त है । उनके अनुसार प्रकृति का लक्ष्य मानव आत्मा का पूर्णविकास करना है । पूर्णविकास का अर्थ है समग्रजीवन में आत्म-चेतना के प्रवाह को प्रस्थापित करना । अपने व्यक्तिगत अहंकार को छोड़कर 'सार्वभौम' जीवन की ओर जाना ही इस दर्शन का लक्ष्य है । व्यक्ति और समष्टि के जीवन को एक दूसरे के निकट लाकर, तन, मन और प्राण तथा आत्मा के प्रत्यक्ष ज्ञानसे 'दिव्य समाज' की, 'दिव्य विश्व' के निर्माण की महत्त्वपूर्ण अवधारणा 'श्री अरविन्द' की आधुनिक युग को देन है । भिन्न-भिन्न समाज के बीच में आपसी सहयोग, और सौहार्द का एक

नूतन उपक्रम है ।

'ह्यूमन युनिटी' ग्रंथ में मानव-मानव के बीच की समानता और एकता पर 'श्री अरविन्द'ने विशेष ज़ोर दिया है । 'श्री अरविन्द' मूलतः एक 'योगी' थे, बादमें दार्शनिक । उनका दर्शन इसलिए भविष्य की समस्याओं की ओर इशारा करता है, और उनका समाधान भी प्रस्तुत करता है । इसलिए आज के विश्व को उनके मार्गदर्शन की अत्यंत आवश्यकता है ।

'श्री अरविन्द' दर्शन के सामान्य सिद्धांत :

अब हम 'श्री अरविन्द दर्शन' की महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं की व्यापक चर्चा करेंगे । तथा मानव चेतना के उत्कर्ष में उनके अवदान को सुस्पष्ट करेंगे ।

दर्शन क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत करते हुए 'श्री अरविन्द' ने कहा है...

''आध्यात्मिक और दार्शनिक दोनों ही ज्ञान में शब्दों के प्रयोग में स्पष्ट और यथार्थ होना आवश्यक है ताकि विचार और अनुभव की क्रमहीनता से बचा जा सके, जो कि उन शब्दों की अव्यवस्था के कारण होती है, जिनको हम उनको प्रकट करने में प्रयोग करते हैं ।[1]

'श्री अरविन्द' ने सत्य ही कहा है -

''दर्शन का कार्य ज्ञान के विभिन्न साधनों द्वारा उपलब्ध सामग्री को, कुछ भी न छोड़ते हुए व्यवस्थित करना, और उनको एक सत्य, एक सर्वोच्च सार्वभौम सद् वस्तु से समुचित रख़ना है ।''

इसीलिए उपनिषद का ऋषि कहता है -

''कस्मिन्नु खलु भगवो विज्ञाने सर्वमिदं विज्ञातं भवति''[2]

अर्थात सच्चा ज्ञान, उस वस्तु का ज्ञान है, जिसके ज्ञान मात्र से सभी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है ।

इसी बातको पश्चिम के चिंतक 'बर्गसाँ' ने इस प्रकार स्वीकार किया है ।

''दर्शन केवल पूर्ण में जीवनके उस सागरमें पुनः पैठने का एक प्रयत्न मात्र है, जिसमें हम समाए हुए हैं । जहाँ से हम स्वयम् श्रम और जीवन का उद्गम है ।''[3]

धर्म और विज्ञान के समन्वय का दर्शन :

'श्री अरविन्द' का दर्शन सहयोग का दर्शन है, जिसमें जीव और आत्मा मानव तथा प्रकृति, मानव तथा विश्व आदि के समन्वय की बात कही गई है । 'श्री अरविन्द दर्शन' ने 'धर्म' और 'विज्ञान' के सहयोग की बात कही है, जिससे भौतिकजगत की समस्याओं का सामना हो सके ।

'धर्म' और 'विज्ञान' जब सहयोग की भावभूमि पर आगे बढ़ते हैं, तो विश्व के कल्याण का मार्ग अपने आप प्रशस्त होने लगता है ।

'श्री अरविन्द' ने 'धर्म' को विज्ञान का आधार लेने के लिए कहा है और विज्ञान को धर्म का । जिससे मानवता का हित हो सके, कल्याण हो सके ।

'श्री अरविन्द' ने अनेक पौराणिक मान्यताओंका खण्डन करते हुए वहाँ पर विज्ञान के दृष्टिकोण का आग्रह रखा है । आधुनिक युग ने विज्ञान के विकास के साथ 'मानवता' और 'विश्व' की दयनीय स्थिति बना दी है । जिसका श्री अरविन्द ने विरोध किया है और 'विज्ञान' के साथ, मानव बुद्धि, मानवहृदय और विश्वहृदय के विकास की बात कही है । 'पूर्णयोग' की साधना के द्वारा मानव अपने 'अंतरतम' का विकास भी कर सकता है । और जब आंतरिक और बाह्य (बौद्धिक) भावधारा का समन्वय होगा, उसके बाद ही 'अधिमनस' चेतना अपना कार्य शुरू कर देगी ।

वैसे धर्म और 'विज्ञान' का लक्ष्य मानवकल्याण, और विश्व कल्याण ही है, लेकिन बौद्धिकता के चरम विकासने दोनों के बीच अंतर कर दिया है । और इसी अंतर की वजह से आधुनिक मानवसमाज अनेक भौतिक सुविधाओं के बावजूद भी दुःखी है, परेशान है । इसका

हल प्रस्तुत करते हुए 'श्री अरविन्द' ने धर्म याद दिलाया है कि दोनों का जन्म ही मानव कल्याण के लिए हुआ है । ऐसे में यदि दोनोंने सहयोग नहीं किया तो मानव और विश्व का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा ।

'सामान्य मानव' से 'देव' तक का हमारा यह सफर है, जहाँ विज्ञान, धर्म, दर्शन सभी अपने-अपने खयालों के माध्यमसे 'मानव' को महायात्रा का मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

'श्री अरविन्द' ने लिखा है कि ''समस्त 'गुह्य ज्ञान', समस्य असाधारण मनोवैज्ञानिक अनुभव और अनुशासन उस गुह्य, स्वयं विकासशील 'आत्मा' के मार्ग की ओर हमें इंगित करनेवाले संकेत चिन्ह और निर्देश मात्र है ।''[4]

'श्री अरविन्द' ने 'व्यूज़ एण्ड रिव्यूज'

नामक अपने ग्रंथ में विज्ञान और धर्म के विभिन्न आयामों की महत्त्वपूर्ण चर्चा प्रस्तुत की है ।

'श्री अरविन्द' का काव्य दर्शन :

'श्री अरविन्द' स्वयं एक महान कवि थे । उन्होंने भावी कविता (The Future Poetry) के माध्यम से आधुनिक विश्व को नव मानवतावादी दृष्टिकोण प्रदान किया है । उनकी विचारधाराने प्रत्येक साहित्यकार को प्रभावित भी किया है । आज के इस 'अंधे युग' को 'श्री अरविन्द' ने नवजागरण

और उन्नत समाज रचना के नये प्रतिमानों को स्थापित किया है । साथ में सांस्कृतिक वैभव को सुरक्षित रख़ने का आह्वान भी किया है । आजका यंत्र-युग मानव को भ्रमित और अशांत बना रहा है । ऐसे में 'श्री अरविन्द' ने 'मानव' के दैहिक और आध्यात्मिक विकास के नये द्वार को खोल दिया है ।

पूर्वजीवन के क्रान्तिकारी राजनेता और बामें पूर्णयोगी बने 'श्री अरविन्द' आंतरिक रूप से एक महान कवि थे । 'श्री अरविन्द' के 'काव्य-बोध' को समझने के लिए एक नूतन दृष्टिकोण की आवश्यकता है । क्योंकि आज पश्चिमी दृष्टिकोण ने हमारी संस्कृति और सभ्यता को, और हमारे साहित्य को ग्रसित कर लिया है । काव्य-चिंतन को अमर विरासत को आज भुला दिया गया है । 'श्री अरविन्द' के चिंतनने सांस्कृतिक पुनरूत्थान का भगीरथ कार्य किया है । उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से 'भंग' की शक्ति को उद्घाटित किया है ।

'श्री अरविन्द' ने 'विश्व कल्याण' की भावना को भी बुलंद स्वर दिया है । ऊन्होंने 'विश्व' को एक बनाने की बात कही है । विश्व की एकता की माँग 'श्री अरविन्द' ने ए ेसे समय में रख़ी थी, जब दुनिया विश्वयुद्ध के बारूद पर बैठकर एक-दूसरे को मारने की ताक में थी ।

'श्री अरविन्द'ने विश्व के समस्त राष्ट्रों को साथ मिलकर मानव विकास की नींव डालने को कहा है । 'सावित्री' महाकाव्य में भी विश्व कल्याण का महानमंत्र गुंजित हुआ है ।

ऊन्होंने मानव को सामान्य चेतना से ऊपर उठकर आगे बढ़ने का आह्वान किया है । वे 'अधिमनस' के 'सुवर्णराज्य' की स्थापना की महान बात कहते है ।

'श्री अरविन्द दर्शन' को देखने के बाद, उनकी महत्त्वपूर्ण दार्शनिक अवधारणाओं के सन्दर्भमें आगे तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता हैं ।

श्री अरविन्द दर्शन की महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ :

(1) ज्ञान और सत्य संबंधी अवधारणा ।

(2) जीव और जगत् संबंधी अवधारणा ।

(3) आत्मा और चैत्यपुरूष संबंधी अवधारणा ।

(4) मानव के महत्त्व की अवधारणा

(5) भारतीय संस्कृति की महानता की अवधारणा

(6) जीवन में 'योग' के महत्त्व की अवधारणा

(7) 'अतिमनस' चेतना की अवधारणा

अब हम 'श्री अरविन्द दर्शन' की उपर्युक्त अवधारणाओं को केन्द्र में रख़कर क्रमशः आलोच्यकवि श्री सुमित्रानंदन पंत और 'सुन्दरम्' की कविताओं की तुलना करते हुए यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि कविश्री 'पंत' तथा 'सुन्दरम्' अपनी कविताओं के माध्यमसे श्री अरविन्द दर्शन की अवधारणाओं को किस प्रकार हम तक पहुँचा सके हैं ।

(1) ज्ञान और सत्य संबंधी अवधारणा :

'ज्ञान' संबंधी अवधारणा :

'श्री अरविन्द' के अनुसार ज्ञान एक असीम और समन्वयकारी ब्रह्म ही है । 'ज्ञान' कोई नवीन अथवा अभी तक अविद्यमान वस्तु नहीं है, जो उत्पन्न की जानी है । वह एक ऐसा सत्य है, जो आध्यात्मिक खोज़ करने वाले के सम्मुख स्वयं ही आ जाता है । क्योंकि वह हमारी अंतरंग आत्मा में विद्यमान है । वह हमारी अपनी आध्यतिम्क चेतना का सत्व है ।

ज्ञान केवल मानसिक प्रक्रिया न होकर समस्त सत्ता का विषय है । एक सर्वाँगपूर्ण आध्यात्मिक चेतना के रूप में वह अपने में 'सत' के सभी अंगों के ज्ञान को लिए रहता है । वह मध्यम के समस्त स्तरों से होता हुआ उच्चतम को निम्नतम से जोड़ता है और एक अविभाज्य पूर्ण की प्राप्ति करता है । भौतिक, प्राणात्मक, मानसिक और अंत में आध्यात्मिक सभी स्तर ज्ञान की प्राप्ति में समान रूप से भाग लेते हैं । पूर्ण ज्ञान

में आत्मसाक्षाकार की तीन सीढ़ियाँ है, जो कि एक ही ज्ञान के तीन पहलू भी हैं ।

प्रथम है - गुह्य चैत्य पुरूष का ज्ञान

दूसरी है - समस्त जीवों में भागवत् सत्ता को देख़ना

तीसरी सीढ़ी है - उस भागवत् सता का ज्ञान जो हमारी आंतरिक भागवत सत्ता है ।

'सत्य' संबंधी अवधारणा :

'श्री अरविन्द' के अनुसार 'सत्य' सच्चिदानंद का सवाँग अनुभव है । और उसका अनुभव पूर्ण का अनुभव है ।

'श्री अरविन्द' ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है -

''सार्वभौम सत्य एक सार्वभौम चेतना का, वस्तुओं का ज्ञान है, जिसमें वस्तुयें उनका यथार्थसत्य और परस्पर तथा दिव्य सत्ता से सच्चे संबंधों में देखी जाती है ।''[5]

'श्री अरविन्द' की 'मान्तया' उनके पूर्व के सभी भारतीय मतों से पूर्ण रूप से मेल ख़ाती है । ऊन्होंने कहा है कि प्रत्येक 'सत्य' इस सर्वाभौम सत्य का अंश है ।

इस प्रकार 'श्री अरविन्द' ने ज्ञान और सत्य को एक-दूसरे का पूरक माना है । तथा व्यवहार की दृष्टि से भिन्न भी माना है ।

'पंतजी' की उत्तरकालीन रचनाओं में विशेष रूप से - स्वर्णकिरण 'स्वर्णधूलि'- 'उत्तरा' आदि रचनाओं में 'श्री अरविन्द' के दर्शन का व्यापक प्रभाव देख़ने को मिलता है । 'ज्ञान' और 'सत्य' संबंधी चिंतन उसी रूपमें उनकी कविताओं में देखने को मिलता है, जैसी 'श्री अरविन्द' की स्वयं की अवधारणा थी ।

इसीलिए 'पंतजी', 'इन्द्रधनुष' (स्वर्णकिरण) कविता में ऋषि की उसी 'आर्षवाणी' को अपना स्वर देते हैं -

असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

आर्ष मंत्र के ज्योति तरंगित ये उदात्त स्वर,
ध्वनित आज भी अन्तर्नभ में दिव्य स्फूरणभर,
असत् तमस के मृत्यु सलिल में हमें पारकर,
सत्य, ज्योति, अमृतत्व दो, जीवन ईश्वर '' [6]

'पंतजी' यहाँ पर उस चेतना से प्रार्थना करते हैं कि मुझे इस अंधकार से उस सत्य की ओर ले चलो । तुम्हार 'ज्ञान' मात्र से ही 'सत्य' की ज्योति का दर्शन होता है, इसलिए 'हे जीवन ईश्वर' मुझे उस 'अमृतत्व' के धाम में ले चलो । मैं 'सत्य' का पूर्ण अनुसरण करना चाहता हूँ ।

आगे की पंक्तियों में 'पंतजी' कहते हैं कि -

''अन्ध तमस में गिरते वे जो मात्र अविधा में रत, ...
भूरि तमस में पड़ते वे जो विधा में रत सन्तत्
विद्याऽविधा उभय एक में भेद जिन्हे यह अवगत
विद्याऽमृत पी, मृत्यु अविद्या से वे तरते अविरत ।''[7]

यहाँ पर 'पंतजी' ने 'ज्ञान' के उदय के साथ विद्या-अविधा का भेद भी प्रस्तुत कर दिया है । जहाँ 'सत्य' है वहाँ 'विद्या' है, और जहाँ सत्य नहीं है वहाँ अंधकाररूपी 'अविद्या' का वास है ।

'साधना पथ' (स्वर्ण किरण) कविता में 'पंतजी' ने 'सत्य दर्शन' को निम्न लिखित रूप में प्रस्तुत किया है -

''सत्य सुदूर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
सत्य एक बहु सूक्ष्म - स्थूल केवल क्षर - अक्षर ।
धरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अम्बर
सत्य हृदय मन, इन्द्रीय, सत्य समस्त चराचर ।'' [8]

यहाँ पर 'पंतजी' ने 'सत्य' के सार्वभौम रूप को स्वीकार किया है । 'पंतजी' ने हर जगह उसी 'सत्य' के दर्शन किये, जो सचराचर में व्याप्त है ।

'द्वा सुपर्णा' (स्वर्णकिरण) कविता में भी पंतजी ने 'सत्य' के ज्ञान का उदधाटन इस रूप में किया है -

''भीतर बाहर एक सत्य के रे सुवर्णद्वय

जीवन सफल उड़ान, पुन संतुलन जो विजय ।''[9]

यहाँ पर 'पंतजी' ने बाह्य और आंतरिक जीवन के 'सायुज्य' पर बल दिया है । जब 'ज्ञान' और 'सत्य' का प्राकट्य होता है, तो साधक के जीवन में गजब का संतुलन आ जाता है । और इस 'संतुलन' के प्राप्त करने के बाद जीवन सफलता और विजय की ओर अग्रसर होता है ।

'स्वर्णोदय' नामक एक लम्बी कविता में 'पंतजी' ने जीवन क्रम के विविध स्वरूपों की चर्चा की है, लेकिन जब मानव इस 'स्वप्नवत्' संसार के किया-कलापों से जागृत होता है । तब,

''क्षेत्र बना मानव के मन को
करते मंगल सृजन विश्वमय,
स्पन्दित शत मानस यंत्रों में
होता ज्ञानोदय का संचय !
मुक्त, सर्वगत हो विकसित मन'' [10]

जब 'मानव मन' में 'ज्ञानोदय' होता है, तब इस संसार के असार ख़ेल को मानव भाप लेता है ।

'अग्नि' स्वर्ण धूलिं कविता में 'पंतजी' ने फिर एक बार प्रार्थना के स्वर में अभीप्सा की है

''दीप्त अभीप्से, मुझको तू ले जा सत्यपथ पर, [11]

यहाँ पर कवि ने 'सत्य' को जानने के लिए उस महायज्ञ में अपनी आहुति देने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया है ।

'अमर्त्य' (उत्तरा) कविता में 'पंतजी' ने 'सत्य' के वर्णन को करने के लिए 'भाषा' को असमर्थ पाया है । कविने पूछा है ?

भ्रम होता, तुम थे मर्त्य, अमर ?
तुम आये, गये जगत का छल
तुम हो, तुम होंगे सत्य अटल
रीता हो भरे धरा अंचल
तुम परे अचिर-चिर से - सुन्दर ![12]

'पंतजी' ने अब उस 'अटल सत्य' को पहचान लिया है । इसलिए वे कहते हैं यह जगत तुम्हें समझ नहीं पाता क्योंकि वह केवल बाहर ही ख़ोज रहा है जबकि तुम तो सदा के लिए मेरे चिर साथी हो । तुम्हें पहचानना ही मेरे लिए सुन्दर है ।

'गुजराती' भाषा के लब्धप्रतिष्ठ कवि 'श्री सुन्दरम'ने अपने आपको 'श्री अरविन्द' के चरणों में समर्पित कर दिया था । अपने परिवार समेत वे 'श्री अरविन्द' की साधनाभूमि 'पोंडिचेरी' में 'श्री अरविन्द आश्रम' के सदस्य के रूपमें ही जीवनभर रहे ।

'सुन्दरम्' की कविताओं में भी 'यात्रा', 'लोकलीला', 'ध्रुवचित्त', 'ध्रुवपदे' काव्य संग्रहों की अधिकांश कविताएँ 'श्री अरविन्द दर्शन' को

समर्पित हैं ।

'ज्ञान' और 'सत्य' के बारे में 'सुन्दरम्'ने अपनी कविताओं में लिखा है । उनकी अवधारणा 'श्री अरविन्द' की अवधारणाओं से पूर्ण रूप से प्रभावित है ।

'श्री अरविन्द' की 'साधना' के बारे में उन्होंने 'ध्रुवचित्त' काव्य- संग्रह की भूमिका में इस प्रकार लिखा है

'श्री अरविन्द' का योग वह योग है जिसमें रूपांतर की साधना होती है ।

यह 'साधना' है अभीप्सा, परित्याग और 'समर्पण' की त्रिविध तपस्या । मतलब यह कि 'प्रभु की अभीप्सा' - प्रभु के लिए परित्याग - और प्रभु को समर्पण - । वैसे यह साधना है जीवन में कार्यरत रहते हुए, अपने कार्य को करते हुए, 'सत्य' का अनुसरण करते हुए स्वयं क आत्मा का विकास करना ।''[13]

-सुन्दरम् 'ध्रुवचित की भूमिका' पृष्ठ-8

इस साधना की बात करते हुए उन्होंने लिखा है ।

''आ जीवन छे संग्राम, खरे कोई रमत नथी,
ए सागर ज्यां अमृत काजे देव-दानवो रह्यां मथी'' [14]

यह जीवन एक संग्राम है, और इसके 'सत्य' को प्राप्त करने के

लिए लगातार संघर्ष ज़ारी है । जिस प्रकार 'अमृत' को पाने के लिए देवताओं और दानवों ने समुद्र मंथन किया था, वैसे ही 'ज्ञान' और 'सत्य' को पाने के लिए 'साधना पथ' पर संघर्ष ज़ारी रख़ना है ।

''शंकर महान
जगत छे फोक
ब्रह्म ज छे सत्य,
साधो अद्वैत
अव्यक्ते लय''[15]

इस प्रकार 'ते ... विषे' कविता में 'सुन्दरम्' ने 'अद्वैत' के संधान से 'सत्य' की प्राप्ति का मार्ग खोज़ लिया है ।

'सुन्दरम्' के अनुसार 'ज्ञान' और 'सत्य' के आविर्भाव के लिए मानव को अपने अहंकार को छोड़ देना चाहिए । क्योंकि 'अहंकार' ही अंधकार का सर्जक है । 'अहंकारनुं स्मारक' (ध्रुवचित) कवितामें कविने इस प्रकार वर्णन किया है ।

अहंकार थी जे कैं आवे
छेकी नाखो,
भूंसी नाखो '' [16]

कोई महत्त्व नहीं है । जब तक अहंकार से हम मुक्ति प्राप्त नहीं करेंगे, तब तक, 'सत्य' का उद्धाटन संभव नहीं ।

ज्ञान और सत्य के बारे में ''श्री अरविन्द दर्शन'' की अवधारणा बहुत ही स्पष्ट हैं । सभी प्रकार की भिन्न - भिन्न मान्यताओं के अध्ययन और अनुभूति की गहराई से 'श्री अरविन्द' ने अपनी अवधारणा प्रस्तुत की है । जो सभी प्रकार की भिन्न-भिन्न मान्यताओं का सम्मुचित नूतन स्वरूप है ।

हमारे आलोच्य कवि 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविताओं में 'श्री अरविन्द' की ज्ञान और सत्य सम्बन्धी अवधारणा का पूर्ण परिपालन देखने को मिलता है ।

'पंतजी' की कविता में जहाँ पर 'कल्पना' और 'अनुभूति' का सुंदर सामंजस्य हुआ है, वहाँ पर 'सुन्दरम्' की कविता में 'अनुभूति' की गहराई और 'जीवन-साधना' का असर देख़ने को मिलता है ।

'ज्ञान' और 'सत्य' की बात करते हुए हम यह भी कह सकते हैं कि 'पंतजी' जहाँ अपनी अनुभूतियों को लगातार कविता में लिख़ते गये वहाँ पर 'सुन्दरम्'ने अपनी अनुभूतियों को कभी-कभी ही कविता में शब्द देह दिया है । और उन्होंने उन कविताओं को लिख़कर उन्हें अपनी डायरी में ही रख़ा । 'प्रकाशन' का बहुत बड़ा कार्य तो 'सुन्दरम्' की मृत्यु के पश्चात हुआ है । जिसे उनकी पुत्री 'सुधा सुन्दरम्' ने संपन्न किया है ।

निष्कर्ष :

इस प्रकार 'श्री अरविन्द-दर्शन' की 'ज्ञान और सत्य' संबंधी अवधारणा के आधार पर 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविताओं की तुलना करने से प्रतीत होता है कि दोनों ही कवियों की कविताओं में समानरूप से स्वानुभूति का प्रकाशन हुआ है ।

(2) 'जीव' और 'जगत्' संबंधी श्री अरविन्द की अवधारणा :

'जीव' जीवात्मन् और 'जीवात्मा' का अर्थ 'श्री अरविन्द' के अनुसार एक ही है । 'श्री अरविन्द' ने कहा है - ''जीवात्मा जन्म और मरण से अतित और वर्तमान में सदा एक रस वैयक्ति आत्मा है ।''[17]

'श्री अरविन्द' की 'जीवात्मा' संबंधी अवधारणा का आधार 'उपनिषद' तथा श्रीमद् भगवत्गीता है । इसी के अधार पर वे 'जीवात्मा' को 'एक', अजन्मा और सनातन मानते हैं ।

'ब्रह्म' और 'जीव' को 'गीता' में अभिन्न, अनादि और अनंत कहा गया है ।

'गीता' में कहा है,

'आत्मा' (जीवात्मा) न मरती है, न मारी जाती है । न तो किसी

काल में जन्मती है, न मरती है । क्योंकि यह अजन्मा, नित्य और शास्वत और पुरातन है । शरीर के नष्ट होने पर भी वह नष्ट नहीं होती है ।''[18]

इसके साथ-साथ वे 'जीवात्मा' की इस यात्रा को 'अतिमनस्' की स्थिति का आरोहण करवाते हैं, यही अवधारणा 'श्री अरविन्द' की अपनी मौलिक है ।

'जगत्' संबंधी अवधारणा भी भारतीय दर्शन प्रणाली का आधार ग्रहण करती है ।

प्राय: सभी दार्शनिको ने जगत को मिथ्या माना है, और उसे 'मायावी' बताकर उससे बचने की बात कही गई है ।

लेकिन श्री अरविन्द ने सच्चिदानंद ब्रह्म की अभिव्यक्ति माना है । और इस 'जगत्' को महत्त्व भी दिया है । उन्होंने अपने सिद्धांत में 'जगत्' के पूर्ण रूपांतर की बात कही है । जो सर्वथा 'नवीन' है ।

'श्री अरविन्द' के अनुसार जगत का सत्-चित और आनंद की स्थिति में रूपांतर होना ही 'अतिमनस' की भावभूमि है ।

'उपनिषद' की तरह ही 'श्री अरविन्द' ने जगत निर्माण के क्रम को वर्णित किया है ।

'श्री अरविन्द' के अनुसार साधनापथ में 'जीव' और 'जगत्' दोनों का काफी महत्त्व है ।

'श्री अरविन्द' की उपर्युक्त अवधारणा का सांगोपांग निरूपण हम 'पंतजी' की कविताओं में देख़ सकते हैं । 'पंतजी' ने भी स्वीकार किया है कि 'जीव' और 'जगत' दोनों ही 'तत्त्व प्राप्ति' के महत्त्वपूर्ण रूप है ।

'रजतापत' (स्वर्ण-किरण) कविता में पंतजी ने 'जीव' और जगत की बात इस प्रकार कही है -

'संयम तप की सुन्दरता से,
जग-जीवन शतदल दिक् प्रहसित ।'[19]

इन पंक्तियों में कविने संयम और तपस्या के मार्ग पर 'जग-जीवन' की दिशाओं को देख़ा है ।

''करे आत्मनिर्माण लोक-गण''[20]

जैसी पंक्तियों में भी 'पंतजी' ने 'जगत्' के 'पुनरूध्धार' को व्यक्त किया है ।

'अरूण-ज्वाल' कविता में 'पंतजी'ने जगत को आह्वान किया है ।

-'जग की डाली-डाली में तुम,
सुलगाती नव जीवन प्रवाल ।''[21]

इस कविता में कविने 'जगत' की समग्र चेतना को 'नवजीवन' की लहरों पर प्रवाहित कर दिया है ।

''मैं इस जग में नहीं अकेला
मुझको तनिक न संशय
वही चाह है कण-कण में
जो मेरे उर में निश्चय ।'' .... [22]

यहाँ पर पंतजीने समस्त 'जगत' को एक साथ पाया है, क्योंकि 'समग्र जगत' के 'जीवात्मा' की 'प्रार्थना' ही इस 'जगत' के परिवर्तन का निमित्त बन सकती है ।

'जीव' और 'जगत्' के कल्याण का मार्ग निश्चित है । 'पंतजी' ने अब 'जगत्' के 'परिवर्तन' को पूर्ण रूपसे देख लिया है ।

''विश्व सरसी में नवल ख़ोल किरणों के दल,
फूटता युग प्रभात
शोभित कर दिङ्मण्डल ।''[23]

कविने स्वीकार किया है कि 'सारा विश्व' नये युग प्रभात के आने से दिव्य हो गया है ।

'जगत' के 'कल्याण' की 'वाणी' को 'पंतजी' ने मुख़ररूप दिया

है । 'जीव' और 'जगत' आज इस मार्ग पर मंत्रमुग्ध हो गया है ।

> ''प्रीति प्राण में
> अमर हो बसी,
> गीत मुग्ध हो, जग के प्राणी
> निःस्वर वाणी ।''[24]

यहाँ पर 'पंतजी' ने जगत् के सभी प्राणियों में उस 'लय' को देखा है, जिस 'लय' का सहारा लेकर 'जीव' और 'जीगत' दोनों अमर हो सकते हैं ।

'सुन्दरम्' की कविता में भी 'श्री अरविन्द' की 'जीव और जगत संबंधी' अवधारणा का वर्णन देखने को मिलता है ।

'सुन्दरम्' ने स्वयं अपना जीवन 'साधना' को पूर्णरूप से अर्पित कर दिया था । इसलिए वे 'जीवात्मा' और 'जगत' की कीमत अच्छी तरह से पहचानते थे ।

इस 'जगत' में तुम्हारा ही साम्राज्य है, तुम्हारी शक्ति ही हर जगह नर्तन कर रही है ।

> ''ज्यां कोइ ना, तुं छो त्यहीं,
> रएियामणी, मोहक, महाशक्तिमय, ''[25]

'सुन्दरम्' इस 'जगत' में उसी चेतना की 'व्याप्ति' को देख़ते हैं ।

'पूर्ण प्रार्थना' कविता में इस 'जगत' को 'जीवन यज्ञ' की संज्ञा दी है ।

''विशाल पृथ्वी वास अमारो, जीवन यज्ञ अमारां,
अम शक्तिने ज्ञानभक्ति त, प्रभु ए वरदान तमारां''[26]

समग्र पृथ्वी के निवासी हम सब तुम्हारी चेतना द्वारा ही संचालित है, और हम सबका जीवन तुम्हारा ही यज्ञ-तप है ।

इसी प्रकार ''जगत् और जगदीश्वर'' कविता में भी 'सुन्दरम्' ने उसी 'परमात्मा शक्ति' की सत्ता को स्वीकार किया है ।

यह जगत कैसा है

''बलीयसी केवल मीश्वरेच्छा
''जानी पछी ईशनी संग पामे,
संयोग-ऐनी करूणा-कृपानी
छाया-महा स्पर्शथी - अग्र वाधे...''[27]

''आवु ज आ जीवनः आज सृष्टि
आ छे जगत् ने जगदीश्वरः त्यां
आनंद-शक्ति- शुभ-सत्य पुंज ।''[28]

यहाँ पर 'सुन्दरम्' ने जीव-जगत् और 'जगदीश्वर' को एक साथ

पाया है । कवि हमारे जीवन की बात करते हुए कहता है कि यह जीवनचक्र तो ऐसे ही चलता रहता है, लेकिन जब इस 'जीव' को तुम्हारी कृपा का वरदान मिल जाता है, तो इसका जीवन आनंद और शक्ति से शुभ और मंगलमय हो जाता है ।

इसके अलावा 'गीताना प्रकाशे' 'गीतानुं गौरव' – गीता वरदायिनी' आदि कविताओं में 'सुन्दरम्' ने 'जगत्' और 'जीव' की विभिन्न अवस्थाओं पर प्रकाश डाला है ।

निष्कर्ष :

इस प्रकार 'जीव' और 'जगत' संबंधी 'श्री अरविन्द' की अवधारणा के आधार पर हमारे दोनों आलोच्य कवियों की 'कविता' की तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' दोनों की कविता में 'जीव' और 'जगत्' के बारेमें एक परिपकव चिंतन देख़ने को मिलता है । और दोनों की कविता में यह विचारधारा समानता के साथ प्रवाहित दिखाई देती है ।

(3) 'आत्मा' और 'चैत्यपुरूष' संबंधी श्री अरविन्द की अवधारणा

'श्री अरविन्द' ने 'आत्मा' को अनंत माता है । यह अवधारणा शंकराचार्य की अवधारणा से संपूर्ण मेल ख़ाती है । साथ-साथ, भारत के प्राचीन ग्रंथों से भी 'श्री अरविन्द' की यह स्थापना संपूर्ण मेल खाती

है । 'श्री अरविन्द' ने 'आत्मा' की विभिन्न प्रकार की गतियों को लक्ष्य में रखकर ही 'चैत्यपुरूष' की अवधारणा प्रस्तुत की है । उनके अनुसार जब 'चैत्यपुरूष' पूर्ण रूपसे जागृत होता है, तो मनुष्य की चेतना का विकास होता है ।

'चैत्यपुरूष' दिव्य चेतना का स्वरूप है । वह 'आत्मा' की आंतरिक और सूक्ष्म शक्ति है । उसका दशर्न नहीं होता, मात्र अनुभूति की जा सकती है । जैसे बिजली के प्रवाह को देखा नहीं जा सकता है, किन्तु उसकी उपस्थिति अनेकों उपकरणों से प्रकट होती है । वैसे ही मनुष्य देह में निवास कर रही 'चैत्यशक्ति' के प्रागट्य से मनुष्य की क्रिया-शीलता में असाधारण गति उत्पन्न होती है । उसके अंदर अद्भुत और अलौकिक, तेज आनंद और शांति का प्रवाह बहने लगता है ।

'चैत्य पुरूष' को चैत्यशक्ति या चैत्यतत्वभी कहते है वही 'चिदात्मा' है । वह हृदय प्रदेश के समीप, मेरूदंड के मध्य भागमें, छाती के बीच केन्द्र में है । चैत्यपुरूष मन, प्राण, शरीर की चेतना के केन्द्रों को स्पर्श करता है ।

''चैत्यपुरूष'' को 'श्री अरविन्द'ने काफ़ी महत्त्वपूर्ण माना है, इसे अंग्रेजी में 'Psychic Being' कहा गया है ।

'पंतजी' की कविता में इसी 'आत्मा' और 'चैत्यपुरूष' का वर्णन किया गया है ।

''करे आत्म निर्माण लोकगण
आत्मोज्वल, भू मंगल के हित । ''[29]

यहाँ पर 'पंतजी'ने 'आत्म' निर्माण की बात बताई है । इसी धरती के हित में है कि समस्त विश्व आत्मिक दृष्टि से उत्तरोत्तर उन्नत दिशा की ओर आगे बढ़ता रहे ।

'पंतजी' ने अन्य एक कविता में उस 'चैत्यपुरूष' को प्रसन्न करने के लिए पूछा है कि मैं क्या क्या उपाय करूँ, जिससे तुम्हारा प्राक्टय हो ।

''कैसे तुझे प्रसन्न करें हम, वरें दीप्तमन,
ज्ञात नहीं पथ, प्राप्त नहीं तप, बल या साधन ।
कौन मनीषा यज्ञ भेंट दे, कौन हवि, स्तवन
जिससे तेरी शिख़ा, कर सके वहन 'मन' ।''[30]

'पंतजी' उस चैतन्य को प्रसन्न करना चाहते हैं, जिससे उसकी शक्ति को पा कर साधना के पथ पर आगे बढ़ सकें ।

'दिव्य पुरूष जो अति समीप, अन्तरतम मे स्थित,
नहीं देख़पाते जन उसको, वह अभिन्न नित ।''[31]

वह 'चैत्यपुरूष' हमारे अंदर ही स्थिति है जो हमारे अत्यंत 'समीप' है, लेकिन इस अभिन्न तत्त्व को सामान्य जन

नहीं देख़पाते ।

'सुन्दरम्' की कविताओं में भी 'आत्मा' और 'चैत्यपुरूष' संबंधी वही 'श्री अरविन्द' की अवधारणा देखने को मिलती है ।

'केवा रे केवा आवे
अणदीठ ना ऊंडा अणसार
उडो रे आतम मारा,
पहोंचो रे पृथ्वीनी पले पार,''[32]

यहाँ पर कवि ने 'आत्मतत्त्व' को 'उड़ान' भरने के लिए कहा है । क्योंकि हमें पृथ्वी के उस पार तक जाना है ।

उस 'चैत्य पुरूष' को जाग्रत करे की अदम्य इच्छा 'सुन्दरम्' की निम्नलिखित पंक्तियों में देख़ने को मिलती है –

'होय अमारे जे करवानुं, करावववानुं
कहेता रहेजो काने,
गुह्य प्रगट शब्दोंमां के हा
दिव्यतमा को साने । ''[33]

उस 'तत्व' को प्राप्त करने के लिए कवि की ओर से संपूर्ण तैयारी

की गई है । 'चैत्यपुरूष' को पाने का सहज मार्ग मानो कवि को मिल गया है ।

''नियमने नमवुं सदा
पण थवुं पर सर्व थकी रह्युं
चरण केवल ईश तणा ग्रही
प्रभुनुं करवुं ज रह्युं कह्युं ।'' [34]

'जगत' के क्रियाकलापों को छोड़कर सबसे परे होकर, उसके दिख़ाये रास्ते पर चलते रहना चाहिए ।

उसको प्राप्त करने के लिए तुम्हे मात्र एक ही कार्य करना है ।

''तुं तन्मय थइ जा''[35]

उसके प्रति जब तन्मयता आती है, तो अन्य सभी समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं -

''शुद्ध शुद्ध जे सत्य-मूलतम तत्व,
ते परे बेसो,
अंतरतम जे - मर्म पदारथ,
तेमा पूर्ण प्रवेशो,''[36]

उस शुद्धतत्त्व को पाने के लिए 'चैत्यपुरूष' के लिए 'शास्वत निष्ठा' की आवश्यकता रहती है । और जब उसके लिए हमारी 'निष्ठा' पूर्ण हो जाती है तब,

''शुं इच्छो छो ज्ञान,

पूर्ण मां पूरी शाश्वतनिष्ठा,

हरि नयने ने हरिचरणे जई

लो आसन, त्यहीं प्रतिष्ठा''[37]

('विशुद्ध ललाट')

उस 'चैत्य पुरूष' को पाने के लिए 'हरिचरण' के पीछे पीछे जाना पड़ता है । और उसके लिए आसन स्थापित करके बैठना पड़ता है ।

निष्कर्ष :

'आत्मा' और 'चैत्यपुरूष' संबंधी अवधारणा का परिपालन 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' दोनों की कविताओं में देखने को मिलता है ।

'पंतजी' की कविता में 'चैत्यपुरूष' के लिए संपूर्ण वर्णन देख़ने को मिलता है, वहाँ पर 'सुन्दरम्' की कविता में उतना विस्तृत वर्णन देखने को नहीं मिलता ।

लेकिन फिरभी दोनों की कविता में उक्त अवधारणा की प्रस्तुति देख़ने को मिलती है ।

(4) 'मानव' के महत्त्व की अवधारणा :

'श्री अरविन्द' के चिंतन के केन्द्र में 'मानव' है, मानव जाति है ।

'मानव' के कल्याण के लिए ही उन्होंने अतिमनस चेतना के अवतरण के लिए महाप्रयास किया ।

'श्री अरविन्द' ने मानव को सबसे महत्त्वपूर्ण माना है । अपने चिंतन में लगातार 'मावन कल्याण' के प्रयत्न करते रहे । आधुनिक युग में भी 'श्री अरविन्द' को 'मानव' के ऊपर परम विश्वास है । आज भले ही सारे विश्व में स्वार्थ और भ्रष्ट वातावरण निर्मित हो गया हो, लेकिन इस धुँधली राह में भी 'श्री अरविन्द'ने 'विश्व मानव' पर पूर्ण श्रद्धा रखी है । उनका 'मानव' किसी जाति, किसी देश, या किसी धर्म का नहीं है । उनका मानव विश्व मानव है, जो सभी मर्यादाओं और सभी मान्यताओं के बावजूद भी 'चेतना' के धरातल पर कार्य कर रहा है ।

'भागवत् जीवन' ग्रंथ में 'श्री अरविन्द' ने 'मानव' के महत्त्व को प्रस्थापित किया है । और 'मन' के आधार पर उसके 'विकास' की संभावनाओं को प्रस्तुत किया है । 'श्री अरविन्द' ने 'विश्व' को एक नया दृष्टिकोण प्रदान करते हुए 'मानव' में निहित क्षमताओं को विश्व के समक्ष उजागर

किया है ।

'पंतजी' की कविता में 'श्री अरविन्द' की इस अवधारणा को काफ़ी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है । 'पंतजी' ने स्वयं लिखा है कि धर्म, दर्शन और 'विज्ञान' का चरम लक्ष्य 'मानव' की सुख़ाकारी ही है, और हमारा साहित्य तो 'मानव' को केन्द्र में रख़कर ही रचा जाता है ।

इसीलिए 'पंतजी' ने सबसे पहले यही लिख़ा था,

'विहग सुन्दर,
सुमन सुन्दर
मानव तुम
सबसे सुन्दरतम''

यहाँ पर उन्होंने 'प्रकृति' के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी 'मानव' को सबसे 'महत्त्वपूर्ण' स्वीकार किया है –

''निज जीवन का कटु संघर्षण
भूल गया अब मानव अन्तर
जग–जीवन के नव स्वप्नो की
ज्योति वृष्टि में अमर स्नान कर ।''[38]

यहाँ पर 'श्री अरविन्द दर्शन' के सम्मोहन की बात को प्रस्तुत करते हुए कविने 'मानव' की बात कही है । अब 'मानव' अपने जीवन

के अनेक संघर्षो के बावजूद भी 'अतिमनस ज्योति' की वृष्टि में स्नान कर रहा है –

''करे आमनिर्माण लोकगण
आत्मोज्वल, भू मंगल के हित ''[39]

यहाँ पर पंतजी ने मानव समूह को 'आत्म निर्माण' का आह्वान किया है । इस विश्व के कल्याण के लिए 'मानव' अपने 'आत्म निर्माण' के अभियान को आगे बढ़ाए, क्योंकि उसमें ही उसका कल्याण है ।

'स्वर्णोदय' कविता में 'पंतजी' ने 'मानव' जीवन के महत्त्व को प्रस्थापित किया है । यह एक लम्बी कविता है, जिसमें 'पंतजी' ने 'मानव' के 'जीवनचक्र' को वर्णित किया है । इस धरती पर जब 'मानव' का 'शिशु' के रूप में जन्म होता है, तब उसका स्वागत देखिए –

स्वागत, स्वागत
प्रयत नवागत
हो प्रशस्त तेरा जीवन पथ,
जग के शूल फूल हों अभिमत
प्रिय शिशु, तू हो पूर्ण मनोरथ ।''[40]

'पंतजी' ने 'नव आगंतुक शिशु' का हृदय से स्वागत किया है । और शुभाकांक्षा व्यक्त की है कि इस 'जगत' में, तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो । 'जीवन पथ' पर बिछे हुए शूल फूल के रूप में परिवर्तित हो जाएँ ।

'मँगल स्तवन' कविता में 'पंतजी' ने 'मानव' को बलवान, और 'वीर्यवान' बनने के लिए कहा है –

''अमित तेज तुम, पूर्ण हो जन-गण जीवन,
दिव्य वीर्य तुम, वीर्य युक्त हों सबके तन-मन ।''[41]

हे 'मानव' तुम दिव्य हो, तुम दिव्यता की संतान हो ।
तुम्हारा 'तेज पूर्ण जीवन', 'जन सामान्य' के कार्य में लग जाए ।
तुम तेजस्वी और 'वीर्यवान' हो ।

❖ 'मानव' के महत्त्व का गान 'सुन्दरम्'ने भी अपनी कविता में गाया है । उन्होंने 'मानव' को सबसे महत्त्वपूर्ण माना है ।

आपणे ते कोण ?
आपणा शां नाम ?
आपणा शां काम ?....
आपणा तो नाम ....
राधाने माधव
राम अने सीता
कृष्ण ने बलराम
गांडा ने घेला ..'' [42]

यहाँ पर 'सुन्दरम्' ने अपने आप से संवाद करते हुए मानव महिमा का वर्णन किया है । 'मानव' सामान्य नहीं है, क्योंकि इसी मानवदेह के विविध नाम इस प्रकार है – 'राधा और माधव', 'राम और सीता',

'कृष्ण और बलराम' । इस प्रकार हे मानव तुम सामान्य नहीं हो । तुम्हें सबसे पहले अपने आप को पहचानना है । जब तुम अपने आप को समझ जाओगे तो फिर तुम्हीं राधा-माधव, राम-सीता हो ।

'केवुं सरस, आ माणसे शुं गोठव्युं सघळुंज आ,
एमांय पण एना मगजमां, गोठवाई घणुं रह्युं'' [43]

यहाँ पर मानव-जीवन क्रम को कविने सुन्दर बताया है । साथ में मानव मस्तिष्क का भी बख़ान किया गया है -

''मनुष्य छे पृथ्वीनी ऊपर
प्रभुनुं खील्युं उत्तम फूल,
प्रभु-रूपमां जवा कारणे एनो जन्म थयो उत्फुल्ल ।''[44]

कविने 'मानव' को 'प्रभु' का स्वरूप कहा है । इस सृष्टि में 'मानव' परमात्मा की 'सर्वोत्कृष्ट' कृति है । 'मानव' 'प्रभु' का सुंदर पुष्प भी है । 'मानव' को ही यह अधिकार मिला है कि वह 'मानव' से 'परमात्मा' तक जा सकता है ।

निष्कर्ष :

इस प्रकार 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' दोनों की कविता में 'मानव' को सबसे 'सुन्दरतम' कहा गया है । 'पंतजी' जहाँ पर 'मानव' को सबसे 'सुन्दरतम' मानते हैं वहाँ 'सुन्दरम्' मानव को 'परमात्मा का सुंदर पुष्प' मानते हैं ।

'श्री अरविन्द' ने 'सावित्री' महाकाव्य में 'अश्वपति' की कथा के द्वारा अपनी मानव संबंधी अवधारणा को स्पष्ट किया है । ठीक उसी प्रकार हमारे आलोच्य कवि 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' ने भी 'मानव' को महत्त्वपूर्ण माना है ।

दोनों आलोच्य कवियों की 'मानव' के महत्त्व संबंधी कविताओं को देखने के बाद एक बात निर्विवाद है कि 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' दोनों ने समानरूप से 'मानव' के महत्त्व को स्वीकार किया है ।

(5) भारतीय संस्कृति की महानता की अवधारणा :

'श्री अरविन्द' का दर्शन भारतीय संस्कृति के महत्त्व मानने वाला श्रेष्ठ भारतीय चिंतन है । 'श्री अरविन्द' ने 'भारतीय संस्कृति' को कोटि - कोटि वंदन करते हुए अपने - आपको भाग्यवान बताया है । 'श्री अरविन्द' ने भारतीय संस्कृति को ऋषि संस्कृति कहा है । उन्होंने विश्व की सभी संस्कृतियों को महान बताया है । लेकिन उन सभी में भारतीय संस्कृति के विशेष महत्त्व को स्वीकार किया है ।

'श्री अरविन्द' बचपनमें जब इंग्लेण्ड में पढ़ाई कर रहे थे, उसी समय से उन्होंने इस महान संस्कृति के भिन्न-भिन्न पक्षों का अध्ययन शुरू कर दिया था ।

'श्री अरविन्द' को अपने 'नानाजी' से तथा अपनी 'माँ' से बचपन से ही भारतीय संस्कृति के उत्तम विचार प्राप्त हुए थे । उनके 'नानाजी', 'आर्यसमाज' से काफी प्रभावित थे । साथ-साथ विभिन्न, पुराणों और रामायण - महाभारत से भी प्रभावित थे ।

यही संस्कार 'श्री अरविन्द' को मिले थे, जहाँ उनके पिताजी उन्हें पाश्चात्य संस्कार में रँगना चाहते थे, वहाँ 'श्री अरविन्द' को अपनी संस्कृति के प्रति विशेष लगाव था ।

इसलिए 'बी.ए. स्मिथ' नामके पाश्चात्य चिंतक ने स्वीकार किया है ।'

''भारतीय जन-जीवन में दर्शन, धर्म, चिन्तनगत परम्परा की अपनी विशिष्टता की ऐसी छाप है, जो इसे अन्य संस्कृतियों से स्वभावतया अलग करती है । यह विशिष्टता है, सामाजिक, धार्मिक, और बौद्धिक विकास में स्वतंत्र इकाई के रूप में इस बात का अस्तित्व ।''[35]

इस प्रकार भारतीय संस्कृत के महत्त्व को पश्चिम के आलोचकों ने भी स्वीकार किया है ।

'पंतजी' की कविता में भारत और इसकी संस्कृति का विशेष गीत गाया गया है । भारतीय संस्कृति महान संस्कृति

है इसलिए ही इस धरती पर नये युग का प्रभात होता है ।

'स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
विचरतीं धरती पर
स्वप्नों की तूलि धर
चेतना रंजित कर
जगती के रजकण ।''[46]

'पंतजी' ने अपनी कविता में भारत देश को 'ज्योति भारत' कहकर पुकारा है ।

''ज्योति भूमि,
जय भारत देश !
ज्योति चरण धर जहाँ सभ्यता
उतर तेजोन्मेष ।''[47]

यहाँ पर 'भारतीय' संस्कृति के गौरव को प्रस्तुत किया गया है ।

इसकी संस्कृति महान क्यों है ?

''समाधिस्थ सौंदर्य हिमालय,
श्वेत शांति आत्मानुभूतिलय,
गंगा-यमुना जल ज्योतिर्मय
हँसता जहाँ अशेष । [48]

भारतीय संस्कृति की विशेषता क्या है ?

''फूटे जहाँ ज्योति के निर्झर,
ज्ञानभक्ति गीता वंशी स्वर,
पूर्णकाम जिस चेतन रज पर,
लोटे हँस लोकेश ।''[49]

भारत की संस्कृति ज्ञान, भक्ति और गीता की संस्कृति है । यहाँ ज्ञान, भक्ति और 'वैराग्य' के निर्झर बहते हैं । इसलिए यह संस्कृति महान है ।

''ग्रहण करो फ़िर धाराव्रत,
भारत के नव यौवन,''[50]

इस कविता में 'पंतजी' ने भारतीय संस्कृति के जागरण-गीत को गाया है ।

''उठे जूझने विश्व समर में दुर्धर
लोक चेतना के युग-शिखर भयंकर
विशवसभ्यता रूग्णः हृदय में
व्याप्त हलाहल भीषण
अमृतमेघ छिड़केगा,
न प्राण संजीवन ?'' [51]

'पंतजी' ने विश्व सभ्यता को बचाने के लिए भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण योगदान का आह्वान किया है ।

❖ 'सुन्दरम्' की कविता में भी भारत की महान संस्कृति का गुण गाया गया है । 'भारतीय संस्कृति' के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की चर्चा की गई है ।

''अहा महा हुं पर्वत मेरु महान,
अखिल विश्वमां हुं सौथी धनवान''[52]

यहाँ पर भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग 'हिमालय' को कविने याद किया है । इस कविता के माध्यम से कवि अपने आपको 'मेरू पर्वत' मानते हैं । और इस दृष्टि से दुनिया में सबसे ज्यादा अपने आपको संपत्तिवान बताते हैं ।

'महाभारत' को याद करते हुए 'सारथि' को याद किया है - उस 'महायुद्ध' के पश्चात ही 'सत्य' और धर्मकी स्थापना हुई थी -

''आ लोक तो कुरूक्षेत्र छे -
धर्म तेमा स्थापवो
सत्यनो पथ मापवो,....
सृष्टि पर, ज्यां - ज्यां अधर्म
त्यांथी ते उत्थापवो ।'' [53]

'महाभारत' के 'सत्य' का उद्‌धाटन करते हुए 'धर्म' की स्थापना पर बल दिया गया है –

''भगवान ज्यां थई सारथि अम साथमां,
त्यां कयो रस बाकी जीवनमां रहे ?''[54]

इस संस्कृति की सबसे महान घटना का वर्णन यहाँ पर किया गया है । जब स्वयं 'श्रीकृष्ण' सखाभाव से 'अर्जुन' के सारथी बने थे । यही महान उपलब्धि है इस भारतीय संस्कृति की ।

निष्कर्ष :

'श्री अरविन्द' की भारतीय संस्कृति की महानता की अवधारणा को ध्यानमें रख़कर हमारे आलोच्य कवि 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविता को देखने से पता चलता है कि दोनों कवियों की कविता में भारतीय संस्कृति के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है । लेकिन 'सुन्दरम्' की अपेक्षा 'पंतजी' की कविता में इस अवधारणा का विशेष वर्णन देखने को मिलता है ।

'पंतजी' ने 'भारतीय संस्कृति' के वर्णन के लिए अनेक कविताएँ लिख़ी हैं, जबकि 'सुन्दरम्' ने इस विषय पर कुछ कम ही कलम चलाई है ।

(6) जीवन में 'योग' के महत्त्व की अवधारणा :

'श्री अरविन्द' स्वयं एक महान योगी थे, उन्होंने प्राचीन

भारतीय योग का गंभीर अध्ययन किया । बाद में अपनी अनुभूति के धरातल पर पूर्व की सभी प्राणालियों के निचोड़ के रूप में अपने 'पूर्णयोग' की स्थापना की ।

मानवजीवन का एकमात्र लक्ष्य है, जन्म के बँधन से मुक्ति पाना । इसी मुक्ति के लिए ही 'जीव' अनेक जन्म लेता है, लेकिन 'मायारूपी संसार' उसे अपनी भ्रांति से ग्रसित कर लेता है, फलस्वरूप 'जीव' अनेक जन्मों से इसी प्रकार 'आवागमन' करता रहता है ।

'श्री अरविन्द' ने अपने 'पूर्णयोग' में इस बात पर बल दिया है कि 'मानव' अपने को मिले हुए इस अवसर का सही ढंग से उपयोग कर सके । इसीलिए 'श्री अरविन्द' ने लिखा है ।

''हमारा योग कोई 'नयायोग' नहीं है । यह तो प्राचीन भारतीय योग, विशेषकर 'भगवत्-गीता' के 'कर्मयोग' से सम्बन्धित है । हमारा 'योग' एक आध्यात्मिक अभियान है ।''[55]

'श्री अरविन्द' ने 'गीता' के 'कर्मयोग' पर अधिक बल दिया है । 'श्री अरविन्द' ने अपने 'योग' में पूर्ण - समर्पण की भावना, संकल्प, और अभीप्सा पर विशेष बल दिया है ।

'श्री अरविन्द' ने इसी 'मानवजीवन' के रूपांतर की बात

कही   है । इस रूपांतर की प्रक्रिया के माध्यम से ही 'साधक' 'योगयात्रा' की भिन्न-भिन्न उपलब्धियों को प्राप्त करता हुआ, 'अतिमनस की चेतना' के आश्रय में पहुँच जाता है ।

'पंतजी' ने भी अपनी उत्तरकालीन कविताओं में स्वीकार किया है कि 'योग' का बहुत बड़ा महत्त्व मानवजीवन में है । 'श्री अरविन्द' के 'योग' के 'यात्री' बनने के बाद 'पंतजी' की कविता को एक निश्चित आधार मिल जाता है ।

'पंतजी' 'प्रकृति' के परम आराधक थे और बाद में वे 'पूर्णयोग' की आराधना में लीन हो गए ।

'पंतजी' ने जीवन में उत्साह के साथ 'पूर्णयोग' की अवधारणा का स्वागत किया है ।

'हँसी लो, स्वर्णकिरण,
शिख़र आलोकवरण ।
विचरती स्वर्ण किरण
धरा पर ज्योति चरण ।''[56]

'पंतजी' अपने आपको और समस्त विश्व को धन्य समझते हैं । 'साधना मार्ग' के प्रस्थान पर उनको 'स्वर्णकिरण' मिलती है, और वे अपने आपको धन्य मानने लगते हैं -

''अन्तर का रूपांतर है, और बाह्यविश्व का रूपांतर,

नव चेतना विकासधरा को स्वर्ग बना दे चिर सुन्दर ।''[57]

विश्व को 'पूर्णयोग' की अवधारणा मिलने के बाद कवि को संपूर्ण विश्वास है कि अब हम सबका रूपांतर निश्चित है । इस रूपांतर के बाद विश्व के विकास को कोई भी नहीं रोक सकता । इसी विकास के क्रम में एक दिन यह धरती स्वयं स्वर्ग बन जाएगी ।

'पूर्णयोग' के आचरण से, उसकी साधना से 'विश्वजीवन' में बदलाव आ जाएगा ।

''मौन मधुर गरिमा से शोभन,
बनाशील संस्कृत जगजीवन ।''[58]

जैसे ही ''मौन'' में उतरकर 'जगजीवन' उस 'रस' को प्राप्त करेगा उसके साथ ही सबका जीवन 'शील' से 'सुसंस्कृत' हो जाएगा ।

'युग प्रभात' कविता में 'पंतजी' ने इसी 'नूतन युग' के प्रभात को चित्रित किया है, जो 'पूर्णयोग' के द्वारा प्राप्त हुआ है ।

''विश्व सरसी मे नवलखोल किरणों के दल,
फूटता युग प्रभात
शोभित कर दिग्मंडल ।''[59]

'योग' के जीवन में प्रवेश करने से सचमुच मानवजीवन में 'युग प्रभात' की बेला आती है । समग्र जीवन में 'नवचेतन' का संचार हो जाता है ।

इस 'योग' का रास्ता कौन-सा है ?

''ज्यों हो जाता चन्द्र-सूर्य की आभा में लय,
प्राण इन्द्रियाँ आत्मा में मिलती निःसंशय ।
नित्य इन्द्रियों से अतीत आत्माका जीवन
अमृत नाभि जो अन्न प्राणमनकी चिर गोपन ।[60]

'पूर्णयोग' में जैसे ही आगे बढ़ेगे, वैसे ही सारे 'संस्कार' समाप्त होते जाएगे । हमारी समस्त इन्द्रियाँ 'आत्मतत्व' मे एकाकार हो जाएँगी । और आगे जा कर 'अन्नमय' - 'प्राणमन' की स्थिति प्राप्त होगी । और अंत में जा कर 'आत्मसूर्य' का प्रकाश मिलेगा, जिस प्रकाश को प्राप्त कर जीवन धन्य हो जाएगा ।

❖ 'सुन्दरम्' 'श्री अरविन्द' के 'पूर्णयोग' के समर्पित साधक थे । इसलिए उनकी कविता में 'योग' विषयक अवधारणा का वर्णन मिलना स्वाभाविक ही है । 'सुन्दरम्' ने अपना संपूर्ण जीवन ही 'पूर्णयोग' को समर्पित कर दिया था । लम्बे समय तक वे 'श्री अरविन्द आश्रम' के साधक के रूपमें रहे । 'योग' को समग्रजीवन में स्थापित भी किया ।

'योग' मार्ग के गूढ़ रहस्य को उन्होंने इस प्रकार चित्रित किया है -

''नाहं प्रकाशः स्र्वस्व योगमाया समावृतः'' [61]

इस जगत में 'योग' के विशेष कार्य के लिए ही हमें यहाँ भेजा गया है

इस 'योग मार्ग' पर चलने के लिए कवि अपने आपको तत्पर करते है, और स्वीकार करता है कि इस 'मार्ग' पर सामान्य व्यक्ति का काम नहीं है ।

''काचा पोचानुं अहीं काम ना,
थाकी पडेलां ने ठाम ना
वंटोळने माथे मोटा वंटोळ थै,
बेसे जे तेने आवकार छे''[62]

मार्ग में आनेवाले तूफ़ान से जो टकरा सकता है वही इस 'पूर्णयोग' के मार्ग पर चल सकता है –

''तपशुं तप सौ तीव्र उग्रने,
झिलीशुं आह्वानो ।''[63]

यहाँ पर कवि ने 'तपस्या' के लिए अपने आपको तैयार कर लिया है । और 'योग' के 'महा आह्वान' को स्वीकार कर लिया है ।

'श्री अरविन्द' के 'योग' को स्वीकार करते हुए कविने लिखा है –

''आपणे ते कोण ?
आपणां शां नाम ?
आपणां शां काम ?

आपणे तो बालक

- माताजीनां

- श्री अरविन्दनां

- राम अने कृष्णनां

- पमात्मानां''[64]

'सुन्दरम्' ध्यान के माध्यम से 'योगसाधना' में आगे बढ़ना चाहते हैं ।

''शांति थई ?

तो

ध्यान धरी

खुल्ली आँख़

मींची लो ।''[65]

'ध्यान' करते करते 'शांति' की 'आभा' में समर्पित हो जाने की बात यहाँ पर कही गई है ।

इस योग मार्ग में भीतर तक जाने के लिए 'निश्चय' की आवश्यकता है ।

''कूदी पडो, कूदी पडो, हा कूदी पडो,

मननी किनार मूकी भैया,

तम आत्मा भीतर मां । [66]

इस कविता को अंग्रेजी में भी कवि ने लिखा है -

Jump into your
inner self
from the brink
of your mind.[67]

यहाँ पर 'सुन्दरम्', 'आत्मा' के अंदर डूबने की बात कहते हैं । 'मन' के किनारे को छोड़कर हमे उस तत्त्व की गहराई तक जाना है ।

'साधना' के लिए कवि ने ह्रदय से उसको पुकारा है

'पृथ्वी तणे प्रांगण ईश लाववा
करवी शी साधना ?
आनंदलीलामय विश्व सर्जवा,
करवी शी साधना ?
प्रकाश शोधुं ऊरनी गुहा विषे,
कृपा चहुं आशिषदायी हस्तनी ।''
शी साधना ?[68]

इस विश्व पर 'परमात्मा' की कृपा बरसाने के लिए साधना करना अत्यंत आवश्यक है । इस विश्व को आनंद मय बनाने के लिए पूर्णयोग की साधना की आवश्यकता है ।

इस प्रकार 'सुन्दरम्' की कविता का मुख्य स्वर ही 'योगसाधना' है । इसलिए उनकी कविता में बहुधा ऐसी कविता देख़ने को मिलती है ।

'सुन्दरम्' ने साधक जीवन की भिन्न-भिन्न अनुभूतियों को भी अपनी कविता में सुन्दरता के साथ चित्रित किया है ।

इसलिए ही 'सुन्दरम्' ने इस 'मंत्र' को गाया है ।

''ॐ

नमो

भगवते

त्वत्सांनिध्ये''[69]

उसकी 'कृपादृष्टि' मिलने के बाद वह किसी भी परिस्थिति का सामना करने में सक्षम है -

''पवनो सख़्त वहे प्रकृतिना, ख़डो रहे ए दृढ भय-मुक्त,

'प्रभु' नी वृष्टि-प्रतीक्षतो ए,

ऊर्ध्व तणां आकाश थकी

निज निर्णीत ज कार्य थकी ए,

लेश चलित ना थतो कदी ।''[70]

'साधक जीवन' में अनेक प्रकार की मुश्किले आती हैं, लेकिन 'प्रभुकृपा' से वह सभी का सामना दृढता के साथ कर लेता है । वह कभी भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होता ।

निष्कर्ष :

इस प्रकार 'योग' के महत्त्व की अवधारणा के संदर्भ में आलोच्य कवियों की तुलना करने से सिद्ध होता है कि दोनों ही कवियों की कवितामें इसके महत्त्व को प्रस्तुत किया गया है ।

'पंतजी' की कविता में कल्पना और अनुभूति की प्रधानता देखने को मिलती है । जबकि 'सुन्दरम्' की कवितामें 'अनुभूति' पक्ष की प्रबलता देखने को मिलती है ।

इस प्रकार दोनों ही कवियों ने अपनी कविता में 'पूर्णयोग' की प्रतिष्ठा की है, और साथ-ही साथ मानवजीवन में 'योग' के महत्त्व को भी स्वीकार किया है ।

'पंतजी' और 'सुन्दरम्' दोनोंकी यह दृढ़ मान्यता है कि 'श्री अरविन्द' के 'पूर्णयोग' के अनुसरण के माध्यम से ही 'विश्व' सुन्दर और सुख़द बन सकता है । इस विश्व को मंगलमय, और कल्याणकारी बनाने के लिए 'पूर्णयोग' के रास्ते पर मानव को चलना ही होगा ।

(7) 'अतिमनस्' चेतना की अवधारणा :

'श्री अरविन्द' के योग का एक मात्र उद्श्य यह है कि मनुष्य को आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त है । इसकी प्राप्ति के

लिए 'श्री अरविन्द' ने अथाक परिश्रम करके 'अतिमनस्' चेतना का पृथ्वी पर अवतरण किया ।

'अतिमनस्' की चेतनाको प्राप्त करने के लिए जो साधना करनी होती है, उसी को 'श्री अरविन्द' ने पूर्ण योग कहा है ।

'अतिमनस्' चेतना के बारे में विस्तार से हम 'प्रथम अध्याय' में चर्चा कर चुके हैं ।

'पंतजी' की काव्य-यात्रा का महत्त्वपूर्ण अंग है उनकी चेतनावादी कविता । उनकी उत्तरकालीन रचनाओं में 'अतिमनस्' चेतना का वर्णन देखने को मिलता है ।

'पंतजी' ने 'अतिमनस्' चेतना के अवतरण के लिए अपनी कविता में आह्वान किया है । उन्होंने संसार को बताया है कि संसार की सभी समस्याओं का हल है अतिमनस् चेतना का पृथ्वी पर अवतरण । जब यह चेतना पृथ्वी पर अवतरित हो जाएगी तो मानव की सभी समस्याओं की समाप्ति भी निश्चित रूप से हो जाएगी ।

''जन-मन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित,
संस्कृति का 'भू' स्वर्ग अमर आत्मिकविकास पर
अवलम्बित ।''[71]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'पंतजी'ने जन मन को उस चेतना के अवतरण के लिए जागृत करना चाहा है । सामाजिक जीवन के चरम-विकास के लिए सभी का सामूहिक प्रयत्न अत्यंत आवश्यक है ।

''आयी अरूणोदय मंदिर में,
पथप्रकाश का करने विस्तृत ।
दिव्यचेतना की ऊषा वह
अधर-पल्लवों में प्रभातस्मित ।''[72]

यहाँ पर 'पंतजी' ने 'दिव्यचेतना' की 'ऊषा' के आगमन को लक्षित करके 'अतिमनस्' चेतना के प्रति अपना अहोभाव व्यक्त किया है -

''वह सोने का चाँद ऊगा ज्योतिर्मय मन-सा...
वह सोने का चाँद उठा ज्योतित अधिमन-सा...''[73]

इन पंक्तियोंमे 'पंतजी'ने प्राकृतिक वर्णन करते हुए 'अतिमनस्' की चेतना की बात कही है -

''ज्योति श्री अरविन्द, चेतना के दिव्योत्पल,
पूर्ण सच्चिदानंद, रूप शोभित स्वर्णोज्वल,
'अति मानस में विकसित तुम आलोकहसित दल,
ओतप्रोत जिसमें असीम आनंद रजत जल ।''[74]

इस कविता में 'पंतजी' ने 'श्री अरविन्द' को वन्दन करते हुए

प्रार्थना की है कि 'हे श्री अरविन्द' सारी पृथ्वी अब 'अतिमनस् चेतना' की प्रतीक्षा में है आप हम पर कृपा कीजिए ।

''दूत दिव्य जीवन के, दिव्य तुम्हारा दर्शन,
अतिमनस् का स्पर्श, प्राण मन करता चेतन ''[75]

यहाँ पर 'पंतजी' ने 'अतिमनस्' की 'चेतना' के स्पर्श का वर्णन किया है । उस चेतना के स्पर्श मात्र से 'प्राण' और 'मन' चेतना से भर जाता है ।

'सृजन शक्तियाँ' (स्वर्णधूलि) नामक अपनी कविता में 'पंतजी' ने 'अतिमनस् चेतना' को जगत में प्रवाहित करनेवाली देवियों को प्रणाम किया है ।

महामहेश्वरी देवी, महालक्ष्मी देवी, महा सरस्वती देवी और महाकाली के रूप में चतुर्भुज देवियों की वंदना की है ।

'अन्तर्विकास्' कविता में भी कवि ने 'अतिमनस् चेतना' के विकासक्रम को लक्षित करते हुए ज्ञान और भक्ति के माध्यम से इसके विकास की बात कही है -

''टूटते शिखर पर मानस के
रँग-रँग के छायारव निर्झर
नव सुषमा, प्रीति मधुरिमा से

भर जाता ज्योति द्रवित अन्तर ।''[76]

इस कविता में भी कविने मानस शिख़र पर उस 'नवचेतना' के उदय् का स्वागत किया है । 'नव सुष्मा' से ह्दय भर जाता है जब 'चेतना' निर्झर के रूप में बहने लगती है ।

❖ 'कविश्री सुन्दरम्' ने भी अपनी कविता में 'अतिमनस् चेतना' का वर्णन प्रस्तुत किया है –

'हती झंखी जेने प्रखर सहरानी तरस थी,
अहीं ते छे हावां सकल नमनां नीर लईने ...[77]

'अहीं आवो, औ, सौ, निज-निज तणा भीतर लई,
तमारे अर्थे हयां अमृतमयी ते छे अवतरी ।[78]

'कवि'ने 'अतिमनस्' चेतना को युगों से चाहा है, और कवि की प्रार्थना को सुनकर वह चेतना आज इस पृथ्वी पर अवतरित हो गई है, इसलिए कवि सबको अपने पास बुलाता है । और कहते हैं कि तुम्हारे लिए ही 'अमृतमयी' चेतनाने दिव्यलोक से अवतरण किया है ।

कविने 'सौने कहुं' कविता में 'मानव' से कहा है कि उसकी 'कृपा' हम सब पर बरस रही है केवल एक बार ह्दय से प्रार्थना करनी चाहिए,

''प्रार्थना सघळी फळे छे......

सौने कहुं

जाते ख़जानो शोधी लो,

जाते तमारी जातने

उद्‌बोधी लो । [79]

यहाँ पर कवि ने कहा है कि ' ख़जाना' हमारे सामने ही पड़ा है । केवल हमे समर्पण भावना का विकास करना है जिससे 'चेतना' हमारे कल्याण के लिए बरसती रहे ।

कवि ने एक अन्य कविता में इस प्रकार 'दिव्यशक्ति' को पुकारा है -

'ऊषाओ ऊगीने नित्य

पलटी सूर्य थै जती,

सूर्य ए सविता दिव्य

अमने कार्य दो ।''[80]

कविने प्रार्थना के साथ यह मांग की है कि हे प्रभु हमें भी दिव्य कार्य का हिस्सा बनाइए हमें भी 'अतिमनस् चेतना' का सूर्य प्राप्त हो ।

''त्यां बेठेली परम मूर्ति ए बेनी,

अहो धरा पर: कशी कृपा स्मित मंडित, ...

''सौमां तारां दिव्य पूर्ण

- चिति-ज्योति ''[81]

यहाँ पर उसका कृपा दृष्टि की बात कही गई है । तुम्हारी 'ज्योति' हम सबमें प्रकाशित हो यही कामना है ।

ॐ नमो भगवते,

संदर्भ संकेत

1. श्री अरविन्द मंदिर एनुअल अंक - 6
2. श्री अरविन्द के पत्र भाग-2 पृ.266
3. बर्ग सां, क्रिएटीव इवेल्युशन - भाग-1
4. श्री अरविन्द-धी लाईफ डिवाईन भाग-2 पृष्ठ-654
5. धी रिडिल ऑफ दिवस वर्ल्ड - पृष्ठ -67
6. इन्द्रधनुष स्वर्णकिरण काव्य-संग्रह
7. वही '' '' '' '
8. साधना पथ - स्वर्णकिरण - काव्य संग्रह
9. द्वा सुपर्णा - स्वर्णकिरण - काव्य संग्रह
10. स्वर्णोदय - स्वर्णकिरण - काव्य संग्रह
11. अग्नि - स्वर्णधूलि - काव्य संग्रह
12. अमर्त्य - 'उत्तरा' - काव्य संग्रह
13. भूमिका से - ध्रुवचित काव्य संग्रह पृष्ठ - 8
14. वही '' '' ''

15. 'ते... विषे' ध्रुवचित - काव्य-संग्रह

16. अहंकारनुं स्मारक - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

17. श्री अरविन्द के पत्र-प्रथम भाग पृष्ठ - 78

अनुवादक - 'चंद्रदीप त्रिपाठी'

18. भगवत् गीता अध्याय-2 श्लोक 19/20

19. रजतापत - स्वर्ण किरण काव्य संग्रह

20. वही - स्वर्ण किरण काव्य संग्रह

21. अरूण ज्वाल - स्वर्ण किरण काव्य संग्रह

22. व्यक्ति और विश्व - स्वर्ण किरण काव्य संग्रह

23. युग प्रभात - स्वर्ण किरण काव्य संग्रह

24. जगत् - स्वर्ण किरण काव्य संग्रह

25. तुं छो ! ध्रुवचित काव्य-संग्रह

26. पूर्ण प्रार्थना-ध्रुवचित काव्य-संग्रह

27. जगत और जगदीश्वर ध्रुवचित काव्य-संग्रह

28. वही-ध्रुवचित काव्य-संग्रह

29. रजतापत – स्वर्णकिरण काव्य संग्रह

30. अग्नि – स्वर्ण धूलि काव्य संग्रह

31. देव – स्वर्ण धूलि काव्य संग्रह

32. आतम मारा – ध्रुवचित्त – काव्य संग्रह

33. वही – ध्रुवचित्त – काव्य संग्रह

34. नियमने – ध्रुवचित्त – काव्य संग्रह

35. तन्मय – ध्रुवपदे – काव्य संग्रह

36. विशुद्धललाट – ध्रुवपदे काव्य–संग्रह

37. वही – ध्रुवपदे काव्य–संग्रह

38. सम्मोहन – स्वर्ण किरण काव्य–संग्रह

39. रजतापत – स्वर्ण किरण काव्य–संग्रह

40. स्वर्णोदय – स्वर्ण किरण काव्य–संग्रह

41. मंगलस्तवन – स्वर्ण किरण काव्य–संग्रह

42. आपणे तो... ध्रुवचित्त – काव्य संग्रह

43. वसंतो माणवा.. ध्रुवचित्त – काव्य संग्रह

44. मनुष्यः प्रभु वृक्ष - ध्रुवपदे - काव्य संग्रह

45. बी.ए.स्मिथ - अर्ली हिस्ट्री ओफ इंडिया - पृष्ठ-5

46. युग-प्रभात - स्वर्ण किरण काव्य-संग्रह

47. ज्योति भारत - स्वर्ण किरण काव्य-संग्रह

48. वही - स्वर्ण किरण काव्य-संग्रह

49. वही - स्वर्ण किरण काव्य-संग्रह

50. जागरण गान - उत्तरा काव्य-संग्रह

51. वही - उत्तरा काव्य-संग्रह

52. महान मेरू पर्वत - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

53. भगवान सारथि - ध्रुवपदे काव्य-संग्रह

54. वही - ध्रुवपदे काव्य-संग्रह

55. श्री अरविन्द के पत्र भाग-1 -पृष्ठ-28

56. स्वर्ण किरण - स्वर्ण किरण काव्य-संग्रह

57. भू प्रेमी - स्वर्ण किरण काव्य-संग्रह

58. साधना पथ - स्वर्ण किरण काव्य-संग्रह

59. युग प्रभात - स्वर्ण धूलि काव्य-संग्रह

60. देव काव्य - स्वर्ण धूलि काव्य-संग्रह

61. देवस्य काव्यम् - सुन्दरम् एटले सुन्दरम् पृष्ठ-440

62. प्रस्तावना से - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

63. वही - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

64. आपणां तो - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

65. ध्यान - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

66. भीतरमां - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

67. वही - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

68. शी साधना ? - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

69. त्वत्सांनिध्ये - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

70. मनुष्यः प्रभुवृक्ष- ध्रुवपदे काव्य-संग्रह

71. भू-प्रेमी - स्वर्णकिरण काव्य-संग्रह

72. उषा - स्वर्णकिरण काव्य-संग्रह

73. चन्द्रोदय - स्वर्णकिरण काव्य-संग्रह

74. श्री अरविन्द दर्शन - स्वर्णकिरण काव्य-संग्रह

75. वही - स्वर्णकिरण काव्य-संग्रह

76. भू-वर्ग - उत्तरा काव्य-संग्रह

77. तने में - सुन्दरम एटले सुन्दरम्

78. वही - सुन्दरम एटले सुन्दरम्

79. सौने कहुं - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

80. दिव्य कार्य दो - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

81. हरी-भरी सृष्टि - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

82. वही - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

83. परम रसवते !' - ध्रुवचित काव्य-संग्रह

84. तुं केवी - ध्रुवपदे काव्य-संग्रह

षष्ठ अध्याय

'श्री अरविन्द दर्शन' के संदर्भ में 'पंत' और 'सुन्दरम' के काव्य की प्रासंगिकता

(1) विश्व को भारत का आध्यात्मिक मार्गदर्शन

(2) विश्व कल्याण के लिए 'मानव' के महत्त्व को सर्वोपरि मानना

(3) 'विश्वग्राम' की स्थापना

(4) भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय

☼ निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय

'श्री अरविन्द दर्शन' के संदर्भ में 'पंत' और 'सुन्दरम्' के काव्य की प्रासंगिकता

सुपर्णो सि गरूत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः

दी सदभासान्तरिक्षमापृण ।

यजुर्वेद – 17/27

''ओ रे सुन्दर पंखों वाले, महिमाशाली, पृथ्वी की पीठ पर तू आसीन हो कर संपूर्ण अन्तरिक्ष को अपनी प्रभा से भर दे ।''

'श्री अरविन्द' का संपूर्ण जीवन विश्व के प्रति समर्पित जीवन है । 'भारतवर्ष' और 'मातृभूमि' के प्रति भी उनके हृदय में अपार स्नेह था ।

'श्री अरविन्द' बीसवीं शताब्दी के सब से महत्त्वपूर्ण, योगी, मौलिक चिंतक, और भविष्य निर्माण के महाशिल्पी थे । उन्होंने भारत और पश्चिम की महान कृतियों का अध्ययन किया था । उन्होंने संस्कृत साहित्य के वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, रामायण, महाभारत और पश्चिम के 'ग्रीक' 'लेटिन', 'अंग्रेजी', फ्रेंच आदि भाषाओं के 'साहित्य' का अध्ययन किया और इसके आधार पर अपना चिंतन प्रस्तुत किया । वे स्वयं, संस्कृत, अंग्रेजी, लेटिन, फ्रेंच आदि भाषाओं के ज्ञाता थे ।

'श्री अरविन्द' का चिंतन बाह्य जीवन-प्रणाली और आंतरिक जीवन के वैभव के सामंजस्य का चिंतन है । पश्चिम का चिंतन जहाँ बाह्य भौतिक आधार पर ही खड़ा रह गया, वहाँ 'श्री अरविन्द' ने मानव के अंतर्मन को सुविकसित करने के लिए 'अति मानस' के स्वर्णिम प्रभात को साकार किया है । 'मन' के धरातल पर 'श्री अरविन्द' ने महान कार्य किया है और इसी कार्य के द्वारा विश्व के कल्याण के मार्ग को नूतन ध्येय के साथ प्रशस्त भी किया है ।

'श्री अरविन्द' ने 'पूर्णयोग' के सिद्धांत के द्वारा 'समग्रजीवन' को ही 'योग' का आधार प्रदान किया है । इस 'योग' के द्वारा मानव आत्म-साक्षात्कार कर सकता है, जिसके माध्यम से 'मानव' भौतिक सभ्यता का रूपांतरण कर सकता है ।

'श्री अरविन्द'ने मानव की आंतरिक शक्ति को पहचानकर, उसके चैतसिक विकास पर बल दिया है ।

इसी 'मानवविकास' के द्वारा मानव और मानव सभ्यता के उदात्तीकरण की बात उन्होंने कही है । 'मानव' अपनी 'चेतना' के विकास के द्वारा विकसित हो कर अपना तथा विश्व का कल्याण भी कर सकता है ।

'श्री अरविन्द' के इसी महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण ने आजकी संत्रस्त, और दुःख से पीड़ित मानव-जाति को जीवन का नया दृष्टिकोण दिया है ।

आजके विश्व के लिए 'श्री अरविन्द' ने निम्नलिखित 'चिंतन' के द्वारा 'नूतन विश्व' की परिकल्पना को साकार किया है ।

(1) विश्व को भारत का आध्यात्मिक मार्गदर्शन

(2) विश्वकल्याण के लिए 'मानव' के महत्त्व को सर्वोपरि मानना

(3) 'विश्वग्राम' की स्थापना

(4) भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय

'श्री अरविन्द' ने 'नूतन विश्व' के स्वप्न को देखा था, और उसको साकार करने के लिए अपनी समग्र शक्ति उसी में लगा दी । अपनी 'साधना' के द्वारा 'श्री अरविन्द' ने 'महाभागवतीचेतना' को पृथ्वी पर लाने में संपूर्ण सफलता पाई । इसी 'अतिमनस् चेतना' के माध्यमसे समग्र जगत् का रूपांतरण होगा । 'श्री अरविन्द' ने जीवन में 'ध्यान', 'योग' के साथ 'कर्म' के महत्त्व को भी प्रस्थापित किया है ।

'श्री अरविन्द दर्शन' में 'ज्ञान', 'भक्ति', 'उपासना' और 'कर्म' का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है । इसी समन्वय के माध्यम से 'श्री अरविन्द'ने मानव के सर्वांगीण विकास और विश्व में 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' की स्थापना को अवधारता को प्रस्थापित किया है ।

'श्री अरविन्द दर्शन' में इसी आशा के आलोक को देखकर हिन्दी के कविश्री 'सुमित्रानंदन पंत' और गुजराती के कविश्री 'सुन्दरम्' ने अपनी कविताओं में इस 'महान दर्शन' का निरूपण किया है । 'पंतजी'

और 'सुन्दरम्' ने समय की बुलंद माँग को स्वीकार करते हुए 'श्री अरविन्द दर्शन' को प्रस्तुत करनेवाली कविताओं का सृजन किया । दोनों कवियों का यह सृजनकर्म आज के दु:खी मानव के महत्त्वपूर्ण आधार साबित हो रहा है ।

'श्री अरविन्द दर्शन' के संदर्भ में 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविता को एक महत्त्वपूर्ण और महान योग-दान माना जाएगा ।

इक्कीसवीं शताब्दी की शुरूआत में ही मानव-सभ्यता गरीबी, बिमारी, आतंकवाद, स्वार्थवाद और अन्य अनेक कठिनाइयों का सामना कर रही है । और इन सब कठिनाइयों का सामना करने के लिए वह एक सशक्त आधार की तलाश में भटक रही है । ऐसे समय में 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविता ने 'श्री अरविन्द दर्शन' का आधार प्रस्तुत करके 'नूतन विश्व' का बहुत बड़ा उपकार किया है ।

आज समग्र विश्व के कल्याण की आशा का सूरज भारत वर्ष में दैदीप्यमान है । समग्र विश्व को भारत ही आध्यात्मिकता का सच्चा मार्गदर्शन दे सकता है । 'श्री अरविन्द' के चिंतन में उस आध्यात्मिकता का समावेश हुआ है , जिससे समग्र विश्व का कल्याण हो सके ।

'आध्यात्मिकता' के इसी 'महासूर्य' की उपासना में 'पंतजी' ने गाया है -

''खूला अब ज्योतिद्वार,
उठा नव प्रीति ज्वार,
सृजन सोभा अपार ।...
धरा पर ज्योति भरण,
हँसी लो, स्वर्ण किरण ।'' [1]

जब समग्र विश्व को रास्ता मिल गया है और 'ज्योति' का द्वार खुल गया है, तब मानव को क्या करना है ? –

''करे आत्मनिर्माण लोकगण,
आत्मोज्वल, भू मंगल के हित,
बहिरन्तर, जड़ चेतन वैभव
संस्कृति में कर निखिल समन्वित ।''[2]

इस प्रकार 'आत्मा' के प्रकाश के द्वारा जीवन में सच्ची आध्यात्मिकता की प्रस्थापना करनी है ।

'सुन्दरम्' ने भी अपनी कविता में इसी साधना की बात कही है । उनके अनुसार हम सबको अपना जीवन ही साधनामय बनाना है ।

'सचराचर ईशनी दृष्टिनी स्थिरता महा,
पेखीशुं.... झीली लेशुं को नेत्र संपुटना पुटे''[3]

यहाँ पर 'सुन्दरम्' समग्र जीवन को 'योगमय' बनाने की बात कहते हैं । उनके अनुसार समग्र विश्व को 'ध्यान' की दीक्षा भारतवर्ष

ही दे सकता है । और जब समग्र विश्व इस सत्य को पहचान सकेगा उसके बाद ही उसका कल्याण निश्चित है ।

'पंतजी' और 'सुन्दरम्' दोनों ने अपनी कविता में अध्यात्म के महत्त्व को अच्छी तरह से प्रस्थापित करके, 'श्री अरविन्द' के चिंतन को विश्व के समक्ष रखा है । साथ-साथ विश्व-समाज से यह आग्रह भी किया है कि वह इस चिन्तन को अपना कर अपने कल्याण को सुनिश्चित करें ।

'विश्वकल्याण' के लिए 'मानव' के महत्त्व को स्वीकार करते हुए 'श्री अरविन्द' ने अपने ग्रंथ 'मानव-चक्र' (Human Cycle) का निर्माण किया है । 'श्री अरविन्द' के समग्र चिंतन में 'मानव' को विशेष रूप से केन्द्र में रखा गया है । 'मानव' के उदात्तीकरण के द्वारा ही विश्व-समाज का कल्याण संभव हो सकता है ।

'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविता में 'मानव' की महिमा का 'गान' देखने को मिलता है ।

'पंतजी' ने मानव के महत्त्व को प्रस्थापित करते हुए लिखा है -

''सुन्दर हे विहग, सुमन सुन्दर
मानव तुम सबसे सुन्दरतम् ।''[4]

'पंतजी' की कविता में 'मानव' का महत्त्व सर्वोपरि रूपसे प्रस्तुत हुआ है । 'पंतजी' का विश्वास है कि इस अखिल सृष्टि में 'मानव' ही सबसे सुन्दर और महत्त्वपूर्ण है ।

'पंतजी'ने समग्र मानव जाति को एक ही माना है । उन्होंने किसी भी प्रकार के भेद को स्वीकार नहीं किया । 'पंतजी' ने मानव-मानव की एकता को महत्त्व दिया है । आज के दौर में समाज-संघर्ष, युद्ध, आतंकवाद बढ़ गया है, क्योंकि मानव-मानव का दुश्मन बन गया है । 'श्री अरविन्द'ने इस लिए धर्म के आधार पर, देश और जाति के आधार पर मानव को बाँटने का विरोध किया है ।

'व्यक्ति और विश्व' कविता में मानव कल्याण को प्रस्तुत किया गया है ।

''मैं इस जग में नहीं अकेला,
मुझको तनिक न संशय
वही चाह है कण-कण में
जो मेरे उर में निश्चय ।''[5]

यहाँ पर 'पंतजी' ने 'मानव' को विश्वमानव के रूप में देखते हुए, उसके हृदय की भावना को वाणी दी है । इस कविता में 'पंतजी' ने दृढ़ता के साथ मानव और विश्व की एकात्मकता का संदेश दिया है ।

'सुन्दरम्' की कविता में भी 'मानव' कल्याण और विश्वकल्याण की बात कही गई है । उनके अनुसार 'मानव' के कल्याण में ही विश्व का कल्याण समाया हुआ है ।

'आपणां तो' कविता में 'सुन्दरम्' ने मानव कल्याण, और विश्वकल्याण की बात इस प्रकार कही है -

''आपणे ते कोण ?
आपणा शां नाम ?
आपणा शां काम ?
आपणे तो बालक,
– माताजी नां
– श्री अरविन्दनां
– राम अने कृष्णनां
– परमात्मा नां ।''[6]

यहाँ पर 'सुन्दरम्' ने समग्र मानवसमाज को 'प्रभु' की संतान कहा है । और यह बात कही है कि हमारा नाम, हमारा काम, हमारी पहचान, हमारा देश सब गौण है, क्योंकि हम 'परमात्मा' की संतानें हैं । हमारे नाम, हमारी वेशभूषा, हमारी भाषा भले ही भिन्न-भिन्न हो लेकिन हम सब एक ही अस्तित्व के द्वारा बने हुए समान मनुष्य हैं ।

'पृथ्वी नी टहेल' कविता में 'सुन्दरम्' ने मानव कल्याण के लिए परमात्मा की कृपा की माँग करते हुए कहा है –

''प्रभु तमे जो वरसो चोख्खा, थइ अषाढी बादल,
मानवनो मन तन छलकावो, अमे बजवशुं भूंगळ ।[7]

हे प्रभु ! आपकी 'कृपावारि' की वर्षा कीजिए, और 'मानव' के 'मन' और 'तन' को आपकी कृपावारि से लबालब भर दो । और ऐसा होने पर हम आनंद में आकर 'बीन' बज़ाने लगेंगे ।

इस कविता में भी कविने 'मानवमंगल' की कामना प्रस्तुत की है । 'सुन्दरम'ने यह कामना की है कि 'समग्रविश्व' पर 'अतिमानस' चेतना की 'कृपा' बरसे, और उसके बरसने से हम सब का कल्याण निश्चित है ।

इस प्रकार 'पंत' और 'सुन्दरम्' की कविता में प्रमुख रूप से 'मानव' के महत्त्व का स्वीकार किया गया है ।

आज के दौर में पंत और सुन्दरम् का 'मानव' की महानता संबंधी विचार अत्यंत प्रासंगिक ही है । आज समग्र विश्व आतंकवाद और आपसी युद्धों में फँसा है । ऐसे समय में मानव के महान गौरव को प्रस्थापित करना अत्यावश्यक है, ऐसे में 'पंत' और 'सुन्दरम्' की कविता में इस महत्त्व को ठीक से पहचाना गया है ।

'श्री अरविन्द दर्शन' की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है 'विश्वग्राम' की स्थापना । 'ओंरोविल' उनके दर्शन का साकार स्वरूप है ।

'श्री अरविन्द' के चिंतन के अनुसार समग्र विश्व एक 'ग्राम' है । इस पृथ्वी के सभी निवासी एक ही हैं । 'विश्व' को नूतन रास्ता दिखाते हुए ऊन्होंने दक्षिण भारत के समुद्रीतट पर इस 'विश्वग्राम' की स्थापना की है ।

'ऑरोविल' का अर्थ है, नूतनप्रकाश से भरी हुई – 'उषा नगरी' । विश्वभर में फैले हुए 'श्री अरविन्द' के चिंतन को मानने वाले लोगों ने 'श्री अरविन्द' की अवधारणा के अनुरूप इस 'विश्वग्राम' की स्थापना की है ।

'ऑरोविल' की स्थापना के द्वारा समग्र विश्व को एक साथ जोड़ने के लिए सभी 'विश्वमानव' के लिए इसके दरवाजे निरंतर खुले रहते हैं । यहाँ रहकर 'मानव', 'मानवता' के लिए कार्य कर सकता है । 'ऑरोविल' के बारे में 'माताजी' ने कहा था ।

'ऑरोविल' एक ऐसा सार्वभौम नगर होगा जहाँ सब देशों के नर-नारी शान्ति की ओर बढ़ते हुए सामंजस्य के साथ रह सकें । वह राष्ट्रीयता जाति, धर्म, वर्ण, मत-मतांतर, राजनीति आदि से परे होगा । 'ऑरोविल' का उदेश्य है - मानव एकता को सिद्ध करना ।'[8]

सचमुच आज यह 'विश्वग्राम' सारे विश्व के मानव का सच्चा आश्रय स्थान है । आज इस 'ऑरोविल' में करीब '20' देशों के '1300' नर-नारी निवास कर रहे हैं । इस 'ग्राम' का क्षेत्रफल '25' वर्ग किलोमिटर में फैला हुआ हैं, जिसमें वृक्षों का धना जंगल भी है । सारा माहौल प्रकृति से आच्छादित है । यहाँ पर रहते हुए लोग कृषि, डेयरी, बागबानी, पशु-पालन, कला, संगीत, साहित्य, शिक्षा, संस्कृति और आध्यात्म के लिए कार्य कर रहे हैं ।

ऑरोविले 'श्री अरविन्द' की 'विश्वग्राम' की कल्पना का साकाररूप है, जिसमें मानवशांति के साथ निवास कर रहा है ।

'पंतजी' भी 'श्री अरविन्द' की 'विश्वग्राम' की स्थापना का स्वागत करते हैं । वे अपनी कविता में इसके लिए 'श्री अरविन्द' का धन्यवाद करते हुए कहते हैं कि मानव की एकता का यह नूतन मंदिर विश्व कल्याण का सार्थक उदाहरण साबित हुआ है ।

''कवि ऋषि, तुमने सूक्ष्मदृष्टिसे कर ज्यों चित्रित,
रहस शक्ति से निखिल सृष्टि फिर कर दी विकसित ।''[9]

'पंतजी' ने उपर्युक्त कविता में 'विश्वग्राम' की रचना के लिए 'कविऋषि श्री अरविन्द' का धन्यवाद ज्ञापन किया है ।

'स्वर्णधूलि' काव्य-संग्रह की 'आवाहन' कविता में 'पंतजी' ने विश्वनगरी में विश्वमानव का स्वागत करते हुए कहा है -

''ज्योतित हो मानव मन,
निर्मित नव-जव जीवन,
देश जाति-वर्णो से
निखरे नव मानवपन ।''[10]

इस प्रकार 'पंतजी' ने 'विश्वऐक्य' की आधारभूमि 'ऑरोविल' विश्वग्राम का स्वागत व समर्थन किया है ।

गुजराती भाषा के मूर्धन्य कविश्री सुन्दरम् ने भी 'विश्वग्राम' की अवधारणा की आवश्यकता को स्वीकार किया है । उनकी कविता में मानव एकता, और 'विश्व एकता' की महत्त्व पूर्ण बातों का स्वीकार किया गया है ।

'सुन्दरम्' मूलतः अध्यात्म के मार्ग पर चलनेवाले साधक थे । अतः उनके 'मन' में कभी भी शंका नहीं थी कि 'विश्वग्राम' की स्थापना कब और कैसे होंगी ? वे स्वयं इस प्रकार के मानव सभ्यता के विकास केन्द्र की स्थापना करना चाहते थे, इसलिए ऊन्होंने 'गुजरात' में

'श्री अरविन्द' की प्रेरणा से 'ॐ पुरि' की स्थापना भी की थी । जो आज भी 'मानव विकास केन्द्र' के रूपमें अपना कार्य कर रहा है ।

'सुन्दरम्' ने 'विश्वग्राम' की सार्थक स्थापना के लिए 'श्री अरविन्द' के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है ।

''प्रभुत्वे आरोही, प्रभु तणी लई सिद्धि सकल,''[11]

इस प्रकार 'तव शरणे' कविता में भी 'विश्वग्राम' के द्वारा विश्वशांति के लिए प्रार्थना की है ।

''तम चरणे हरि शीश धरावुं,
तम शरणे स्थिर थाऊँ,
स्तवन सदा तम गाऊँ ।''[12]

इस प्रकार 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' दोनों की कविता में विश्वशांति और विश्वऐक्य की भावना मुखरित हुई है । दोनों ही कवि समान रूप से विश्व कल्याण के लिए श्री अरविन्द की 'विश्वग्राम' की भावना से संपूर्ण प्रभावित है ।

दोनों ही कवियों की कविता में आजकी वैश्विक अराजकता की स्थिति का निदान मिलता है । यदि आज 'मानव' को शांति और समृद्धि की जरूरत है, तो उसे एक साथ 'एकात्मकता' के साथ जीना चाहिए, और ऐसी जगह का नाम है, विश्वग्राम, ऊषानगर, ऑरोविल, आदि । ऐसे सामूहिक चिंतन केन्द्रों की मदद से 'विश्व' अपनी सभी समस्याओं

का हल प्राप्त कर सकता है । ऐसी ही चिंतनधारा 'पंत' और 'सुन्दरम्' की कविता में निरूपित है ।

'श्री अरविन्द' ने आधुनिक युग में भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय पर विशेष जोर दिया है । उनके अनुसार जीवन 'संपूर्णजीवन' तब बनता है, जब इसमें दोनों का सुन्दर सामंजस्य हुआ हो ।

आज विश्व का आलम यह है कि पश्चिम के देशों के पास भौतिकता इतनी बढ़ गई है कि यही भौतिकता उनके दुःख और अशांति का कारण बन गया है । 'श्री अरविन्द'ने अपने ग्रंथ 'योग समन्वय' (Synthesis of Yoga) में इसी समन्वय का चिंतन प्रस्तुत किया है । 'सावित्री' महाकाव्य में भी इसी 'जीवन समन्वय' का चिंतन प्रस्तुत हुआ है ।

'पंतजी' की कविता में 'श्री अरविन्द' की आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय का चिंतन प्रस्तुत हुआ है । 'पंतजी' भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय की बात करते हुए ज्ञान और विज्ञान का, पूर्व और पश्चिम का, आदर्श और यथार्थ के समन्वय की बात भी करते हैं –

> ''विविध ज्ञान विज्ञान समन्वित
> विश्व तंत्र हो साधन विकसित,
> भेद–मुक्त हो दृष्टि हृदय की,
> पूरित हो भू जीवन इच्छित ।''[13]

'पंतजी' ने ज्ञानविज्ञान, अध्यात्म, भौतिकता आदि के समुचित समन्वय से मानवकल्याण की कामना की है ।

'पंतजी' ने 'भूवर्ग' कविता में समन्वय की यही बात प्रस्तुत की है –

''हो रहा स्वर्ग से धरणी का,
जड़ से चेतन का रहस मिलन,
भू स्वर्ग एक हो रहे शनैः
सूरगण नरतन करते धारण ।''[14]

'पंतजी' ने भौतिकता और अध्यात्म के समन्वय से धरती को स्वर्ग बनाने की बात कही है । दोनों के सामंजस्य से यहीं पर स्वर्ग 'निर्मित हो सकता है ।

'सुन्दरम्' की कविता में भी भौतिकता और 'आध्यात्मिका के समन्वय से विश्वकल्याण की अभ्यर्थना की गई है –

''विशाल पृथ्वी वास अमारो, जीवन यज्ञ अमारां,
अम शक्तिने ज्ञानभक्ति, प्रभु, ए वरदान तमारां,
अम हृदये वसजो, अम वचने कर्म सदा प्रगटजो,
अम जीवनमां प्रतिपद तम करूणा–जल अवतरजो ।''[15]

यहाँ पर कविने प्रार्थना के साथ परमात्मा से माँग की है । कवि ने इस पृथ्वी को, अपने इस जीवन यज्ञ को 'परमात्मा' की शक्ति ही

माना है । हमारी समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक उपलब्धि भी आपका ही परम वरदान है । इसलिए हे परमात्मा ! हमारे जीवन पर आप अपनी करूणा का जल बरसाओ ।

इस प्रकार 'सुन्दरम्' की कविता में भौतिकता और अध्यात्म के समन्वय पर विशेष बल दिया गया है । आज यदि विश्व इस समन्वय को स्थापित कर पाएगा, तो ही उसका भविष्य भी सुरक्षित रहेगा ।

निष्कर्ष :

'श्री अरविन्द दर्शन' के संदर्भ में 'पंत' और 'सुन्दरम्' के काव्य की प्रासंगिकता आज अवश्य ही बढ़ गई है । आज भारत और विश्वसमूह दोनों मानवसर्जित, और 'प्रकृतिसर्जित' अनेक समस्याओं से त्रस्त है, ऐसे में 'पंत' और 'सुन्दरम्' की कविता ने मानव के महान गौरव को पुनः स्थापित करके, उसके चैतसिक धरातल को विकसित करने पर बल दिया है । इसके द्वारा ही हम अपनी सभी समस्याओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं । अतः आज दोनों ही कवियों की कविताएँ प्रासंगिक हैं और भविष्यमें प्रासंगिक बनी रहेंगी इसमें कोई संदेह नहीं ।

संदर्भ संकेत

1. स्वर्णकिरण सु.पंत, स्वर्णकिरण
2. रजतापत, सु.पंत, स्वर्णकिरण
3. महास्थिरता - सुन्दरम् ध्रुववदे पृ.77
4. सुमन सुन्दर - पंतजी
5. व्यक्ति और विश्व - पंतजी - स्वर्णकिरण
6. आपणां तो - सुन्दरम् - ध्रुवचित्ते पृ.19
7. पृथ्वीनी टहेल 'सुन्दरम्' ध्रुवचित्ते, पृ.33
8. मातृवाणी - भाग-3 प्रश्नोतर, 'श्री अरविन्द आश्रम'
9. 'श्री अरविन्द दर्शन' - स्वर्णकिरण काव्यसंग्रह
10. आवाहन - स्वर्णधूलि काव्य संग्रह
11. ध्रुवचित्त की भूमिका से पृष्ठ -8
12. 'तम शरणे' ध्रुवचित काव्यसंग्रह - पृष्ठ - 249
13. समन्वय उत्तरा काव्य-संग्रह पंतजी ।
14. 'भूवर्ग' उतरा काव्य-संग्रह पंतजी ।
15. पूर्णप्रार्थना - ध्रुवचित काव्य-संग्रह सुन्दरम् पृ.56

सप्तम अध्याय
'पंतजी' और 'सुन्दरम्' के काव्य में अरविंददर्शन : तुलनात्मक निष्कर्ष

☼ उपसंहार

सप्तम अध्याय

'पंतजी' और 'सुन्दरम्' के काव्य में अरविन्ददर्शन : तुलनात्मक निष्कर्ष

भारत की संस्कृति युगों से मानव के कल्याण की दिशा में अविरत अनुसंधान करनेवाली संस्कृति है । इस संस्कृतिने ही 'मानव गौरव' को प्रस्थापित किया है । यह संस्कृति दुनिया की महान और समृद्ध संस्कृति है ।

'दर्शन' हमारी संस्कृति का प्राणाधार है । 'दर्शन' के माध्यम से ही 'मानव' को महामानव; और आत्मा से परमात्मा तक का यह अभियान निरंतर विकास कर रहा है ।

भारतवर्ष की इस पावनकारी 'भूमि' पर समय-समय पर अनेक महापुरूषों ने जन्मधारण किया, और अपने चिंतन के माध्यमसे 'मानवजाति' के कल्याण के मार्ग को प्रशस्त किया है ।

आधुनिक युग में इसी परंपराकी सबसे, महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, 'श्री अरविन्द दर्शन ।' 'श्री अरविन्द' का व्यक्तित्व और दर्शन दोनों ही उज्ज्वल नक्षत्र की तरह देदीप्यमान है ।

'श्री अरविन्द दर्शन' और उनका 'पूर्णयोग' आधुनिक युग में त्रस्त मानवजाति के लिए एक वरदान है । 'आधुनिक

मानव' इसका आश्रय प्राप्त कर 'अतिमनस' के 'उच्चत्तम शिखर' तक पहुँच पानेमें सक्षम हो सकता है ।

'श्री अरविन्द दर्शन' की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, मानव मानवको, देश-देश को, धर्म-धर्म को संस्कृति-संस्कृति को, सबको साथमें जोड़ना यहीं कारण है कि आजके इस दौर में उनका 'दर्शन' 'विश्वसमाज' की सबसे प्राथमिक तत्परता है ।

इस बात को ध्यानमे रख़ते हुए 'श्री अरविन्द दर्शन' की महानता और खूबियों को इस प्रबंध में प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है ।

इस शोध प्रबंध में भारतीयदर्शन की विभिन्न अवधारणाओं और परंपराओं को प्रस्तुत करते हुए 'श्री अरविन्द दर्शन' की विभिन्न अवधारणाओं को स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

'श्री अरविन्द'ने 'अतिमनस' चेतना का सिद्धांत प्रस्तुत किया है, और इस सिद्धांत के माध्यम से मानवकल्याण के मार्ग को प्रशस्त किया है । इस अवधारणा को और 'पूर्ण योग' की अवधारणा को विशद रूप से इस प्रबंध में प्रस्तुत किया गया है । और इसके माध्यम से 'मानव' के कल्याण की आकांक्षा व्यक्त की गई है ।

'श्री अरविन्द'ने पुरानी मान्यताओं का खँडन भी किया है । और नूतन विचाधारा भी प्रस्तुत की है । उनके अनुसार 'मानव' केवल मानव है, वह न अच्छा है न बुरा । वह न हिन्दू है, न मुस्लिम, वह न भारतीय है, न फ्रांसिसी । वह ए क 'चैतन्यपूर्ण' स्वतंत्र इकाई है, जो समग्र 'विश्व' को अपना परिवार मानता है । और इसके कल्याण को ही अपना धर्म मानता है ।

'श्री अरविन्द' की इसी विचारधारा ने मुझे उनके दर्शन की ओर आकर्षित किया है । उनके दर्शन का अध्ययन करने से शांति और शकून भी मिला, कि आजके स्वार्थ से भरे, और 'मानव' को बाँटनेवाली राजनीति के इस दौर में भी 'श्री अरविन्द'ने 'मानव' पर संपूर्ण विश्वास करते हुए उसे 'अतिमनसचेतना' के माध्यम से परिवर्तित करने का सार्थक यत्न किया है ।

'श्री अरविन्द दर्शन' केवल चेतना का ही दर्शन नहीं है, वरन उनके दर्शनमें, राजनीति, धर्म, काव्य-दर्शन, राष्ट्रीय स्वाभिमान, विश्वकल्याण आदि पर गहरा चिंतन भी प्रस्तुत किया गया है ।

'श्री अरविन्द' ने 'मानव स्वाभिमान' और 'राष्ट्रीय स्वाभिमान' को सर्वोच्च मानते हुए विश्व कल्याण का मार्ग

प्रस्तुत किया है ।

'श्री अरविन्द' ने भारतीय राजनीति और विश्व की राजनीति परभी अपनी विशेष राय रखी है ।

'श्री अरविन्द' स्वयं भी एक महान कवि थे । उन्होंने 'विश्व' को 'सावित्री' के रूप में एक महान महाकाव्य की सौगाद दी है । 'भावी कविता' जैस महान ग्रंथ के माध्यम से ऊन्होंने विश्वसाहित्य और विश्वकविता पर अपना महत्त्वपूर्ण चिंतन प्रस्तुत किया है ।

'श्री अरविन्द'ने 'कवि' को विशेष महत्त्व देते हुए उसे 'विश्वकवि' और 'ऋषिकवि' तक विस्तृत होने का आह्वान किया है । साथ ही साथ मार्गदर्शन भी किया है ।

इस शोधकार्य का प्रतिपाद्य विषय है, 'श्री अरविन्द दर्शन' की विभिन्न अवधारणाओं को प्रस्तुत करना, और श्री अरविन्द दर्शन के आलोक में 'हिन्दी साहित्य' के मूर्धन्यकविश्री सुमित्रानंदन पंत और गुजराती साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठि 'कविश्री सुन्दरम्' की कविता का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना ।

'श्री अरविन्द दर्शन' की महान अवधारणाओं के आधार पर 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविता की तुलना करते हुए पाया गया कि दोनों ही कवि 'श्री अरविन्द दर्शन' की चेतना के

वाहक और प्रहरी हैं ।

'पंतजी ने स्वयं स्वीकार किया था कि जब मुझे जीवन में चारों ओर से निराशा हाथ लगी, 'शरीर' और 'मन' से मैं जब पीड़ित था, उसी समय 'श्री अरविन्द दर्शन' ने मुझे संबल दिया, और मेरी अनेक मानसिक समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया । उसके बाद कवि के जीवन में नवचेतना का प्रवाह प्रवाहित होने लगा, और कवि शरीर और मन से फिर स्वस्थ हो गए ।

इसके बाद ही चेतनावादी कविता का स्वर्णिम युग शुरू हुआ, जिसमें स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि आदि काव्य-संग्रहों का सर्जन हुआ ।

ठीक इसी प्रकार 'कविश्री सुन्दरम्' भी 'श्री अरविन्द दर्शन' के प्रभाव को ही सर्वस्व मानते हैं, और अपना सर्वस्व 'श्री अरविन्द' की चेतना में समर्पित कर दिया । स्वयं 'श्री अरविन्द आश्रम' के साधक हो गए और परिवार समेत पोंडिचेरी के आश्रम में निवास करने लगे । वहाँ पर 'साधक' के रूपमें रहते हुए अपनी 'काव्य-साधना' को भी जारी रखा ।

इसी प्रभाव को व्यक्त करने वाले काव्य-संग्रह हैं 'यात्रा', 'ध्रुवचित्त', 'ध्रवपदे' आदि प्रमुख हैं ।

तुलनात्मक निष्कर्ष :

'श्री अरविन्द दर्शन' की महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं का प्रतिबिंब दोनों कवियों की कविता में देख़ने को मिलता है ।

❖ श्री अरविन्द की 'ज्ञान' और 'सत्य' संबंधी अवधारणा पर 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविता की तुलना करते हुए पाया गया कि,

'पंतजी' की कविता में जहाँ पर कल्पना और अनुभूति का सुंदर सामंजस्य हुआ है, वहाँ पर 'सुन्दरम्' की कविता में अनुभूति की गहराई और स्वयं के जीवन–साधना की स्पष्ट असर देखने को मिलती है ।

इस प्रकार उपर्युक्त अवधारणा का परिपालन दोनों ही कवियों की कवितामें समानरूप से दृष्टिगत होता है ।

❖ 'श्री अरविन्द दर्शन' की 'जीव' और 'जगत्' संबंधी अवधारणा पर 'पंत' और 'सुन्दरम्' की कविता की तुलना करने से पाया गया कि दोनों ही कवियों की कविता में 'जीव' और 'जगत' संबंधी एक परिपक्व चिंतन देखने को मिलता है ।

❖ 'श्री अरविन्द दर्शन' की 'आत्मा' और 'चैत्यपुरूष' संबंधी अवधारणा का परिपालन दोनों ही कवियों की कविता में देखने को मिलता है । 'पंतजी' की कविता में 'चैत्य पुरूष' का संपूर्ण वर्णन देखने को मिलता है । वहाँ पर 'सुन्दरम्' की कविता में 'चैत्य पुरूष' संबंधी अवधारणा का

विस्तृत वर्णन देखने को नहीं मिलता ।

❖ 'मानव' के महत्त्व संबंधी अवधारणा के आधार पर आलोच्य कवियों की कविता की तुलना करने से निष्कर्ष निकलता है कि दोनों ही कवियों की कविता में 'श्री अरविन्द' की अवधारणा के अनुसार ही 'मानव' के महत्त्व को स्थापित किया गया है । 'पंतजी'ने मानव को 'सबसे सुन्दरतम्' कहा है, जबकि 'सुन्दरम्'ने मानव को परमात्मा का 'सुन्दर पुष्प' कहा है ।

❖ 'श्री अरविन्द दर्शन' की भारतीय संस्कृति की महानता संबंधी अवधारणा के आधार पर 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविता की तुलना करने से पाया गया कि दोनों की कविता में भारतीय संस्कृति के महत्त्व को प्रस्थापित किया गया है, और उसका गुणगान भी किया गया है । 'पंतजी' ने 'भारतीय संस्कृति' के 'महान वर्णन' को अनेक कविता में प्रस्तुत किया है । वहाँ पर 'सुन्दरम्' ने इस विषय पर कुछ कम ही अपनी कलम चलाई है ।

❖ 'श्री अरविन्द' की जीवनमें 'योग' के महत्त्व संबंधी अवधारणा के आधार पर आलोच्य कवियों की कविता की तुलना करने से यह फलश्रुति प्राप्त होती है कि दोनों ही कवियोंने 'योग' के महामहत्त्वका गौरवगान अपनी-अपनी कविता में यथा उचित रूप से प्रस्तुत किया है ।

'पंतजी' और 'सुन्दरम्' दोनों ही कवियों की अपनी-अपनी कविता में यह दृढ़ मान्यता है कि 'श्री अरविन्द' के 'पूर्णयोग' का उचित अनुसरण करते हुए 'मानव और

विश्व' सुन्दर और सुख़द बन सकता है । इस विश्व का मंगलमय और कल्याणकारी बनाने के लिए 'पूर्णयोग' की राह पर विश्व मानव को चलना ही होगा ।

❖ श्री अरविन्द की 'अतिमनस्' चेतना संबंधी अवधारणा पर आलोच्य कवियों की कविता की तुलना करते हुए पाया गया कि दोनों ही कवियों की कविता 'अतिमनस चेतना' की वाहिका कविता है । दोनों ही कवियों ने मुक्तमन से 'अतिमानस' चेतना के अवतरण के गीत को गा-गा कर जन-मन तक इसको पहुँचाया है ।

'पंतजी' ने 'अतिमनस' चेतना के अवतरण से मानवकल्याण और विश्व कल्याण की भावना को अभिलाषा को व्यक्त किया है ।

और 'सुन्दरम्' ने 'अतिमनस चेतना' को विश्वकल्याण का आधार मानते हुए, इसके अवतरण के लिए 'श्री अरविन्द' के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन की है ।

उपसंहार :

'श्री अरविन्द दर्शन' की सप्त अवधारणाओं के आधार पर 'पंतजी' और 'सुन्दरम्' की कविता की तुलना करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि दोनों ही कवियों की कविता में 'श्री अरविन्द दर्शन' का 'आलोक' दिखाई देता है । और दोनों ही कवियों की कविता में 'श्री अरविन्द दर्शन' का व्यापक और सर्वग्राही प्रभाव देखने को मिलता है ।

'सुमित्रानंदन पंत' अपने जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान 'श्री अरविन्द दर्शन' में पाते हैं । और 'श्री अरविन्द' के प्रति 'श्रद्धाभाव' से नत्मस्तक हो जाते हैं ।

परिशिष्ट

☼ ग्रंथानुक्रमणिका

(अ) आधार ग्रंथ

(I) हिन्दी ग्रंथ

(II) गुजराती ग्रंथ

(ब) सहायक ग्रंथ

(I) हिन्दी ग्रंथ

(II) गुजराती ग्रंथ

(III) संस्कृत ग्रंथ

(क) अप्रकाशित शोध–प्रबंध

(ड) शब्द कोश

(इ) पत्र–पत्रिकाएँ

परिशिष्ट

ग्रंथानुक्रमणिका

(अ) आधार ग्रथ

(I) हिन्दी ग्रंथ

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	भागवत्‌जीवन	'श्री अरविन्द – श्री अरविन्द आश्रम, पोंडिचेरी	
2.	भावी कविता	'श्री अरविन्द – श्री अरविन्द आश्रम, पोंडिचेरी	
3.	मानव–चक्र	'श्री अरविन्द – श्री अरविन्द आश्रम, पोंडिचेरी	
4.	मातृवाणी श्री माताजी	'श्री अरविन्द – श्री अरविन्द आश्रम, पोंडिचेरी	
5.	योग और समन्वय	'श्री अरविन्द – श्री अरविन्द आश्रम, पोंडिचेरी	
6.	'श्री अरविन्द' नवजात	श्री अरविन्द आश्रम, पोंडिचेरी	
7.	सुमित्रानंदन पंत ग्रंथावली भाग 1 से 7	सुमित्रानंदन पंत – राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	
8.	श्री अरविन्द के पत्र भाग–1 से 5	'श्री अरविन्द – श्री अरविन्द आश्रम, पोंडिचेरी	

(II) गुजराती ग्रंथ

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	ध्रुवचित	सुन्दरम्श्री अरविन्द कृपा ट्रस्ट मांगल्य प्रकाशन अहमदाबाद	
2.	ध्रुवपदे	सुन्दरम् वही	
3.	महानद	सुन्दरम् वही	
4.	यात्रा	सुन्दरम् आर.आर.शेठनी कंपनी	
5.	लोकलीला	सुन्दरम् वही	
6.	साविद्या	सुन्दरम् आर.आर.शेठनी कंपनी	
7.	सुन्दरम ऐटले सुन्दरम्	संपादक : रामजीभाई कड़िया आर.आर.शेठनी कंपनी	

(ब) सहायक ग्रंथ

(I) हिन्दी ग्रंथ

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	अरविन्ददर्शन का आ.हिन्दी काव्य पर प्रभाव	मीरा श्रीवास्तव राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	
2.	आधुनिक काव्य –धारा	डॉ. केशरीनारायण शुकल, लोकभारती प्रकाशन,	
3.	आधुनिक हिन्दी कविताकी भूमिका	डॉ. शंभुनाथ पांडेय, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.संस्करण	
4.	आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य़ प्रवृत्तियाँ	डॉ. नगेन्द्र, लोकभारती प्रकाशन,	1970

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
5.	आधुनिक हिन्दी कविता	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन,	2006
6.	आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रवृत्ति – मूलक दार्शनिकता	सुशीला गुप्ता, राजकमल प्रकाशन,	1985
7.	आधुनिक हिन्दी काव्य	डॉ. राजेन्द्रप्रसाद मिश्र,	
8.	आधुनिक साहित्य और साहित्यकार	गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती,	1967
9.	आधुनिक कविता यात्रा	डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती	1975
10.	आधुनिक भारतीय चिंतन	वी.एस.नरवणे, राजकमल प्रकाशन,	1990
11.	उर्वशी	रामधारीसिंह 'दिनकर', लोकभारती प्रकाशनं	
12.	कविवर सुमित्रानंदन पंत : व्यक्तित्व तथा कृतित्व	प्रा. दशरथ राज, राधाकृष्ण प्रकाशन	1977
13.	कवियों में सौम्य संत	हरिवंशराय बच्चन, राजकमल प्रकाशन	1962
14.	काव्य–भाषा पर तीन निबंध	डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी,	1980

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
15.	छायावाद : पुनर्मूल्यांकन	सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	
16.	छायावाद और वैदिक दर्शन	डॉ. प्रेमप्रकाश रस्तोगी, राजकमल प्रकाशन	1990
17.	तुलनात्मक अनुसंधान एवं उसकी समस्याएँ	सं. डॉ. गुलामरसुल डॉ. एस. कृष्णमूर्ति	सं.1980
18.	दर्शनशास्त्र और भविष्य	देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, राजकमल प्रकाशन,	1988
19.	निबंध	सुमित्रानंदन पंत, लोकभारती प्रकाशन,	
20.	पंतजी और कालाकाँकर	कुँवर सुरेशसिंह, राजकमल प्रकाशन,	1983
21.	पंतकी काव्य-भाषा	डॉ. कान्ता पंत, लोकभारती प्रकाशन	2005
22.	पथ के साथी	महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन	1971
23.	भाषा-चिन्तन के नये आयाम	डॉ. रामकिशोर शर्मा, राजकमल प्रकाशन	1999
24.	भारतीय संस्कृति	शिवदत्त ज्ञानी, राजकमल प्रकाशन	1980

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
25.	भारतीय दर्शन : सरल परिचय	देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, राजकमल प्रकाशन	1980
26.	मार्कसवाद और हिन्दी कविता	डॉ. भक्तराम शर्मा, राजकमल प्रकाशन	1991
27.	योगी श्री अरविन्द	शिवप्रसाद पांडेय, लोकभारती प्रकाशन	
28.	युगकवि पंत की काव्यसाधना	विनयकुमार शर्मा	1962
29.	वर्डसवर्थ और पंत की काव्य साधना	डॉ. मंजोरानी	1981
30.	शोध–प्रविधि	विनयमोहन शर्मा, राजकमल प्रकाशन	1975
31.	सुमित्रानंदन पंत	डॉ. नगेन्द्र, लोकभारती प्रकाशन	
32.	सुमित्रानंदन पंत	डॉ. विश्वंभर मानव, किताबमहल	
33.	सुमित्रानंदन पंत	ई. चेलिशेव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	
34.	साठ वर्ष : एक रेखांकन	सुमित्रानंदन पंत, लोकभारती प्रकाशन	

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
35.	संस्कृति के चार अध्याय	दिनकर, लोकभारती प्रकाशन,	2000
36.	साहित्य शोध समीक्षा	डॉ. विनयमोहन शर्मा,	1980
37.	सुमित्रानंदन पंत – काव्य कला और दर्शन	गोपालदास 'नीरज', जयभारती प्रकाशन,	1963
38.	सुमित्रानंदन पंत – व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. रामजी पाण्डेय, प्रथम संस्करण	
39.	सुमित्रानंदन पंत काव्य–कला और दर्शन	शचीरानी गुर्टू	1967
40.	सुमित्रानंदन पंत जीवन और साहित्य	शांति जोशी	1977
41.	साहित्यिक निबंध	राजनाथ शर्मा, लोकभारती प्रकाशन	1970
42.	हिन्दी कविता में युगांतर	डॉ. सुधीन्द्र	1985
43.	हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी	नंददुलारे वाजपेयी	1977

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
44.	हिन्दी शोध-तंत्र की रूपरेखा	मनमोहन सहगल राजकमल प्रकाशन	1979
45.	हिन्दी साहित्य और विभिन्न वाद	श्री रामजीलाल बधौतिया	1958
46.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र, लोकभारती प्रकाशन	
47.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुकल, सवंत	2019
48.	हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी	नंददुलारे बाजपेयी, राजकमल प्रकाशन	1977
49.	हिन्दी साहित्य का निबंधात्मक इतिहास	आचार्य उमेश शास्त्री, राधाकृष्ण प्रकाशन,	1995
50.	हिन्दी : कुछ नई चुनौतियाँ	डॉ. कैलाशनाथ पाण्डेय, राजकमल प्रकाशन, 1999	
51.	हिन्दी अनुसंधान	डॉ. विजयपालसिंह, लोकभारती प्रकाशन	1995
52.	हिन्दी भाषा : पहचान से प्रतिष्ठा तक	डॉ. हनुमानप्रसाद शुकल राजकमल प्रकाशन	1994

(II) गुजराती ग्रंथ

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	अर्वाचीन गुजराती साहित्यनो इतिहास	ठक्कर, मिस्त्री,	
2.	उपनिषद नवनीत	वासुदेवशरण अग्रवाल अनु. जयनारायण भट्ट	1985
3.	काव्यप्रकाश	मम्मटाचार्य	
4.	गुजरातनो अर्वाचीन इतिहास	गोविन्दभाई देसाई	1985
5.	गुजरातनो सांस्कृतिक वारसो	डॉ. रामचन्द्र ना. पंडया	1980
6.	गुजराती साहित्य	अनंतराय रावल मेकमिलन एन्ड कं.	1954
7.	गुजराती साहित्यनी रूपरेखा भाग–1	विजयराज वैद्य	
8.	गुजराती साहित्यनो	उमाशंकर जोशी	1976
	इतिहास ग्रंथ–2	अनंतराय रावल यशवंत शुकल गुजराती साहित्य परिषद	
9.	गुजरातीमां तत्त्वविचार	डॉ. निपुण पंडया	1995

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
10.	गुजराती कवितानो आस्वाद	श्री सुरेश जोशी	1985
11.	गुजराती साहित्यना मार्ग सूचक स्तंभो	कृष्णलाल एम. झवेरी	1973
12.	गुजराती साहित्यनुं रेखादर्शन	के. का. शास्त्री	1980
13.	चित्तविचार संवाद	कीर्तिदा जोशी गुर्जर साहित्य भवन	1999
14.	सुन्दरम् एटले सुन्दरम्	रामजीभाई कड़िया आर.आर. शेठनी कंपनी	1990
15.	सा विद्या	सुन्दरम्, आर.आर. शेठनी कंपनी	
16.	संस्कारिता अने संस्कृति	डॉ. जयदेव शुक्ल	
17.	हिन्दीना विकासमां गुजरातीओनो फाळो	जनकशंकर एम. दवे, गुजरात विद्यापीठ	1993
18.	श्री उपनिषदो	श्री नथ्थुराम शर्मा आनंद आश्रम, बिलखा,	
19.	श्री पातांजल योग दर्शन	श्री नथ्थुराम शर्मा	
20.	श्रीमद् भगवत गीता	साहित्यसंगम – सुरत	
21.	श्रीमद भागवत भाग–2	अनु.नागरदास पंडया, एम.एस.युनि.	1992

(III) संस्कृत ग्रंथ

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	काव्य–प्रकाश	आचार्य मम्मट	
2.	गीता	गीताप्रेस	
3.	महाभारत	गीताप्रेस	
4.	महाभाष्य	संस्कृति संस्थान – बरेली	
5.	यर्जुसंहिता	गीताप्रेस	
6.	नारद भक्ति सूत्र	गीताप्रेस, गोरख़पुर	
7.	विष्णुपुराण	श्री वेंकटेश्वरप्रेस मुम्बइ	
8.	ऋग्वेद	गीताप्रेस	
9.	ऋग्वेद संहिता	आनंद आश्रम प्रेस, पुना	
10.	श्रीमद् भागवत	गीताप्रेस	
11.	श्रीमद् भगवत गीता	जयदयाल गोयनका	

अप्रकाशित लघुशोध–प्रबंध

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	पंत काव्य में अरविन्द दर्शन	राजेश रावल, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी	1993

शब्दकोश

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	गुजराती–हिन्दी कोश	गुजरात विद्यापीठ	
2.	नालन्दा अद्यतन शब्दकोश	आरीश बुकडीपो, दिल्ली	
3.	सार्थ गुजराती जोडणी कोश	गुजरात विद्यापीठ	

पत्र–पत्रिकाएँ

क्रम	शीर्षक	लेखक	प्रकाशन वर्ष
1.	अर्पण गुजराती		1990 to 2000
2.	आलोचना		1996
3.	उद्देश		ओगष्ट – 2007
4.	कल्याण–उपनिषद अंक	गीता प्रेस	
5.	कल्याण–हिन्दू संस्कृति अंक	गीता प्रेस	
6.	फार्बस गुजराती		1985-95
7.	दक्षिणा सभी अंक,	संपादक : सुन्दरम्, पोंडीचेरी	
8.	धर्मयुग		1990
9.	सहज सत्संग गुजराती		1995 to 2008
10.	समकालीन भारतीय साहित्य		1990 to 1999
11.	संस्कृति–त्रैमासिक		1995
12.	श्री अरविन्द आश्रम बुलेटीन		1995 to 2006